भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन शैलियों का क्रमिक विकास

इलाहाबाद विश्वविद्यालय को संगीत विषय में
'डॉक्टर ऑफ फिलासफी' की उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
का
सारांश

निर्देशिका
डा0 स्वतंत्र शर्मा
एम.ए., डी. लिट. (संगीत गायन)
संगीत व प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्री
श्रीमती सीमा श्रीवास्तव
एम.ए. (संगीत गायन)
संगीत व प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
संगीत प्रवीण
प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

अप्रैल, 2001

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ***'भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन शैलियों का क्रमिक विकास'*** विषय लेकर सम्पन्न किया गया है। भारतीय संगीत का इतिहास आरम्भ से ही उपलब्धियों का इतिहास रहा है, जो आदिम प्रागैतिहासिक, वैदिक, शास्त्रीय मध्युगीन से होता हुआ आधुनिक समय तक पहुँचा है और हम यह कह सकते हैं कि भारतीय संगीत की परम्परा जो मन्दिरों व राजदरबारों से प्रारम्भ होकर आधुनिक संगीत समारोहों व गोष्ठियों तक पहुँची है और जिस संगीत ने आज सम्पूर्ण भारत में विश्वविद्यालयी स्तर पर अपने आप को अन्य विषयों के समकक्ष बना लिया है, उसमें निश्चित रूप से संगीत की गायन शैलियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक काल से ही प्रारम्भ होकर संगीत की कलात्मक व सुन्दर शैलियां अपना बहुरंगी रूप दिखाती रहीं। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में भारतीय शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियों के उद्‌गम व विकास पर प्रकाश डाला है और ये अध्ययन करने का प्रयत्न किया है कि सामगान के समय से लेकर आज तक जितनी भी गायन शैलियां विकसित हुईं, समय के परिवर्तन के साथ जो अप्रचलित होती चली गईं और समय के साथ-साथ नई शैलियां जो विकसित होती रहीं उन सभी के बीच कहां तक पारस्परिक सम्बन्ध है। प्राचीन काल के 'साम' से लेकर आज तक इन सभी गायन शैलियों का आधार स्वर है। जैसा कि हम देखते हैं कि ऋग्वेद की ऋचाओं को गेय रूप देकर 'सामसंहिता' नाम दिया गया और स्वर, लय युक्त मन्त्रों द्वारा ईश्वर की उपासना से संगीत का प्रारम्भ हुआ। वैदिक संगीत से प्रारम्भ होकर प्रत्येक युग में संगीत परिवर्तित होता रहा और फलस्वरूप संगीत की विभिन्न गायन

शैलियां प्रचार मे आती रहीं। आज उत्तरी संगीत में उच्च श्रेणी के शास्त्रीय गीतों में ध्रुवपद, धमार, ख्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग इत्यादि की गणना होती है और भाव प्रधान गीतों में ठुमरी और दादरा की गणना होती है। चमत्कारिक स्वर समूहों की प्रधानता से टप्पा शैली का विकास हुआ है। कजरी, चैती, झूला, होरी भी लोकशैलियों से प्रभावित गीत शैलियां हैं परन्तु शास्त्रीय रागों एवं गान शैली के प्रभाव से इनमें शास्त्रीय एवं लोकशैली का समन्वित रूप अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार उत्तर भारतीय संगीत में काल क्रमानुसार तीन इन शैलियों के अन्तर्गत् अनेक गीतों का विकास हुआ है। स्वर प्रधानता, स्वर-पद प्रधानता और भाव प्रधानता इन तीन दृष्टि भेद से गायन शैलियों की गीतों के रूप विकसित हुये हैं। इनके विकास में प्राचीन पंचगीतो, प्रबन्धों एवं लोकशैलियों का समन्वित प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता हे।

इन गीत शैलियों के विकास में विभिन्न घरानों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ध्रुवपद शैली को विस्तृत रूप प्रदान करने में वाणियों का विशेष महत्व रहा है। ख्याल गायन की भी परम्परायें व घरानें बने जिनके माध्यम से ख्याल का विशिष्ट रूपों में विस्तार हुआ। घरानों के विकास में ध्रुवपद के वाणियों का प्रभाव रहा। इस प्रकार सभी गायन शैलियों में पारस्परिक सम्बन्ध मिलता है। आज भारतीय संगीत राग पद्धति पर आधारित है किन्तु प्राचीन संगीत में 'राग' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में गायन शैलियों के विकास क्रम में प्राचीनतम शैली गीति से लेकर, जाति गायन, प्रबन्ध, धुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, त्रिवट, चतुरंग, दादरा, इत्यादि गायन शैलियों के क्रमिक विकास का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है और सम्पूर्ण

शोध प्रबन्ध को मैंने दस अध्यायों में वर्गीकृत किया है, जिसका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है-

प्रथम अध्याय :-

प्रथम अध्याय में मैंने 'भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास' के क्रम पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखता है और राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से प्रभावित होते हुये भारतीय संगीत ने विकास की लम्बी यात्रा पार कर वर्तमान रूप को प्राप्त किया है। सबसे पहले भरतमुनि ने शास्त्रीय दृष्टि से संगीत शास्त्र की रचना की और उनके बाद अनेक आचार्यों ने संगीत कला का विश्लेषण कर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। संगीत का उद्‌गम मानव जाति के उद्‌भव के साथ हुआ। संगीत शब्द की सार्थकता गीत के प्राधान्य में है। संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैंने प्रस्तुत प्रथम अध्याय में विभिन्न विद्वानों के मतों को भी प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय :-

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत् संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है। भारतीय संगीत का इतिहास समृद्ध व महत्वपूर्ण विषय है। जो ईसा पूर्व तीन हजार पाँच सौ वर्ष (3500) का है। इस युग को 'अन्धकार युग' कहा गया है। इस अध्याय में मैंने भारत के प्राचीन व गौरवमयी संस्कृति का ऐतिहासिक विवेचन करते हुये सिन्धु नदी घाटी की सभ्यता, वैदिक संगीत और इस युग के वेदों के सम्बन्ध में लिखा है। ऋग्वेद की रचनायें स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण 'स्तोत्र' कहलाती थीं। गीत प्रबन्धों को 'गाथा' कहा जाता था जिसके लिये 'साम' नाम भी दिया गया। सारा वैदिक साहित्य

साम का संगीत मानता है। ऋचा सामगान का आधार है, गेय छन्द होते थे। सामगान के तीन भाग प्रस्ताव, प्रतिहार, उद्‌गीत व उनके तीन उपांग हिंकार, उपद्रव, निधान थे। आगे चलकर इन्हीं से ध्रुवपद के चार पद बने। वैदिक युग के बाद पौराणिक काल में उपनिषदों की स्थापना हुई। फिर रामायण व महाभारत काव्यों की रचना हुई। जबकि ललित कलायें सांस्कृतिक जीवन का अंग बन चुकी थीं। फिर महाभारत काल में वैदिक व लौकिक दोनों 'संगीत प्रणालियों' का समान रूप से प्रचलन रहा। 800 ईसा पू0 में पाणिनी युग में पाणिनी द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी' से तत्कालीन संगीत का रूप ज्ञात होता है। जनपद काल में संगीत की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। जैन युग में संगीत की प्रतियोगितायें और संगीत के शास्त्रीय पक्ष का विकास हुआ। अनेक नई गायन शैलियाँ विकसित हुईं। ईसा से 563 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध के समय में संगीत की विधिवत शिक्षा का प्रचलन था और संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का विकास हुआ। संगीत के विकास की दृष्टि से मौर्य काल प्राचीन युग में स्वर्ण युग के नाम से जाना गया। चन्द्रगुप्त संगीत का बड़ा प्रेमी था और सम्राट अशोक के काल में संगीत आध्यात्मिक रूप से पुनः प्रतिष्ठित हुआ। फिर शुंग काल आता है, जबकि विद्वान पातंजलि ने "महाभाष्य" की रचना की। उसी प्रकार कनिष्क युग, नाग युग, गुप्त काल, हर्षवर्धन काल, राजपूत काल, मुस्लिम युग में संगीत एवं मध्ययुगीन संगीत का संक्षिप्त सांगीतिक विवेचन करने के उपरान्त मैंने आधुनिक युग में प्रचलित संगीत, उसके ऐतिहासिक पक्ष एवं गायन शैलियों के क्रमिक इतिहास पर संक्षिप्त रूप से विवेचन किया है।

तृतीय अध्याय :–

तृतीय अध्याय में मैंने शास्त्रीय दृष्टि से गायन शैलियों के क्रमिक विकास का अध्ययन किया है। गीति, जाति गायन, प्रबन्ध, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, तराना, त्रिवट, लक्षणगीत,

सरगम, रागमाला चतुरंग, सादरा गायन शैलियों के संक्षिप्त पृष्ठभूमि का वर्णन किया है।

चतुर्थ अध्याय :–

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत् मैंने गीति, जाति गायन एवं प्रबन्ध, शैली का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। सर्वप्रथम हमें संगीत में गीतियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनका सम्बन्ध रागों की स्वर-सरंचना रागों के चलन, बन्दिश ही सरंचना व स्वरों में शब्दों व अक्षरों के दिखाव से रहता है। पं0 शारंगदेव के अनुसार, वर्ण, पद, तथा लय से सम्बन्धित गान क्रिया 'गीति' कहलाती है। भरत ने "नाट्यशास्त्र" में पदाश्रिता व स्वराश्रिता गीतियों की चर्चा की है मतंग तथा शारंगदेव ने सात गीतियाँ मानी हैं-शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी रागगीति, साधारणी, भाषा तथा विभाषा। इन गीतियों के तत्व ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी, आदि शैलियों के स्वर प्रयोगों में तथा विभिन्न रागों की स्वर सरंचना में मिलते हैं। फिर वैदिक छन्दों में ताल के सामंजस्य के लिये जिन अक्षरों व सार्थक वाक्यों द्वारा चौदह प्रकरण गीतों की रचना हुई उन्हें ध्रुवा की संज्ञा दी गई। इन गीतों के द्वारा शिव की स्तुति की गई। भरत के नाट्यशास्त्र के 32वें अध्याय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। नाट्शास्त्र में वर्णित ध्रुवागीतों की स्वर लिपि या सांगीतिक अंग के रूप में जातियों का वर्णन किया गया है। भरत के काल में जाति तथा जातिराग दोनों परम्पराओं का प्रचलन था। नारद ने पांच जातियाँ बताईं-दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या और करुणा। भरत ने 18 जातियों का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया है, जिन्हें उन्होंने षड्ज व मध्यम ग्राम में विभाजित भी किया है। इन 18 जातियों से ग्राम राग उत्पन्न हुये और अनेकों उपराग निकले। जातियों के पश्चात् भारतीय संगीत की प्राचीन गायन शैली 'प्रबन्ध' का नया रूप सामने आया। मतंग के

काल 8वीं ई0 से 'प्रबन्ध' नामक गीत शैली अस्तित्व में आ गई। इस प्रकार ध्रुव के स्थान पर प्रबन्ध शुरु हो गया। शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' में भी प्रबन्ध का ही उल्लेख है। इन्हीं प्राचीन प्रबन्धों के स्वरूप से बाद की प्रत्येक शैली के निर्माण में सहायता मिली। जयदेव द्वारा लिखित "गीतगोविन्द" प्रबन्ध शैली में है। यही प्रबन्ध बाद में 'गीत' कहलाये। "संगीत रत्नाकर" का तीसरा अध्याय ही 'प्रबन्धाध्याय' नाम से है। दक्षिण में सत्रहवीं शताब्दी तक प्रबन्धों का प्रचलन रहा। बाद में उनकी जगह भजन व कीर्तन ने ले ली। मध्ययुग के ग्रन्थों में प्रबन्ध के स्वरूप में परिवर्तन मिलता है। "संगीत पारिजात, "संगीत दामोदर", "चर्तुदण्डि प्रकाशिका", "संगीत सूर्योदय" इत्यादि ग्रन्थों में प्रबन्धों के प्राचीन लक्षणों में कुछ नवीनता दिखाई देती है। रूपकालप्ति का स्थान फ़ारसी शब्द ख्याल ने ले लिया। उत्तरी संगीत में प्रचलित ध्रुवपद के स्थायी और अन्तरों की तुलना प्रबन्ध के ध्रुव और अन्तरे के समान तथा ध्रुवपद के संचारी और आभोग को प्रबन्ध के दो आभोगों के समान माना जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक गीतों के स्थायी व अन्तरे का प्रबन्ध के ध्रुव और धातु से अवश्य सम्बन्ध है।

पंचम अध्याय :–

पंचम अध्याय में ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव विकास व परम्परा का वर्णन किया है। अब तक जो संस्कृत में प्रबन्ध थे वे जनसाधारण के समझ में नही आते थे। उत्तर में प्रबन्ध ने ध्रुवपद को जन्म दिया जिसकी भाषा ब्रजभाषा थी। इसके साथ ही प्रारम्भिक ध्रुवपद संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं में रचे गये। ध्रुवपद के द्वारा ईश्वरोपासना की जाती थी और इन ध्रुवपदों की वृद्धि राजदरबारों में हुई। राजा मानसिंह तोमर को ध्रुवपद शैली का जन्मदाता माना जाता है। मैंने इस अध्याय में ध्रुवपद की उत्पत्ति के

सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत बताये हैं। ध्रुवपद, राग, ताल आदि शास्त्रीय संगीत, मन्दिरों तथा देवालयों में विकसित हुआ किन्तु मुसलमानों के शासनकाल में ध्रुवपदकरों को राजदरबारों में स्थान मिला इस प्रकार विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। ध्रुवपद की बानियाँ अकबर के युग के बाद आईं। ध्रुवपदकारों की उपलब्ध कृतियों के आधार पर बैजू की चर्चा मानसिंह तोमर के काल में मिलती है। "राग कल्पद्रुम" में इनकी रचनायें उपलब्ध हैं। भक्त ध्रुवपदकार स्वामी हरिदास जी ने दरबारों की परिधि से बाहर रह कर अपने आराध्य को रिझाने के लिये ध्रुवपदों की रचना की। संगीतज्ञों में ध्रुवपदकार बक्शू के "रागकल्पद्रुम" में मिलते हैं अपने समय के ध्रुवपदकारों में तानसेन सर्वश्रेष्ठ हैं। भक्तिकाल में छब्बीस ध्रहुवपदकारों का पता चलता है। गोपाल नायक ब्रजभाषा के ध्रुवपदकार रहे। ध्रुवपदकारों के अतिरिक्त मैंने इस अध्याय में ध्रुवपद की चार बानियों, ध्रुवपद के विषय व स्रोत, ध्रुवपद के अंग, धातुओं इत्यादि का विस्तृत परिचय दिया है। उत्तर भारतीय गीत शैलियों में ध्रुवपद ही सबसे प्राचीन गीत शैली है जिसका रूप स्वर, पद, ताल-गान के इन तीनों प्रमुख तत्वों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आलाप, तालबद्धगीत एवं लयकारी के माध्यम से इन तीनों प्रमुख तत्वों के कलात्मक रूप का दर्शन इस गीत शैली में होता है। प्राचीन रागालाप के स्वस्थान नियम का प्रतिपालन इस गीत शैली के विस्तृत आलाप में, जो बिना ताल का होता है दिखाई देता है। दक्षिणात्य पद्धति में निबद्धगीतों में जिस प्रकार 'कीर्तन' का महत्व स्वर, ताल-पद तीनों की दृष्टि से हैं, जिसकी तुलना उत्तर भारतीय किसी गीत शैली से नहीं की जा सकती। उसी प्रकार उत्तरीय 'ध्रुवपद' शैली की तुलना दक्षिणात्य किसी प्रबन्ध से नहीं की जा सकती। कीर्तन की आलाप पद्धति तो ख्याल की आलाप पद्धति व तानपद्धति से बहुत मिलती है परन्तु ध्रुवपद के धीर गंभीर रूप और

आलाप पद्धति की तुलना किसी पद्धति से नहीं की जा सकती। दक्षिणात्य कीर्तन का भक्तिभाव पूर्ण साहित्यिक, लालित्य एवं स्वरात्मक, रचनात्मक कुशलता जैसे अनुपम हैं, उसी प्रकार ध्रुवपद की धीरता, गम्भीरता, लय-ताल-स्वर प्रयोग की दृष्टि से अपने आप में विलक्षण है।

षष्टम अध्याय :–

षष्ठम अध्याय 'धमार गायकी : एक रंगारंग परम्परा' में धमार के प्रादुर्भाव व विकास क्रम का वर्णन मैंने किया है। ध्रुवपद का सहयोगी धमार ध्रुवपद अंग की गायकी ही माना जाता है और ध्रुवपद के समान ही धमार भी लयकारी प्रधान शैली है। ध्रुवपद की हीा चार बानियां धमार में वर्णित हैं।

धमार गान के पीछे कीर्तनकारों की आनुवंशिक परम्परा है, जबकि मन्दिरों में वैष्णव संतो द्वारा रचित विशिष्ट पद धमार ताल में गाये जाते थे जिनकी संगति पखावज व झांझ द्वारा होने की परम्परा अभी तक विद्यमान है। दरबारों में गाये जाने वाले धमार में शहंशाह को 'नायक' के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। तानसेन ने अपने रचनाओं में अकबर का नाम डाला था। मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी कलाकार न्यामत खाँ सदारंग ने अनेक धमारों की रचना की और सदारंग के भतीजे और दामाद फिरोज खाँ अदारंग उनके पुत्र मनरंग और नूररंग ने भी धमार रचना की परम्परा को आगे बढ़ाते हुये पारम्परिक शैली में धमारों की रचना की। पुरानी पीढ़ी के धमार गायकों में उस्ताद नत्थन खाँ, उस्ताद विलायत हुसैन खाँ, फैयाज खाँ,एवं डॉ0 सुमति मुटाटकर आदि हैं। धमार रचनाओं में छन्द का बन्धन अनिवार्य नहीं होता। धमार ताल में निबद्ध 'होरी'

नामक गीत को धमार कहते हैं जिसको ध्रुवपद अंग से गाया जाता है।

सप्तम अध्याय :–

सप्तम अध्याय 'वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली का विकास' के अन्तर्गत् ख्याल की उत्पत्ति अर्थ, तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारकों के मतों का निरुपण मैंने किया है। ध्रुवपद से उद्भूत एवं प्राचीन साधारण गीत की विशेषताओं को समेटे वर्तमान की सर्वाधिक लोकप्रिय शैली 'ख्याल' है। यद्यपि यह शब्द फारसी भाषा का है परन्तु भारतीय स्वररूप, राग के चिंतन, ध्यान, विचार के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। राग का ध्यान मूर्तरूप में (साकार देवतादि रूप में) एवं नादरूप (स्वररूप) में करने की भारतीय परम्परा रही है। निराकार वादी मतावलम्बियों का प्रवेश संगीत के भारतीय परिवेश में होने से निराकार नाद चिंतन की सांगीतिक पद्धति को 'ख्याल' नाम प्रदान किया और मध्यकालीन मुस्लिम शासकों की राजनैतिक प्रधानता से इस फ़ारसी शब्द का अधिकाधिक प्रचार हुआ। ख्याल को प्रचार में लाने के लिये अनेक संगीतज्ञों ने अपना योगदान दिया। कुछ विद्वानों के अनुसार, अमीर खुसरो, तो कुछ विद्वानों के अनुसार, ख्याल के आविष्कारक जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की, किन्तु इस बात से सभी एकमत हैं कि ख्याल का आविष्कार पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ और इसका प्रचार आठारवीं शताब्दी में सदारंग तथा' अदारंग द्वारा पूर्ण रूप से हुआ। ख्याल गाने से पहले ध्रुवपद जैसा आलाप करने की रीति नहीं है। कलाकार थोड़ी बहुत आलापचारी कर लेते हैं। जिस अंग का गाना होगा उसी अंग का आलाप होगा। ध्रुवपद की स्थिरता व गंभीर गमक के अलावा छूट, मुर्की, ज़मज़मा, बहलावा आदि ख्याल में वांछनीय हैं। ख्याल के प्रारम्भिक काल में तान का प्रयोग नहीं होता

था किन्तु विभिन्न घरानों की सृष्टि के साथ ख्याल के विस्तार में परिवर्तन हुआ और वैचित्र्य के लिये तान को ही प्रयुक्त किया गया। ख्याल में सरगम का प्रयोग आधुनिक है। वर्तमान काल में जो अतिविलम्बित लय में ख्याल गाये जाते हैं वे अत्याधुनिक काल की सामग्री हैं। ध्रुवपद के साथ ख्याल का सम्पर्क तो है ही, लेकिन प्रबन्ध के साथ ध्रुवपद का सम्पर्क जितना निकट है, ध्रुवपद के साथ ख्याल का सम्पर्क उतना निकट नहीं।

अष्टम अध्याय :–

अष्टम अध्याय 'टप्पा - शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली : विकास व महत्व' के अन्तर्गत् 'टप्पा' के विभिन्न अर्थ, उद्‌गम, गायन शैली, लोकगीत के रूप में टप्पा, टप्पे का विकास, विभिन्न प्रान्तों के टप्पों का पारस्परिक अध्ययन, टप्पा गायकों के गायन शैलियों की विशेषतायें, टप्पे के घराने, टप्पे में प्रयुक्त होने वाले राग, भावपक्ष, कलापक्ष इत्यादि अंगों का मैंने वर्णन किया है।

नवम अध्याय :–

नवम अध्याय के अन्तर्गत् उपशास्त्रीय संगीत की गायन शैली ठुमरी का वर्णन, ठुमरी के विभिन्न अर्थ, ठुमरी के विभिन्न गायक, गायन शैलियों व ठुमरी के अंग इत्यादि का वर्णन है। साधारण में ऐसा प्रचार है कि ठुमरी की जन्मभूमि लखनऊ है और उस्ताद सादिक अली खाँ इसके जनक हैं। इसके भी पहले लगभग 300 वर्ष पहले का इतिहास यदि देखें तो उसमें ठुमरी कोई गायन शैली नहीं वरन राग का नाम था। सत्रहवीं शताब्दी के ग्रन्थकार फकीरूल्लाह अपने ग्रन्थ 'रागदर्पण' में लिखते हैं कि–"बरवा राग का ही दूसरा नाम था ठुमरी।" मिर्जा खाँ ने 'तोहफेतुलहिंद' ग्रन्थ में लिखा है कि 'रागश्री' की एक रागिनी का नाम था 'ठुमरी' जो लखनऊ के

आसपास प्रचलित थी। आगे चलकर उस शैली के गीत ही ठुमरी के नाम से प्रचलित हो गये। नृत्य-गीत प्रधान लखनवी गीत में नट्वरी नृत्य की परम्परा प्राचीन है। जिनमें भावप्रदर्शन के लिये ब्रजभाषा के पदों को ठुमरी राग या धुनों में गाया जाता था। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह, अखतर पिया उपनाम से उनकी अनेक समृद्ध ठुमरियाँ आज भी गाई जाती हैं। इन्हीं के दरबारी गायक थे कव्वाल घराने के उस्ताद सादिक अली खाँ। उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशाक में जब कथक नृत्य बादशाही दरबार तक प्रसारित हो गया उसी समय नृत्य, संगीत या ठुमरी रागों में गाये जाने वाले गीतों को ठुमरी नाम प्रचलित कर दिया गया। ठुमरी में शब्द कम और भाव रस का समावेश अधिक होता है। ठुमरी गीत हल्के रागों में निबद्ध किये जाते हैं और तालदीपचन्दी, जत या अद्धा से प्रारम्भ करके अन्त में लय बढ़ाकर द्रुत तीनताल, कहरवा आदि तालों में भिन्न-भिन्न छन्द विन्यास के साथ गाकर फिर मूल ताल में लौट आते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि, ध्रुवपद, ख्याल व ठुमरी ये तीनों शैलियाँ एक ही जनक की सन्तान हैं। ध्रुवपद, ख्याल व ठुमरी के शरीरों में 'प्रबन्ध जनक कह धारा' प्रभावित होते हुये भी वे अपनी विशेषताओं के कारण संगीत समाज में अपना अलग-अलग महत्व रखते हैं।

दशम अध्याय :-

दशम अध्याय 'तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत, सरगम, रागमाला, चतुरंग, सादरा आदि गायन शैलियों का शास्त्रीय संगीत में महत्व व विकास' के अन्तर्गत् मैंने अन्य निबद्ध गीत शैलियाँ जैसे दादरा, सादरा, तराना, सरगम, त्रिवट, रागमाला, चतुरंग, लक्षणगीत

आदि का वर्णन किया है। ये सभी शैलियाँ स्वरात्मक, भावात्मक एवं रचनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण गीतविधायें हैं। ख्याल के प्रकार की गायकी तराना है। जिसमें राग-ताल और लय का आनन्द है। प्राचीन काल में तराना को 'स्तोभगान' के नाम से जाना जाता था। जो ओंकार की ध्वनि के वाचक होते थे। तराने के प्रसिद्ध गायको में बहादुर हुसैन खाँ, नत्थू खाँ, निसार हुसैन खाँ, पं० विनायक राव पटवर्धन और पं० कृष्णराव पण्डित के तराने विशेष प्रसिद्ध हुये हैं। तराने में ही जब मृदंग के बोलों का प्रयोग किया जाता है तब ऐसे तरानों को त्रिवट के नाम से जाना जाता है। दादरा ताल में गाई जाने वाली मध्य तथा द्रुत लय की गायकी को दादरा कहा जाता है। विद्वान गायकों द्वारा अनेक लक्षण गीत ग्रन्थों मे उपलब्ध हैं जिसमें राग की मुख्य विशेषताओं का वर्णन होता है। विद्यार्थियों के स्वर ज्ञान व राग गान के लिये रागबद्ध व तालबद्ध स्वर रचना को सरगम गीत कहा जाता है। रागमाला में एक ही गीत में कई रागों का वर्णन आता है और इसके बाद ख्याल की तरह गाया जाने वाला गीत चतुरंग का मैंने वर्णन किया है जिसमें ख्याल, तराना, सरगम, त्रिवट चार अंग सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त सादरा गायन शैली भी जो आज कम प्रचलित है, जो ध्रुवपद अंग का ही गायन है। झपताल में गाई जाने वाली सादरा गायन शैली में 'ध्रुवपद' तथा 'होरी' गायन से अधिक चपलता मिलती है। बदलते समय में जबकि ध्रुवपद तथा होरी गायन का प्रचार कम हुआ है ऐसे में सादरा गायन एकदम से विलुप्त हो गया है।

सम्पूर्ण चर्चा के आधार पर यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि, आधुनिक समय में ख्याल शैली ही शास्त्रीय संगीत की सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है जिसके प्रमाण स्वरूप आज के संगीत समारोहों, आकाशवाणी के कार्यक्रमों तथा विद्यालयों के पाठ्यक्रमों

को देखा जा सकता है। ख्याल में अन्य सभी शैलियों का मिश्रण परिलक्षित होता है। जिस प्रकार बिना बीज के वृक्ष नहीं बन सकता उसी प्रकार बिना किसी आधार के नई शैली भी उत्पन्न नहीं हो सकती। अतः वैदिक काल से स्वरों के क्रमिक विकास गान्धर्व व गान विभाजन, गीति, जाति, प्रबन्ध, कव्वाली, ध्रुवपद तथा धमार आदि सभी शैलियों के विवरण के उपरान्त ख्याल शैली में इन सभी शैलियों के तत्व दिखते हैं। कोई भी गायन शैली किसी एक शैली पर आधारित नहीं है और न ही किसी एक व्यक्ति के प्रयत्नों का फल है, वरन वर्तमान में प्रचलित गायन शैलियाँ जैसे ख्याल इत्यादि प्राचीन शैलियों के आधार पर स्वभाविक रूप से विकसित शैली हैं जिसमें समय-समय पर अन्य अनेक शैलियों के विभिन्न तत्वों का समावेश होता चला आया है। जिस प्रकार साधारणी गीति में अन्य सभी गीतों का मिश्रण था उसी प्रकार आज ख्याल शैली में भी अन्य सभी शैलियों के विभिन्न तत्व विद्यमान हैं। यवनों के भारत में आने पर उन्हें मन्दिरों में गाई जाने वाली शैली, जो गीतियों पर आधारित थीं, पसन्द आई, तो उन्होंने इसमें अल्लाह, पीर, रसूल आदि की गीत रचनायें कीं, जिसको सम्भवतः उन्होंने ख्याल नाम दिया था। कव्वाली उनकी अपनी गायन शैली होने के कारण उनके कण्ठ की विशेष हरकतें भी इस नवीन शैली में शामिल हो गईं। राजनैतिक परिस्थितियों में आये परिवर्तनों के कारण ख्याल शैली पनप न सकी। अठ्ठारहवीं शताब्दी में सदारंग अदारंग द्वारा इसका पूर्ण प्रचार किया गया और तब से ये ख्याल शैली अन्य सभी गायन शैलियों के तत्व समाये हुये उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होती जा रही है।

यह भी सत्य है कि जनसाधारण को शास्त्रीय संगीत के प्रति आकृष्ट करने के लिये या उसमें आनन्दानुभूति प्राप्त कराने के लिये

शब्द रचना सुबोध, सुन्दर व सरल होनी चाहिये। सम्भवतः प्रबंध की भाषा क्लिष्ट व संस्कृत में थी। यवनों के भारत में आ जाने से संस्कृत के प्रति अनभिज्ञता होने के कारण ध्रुवपद का विकास हुआ। ध्रुवपद शैली के गीतों की विषयवस्तु भगवद् वन्दना तथा स्तोत्रों से युक्त होती थी। ये गायकी मन्दिरों के साथ-साथ जब राजदरबारों में आई तो राजा महाराजाओं की प्रशंसा से युक्त ध्रुवपदों की रचना की जाने लगी। अलाउद्दीन खिलजी, राजारामचन्द्र, अकबर यहाँ तक कि संगीत के विरोधी कहे जाने वाले औरंगजेब की प्रशंसा में भी अनेक ध्रुवपद आज उपलब्ध हैं और इस प्रकार ध्रुवपद गायकी मध्यकाल में अत्यन्त प्रचलित हुई। जब ध्रुवपद जैसी गम्भीर विधा का प्रचार कम होने लगा व गरिमापूर्ण ख्याल गायन विधा जो कुछ चंचलता लिये हुये थी, का स्थान कुछ बनता जा रहा था। तब ऐसे में ध्रुवपद और ख्याल की समसामयिकता के बीच धमार शैली पनपी और उसमें स्वभाविक रूप से ध्रुवपद की गम्भीरता के साथ-साथ ख्याल की गरिमा और लोक संगीत की चंचलता का मिश्रण हुआ। फिर उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय शतक में जब कथक नृत्य बादशाही दरबार तक प्रसारित हो गया तब उस समय नृत्य संगीत ठुमरी नाम से प्रचलित हो गया। निष्कर्षतः शोध प्रबन्ध को पूर्ण करते समय मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक प्रचलित सभी गायन शैलियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और हर आगे आने वाली शैली पिछली गायन शैली के गुण और तत्वों के आधार पर ही आगे विकसित होती गई जिसमें कि समय और जनरूचि के आधार पर नये-नये तत्व सम्मिलित होते गये। भारतवर्ष में सदैव बाहर की जातियाँ आक्रमण कर राज्य करती रहीं, जिसके कारण कोई भी एक गायन शैली स्थिर न रह सकी और विशेष रूप से यवनों के भारत में आ जाने से संस्कृत भाषा का ह्रास हुआ और हिन्दी व ब्रज भाषा में

अधिकतर गीत रचनायें होने लगीं आज की सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली इसका उदाहरण है। ख्याल के साथ ही साथ ध्रुवपद, धमार, ठुमरी भी प्रचलित हैं किन्तु यही सत्य है कि आधुनिक समय में संगीत विद्यालय, शिक्षण संस्थाओं और आकाशवाणी व संगीत समारोहों से संगीत का अधिक जुड़ाव होने के कारण ख्याल गायन शैली सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है।

अन्त में मैं कवि 'गुरु रविन्द्र नाथ टैगोर' द्वारा लिखित कुछ पंक्तियों से समाप्त करना चाहूँगी-"अतीत आदर्श की ध्यान-धारणा को केवल अनुकरण के द्वारा ही प्राप्त नहीं किया जा सकता। यही है कला-आंदोलन का प्रकाश। केवल प्राचीन युग के संगीत शास्त्रों में आबद्ध न रहकर दैनन्दिन जीवनधाराओं के विभिन्न वैचित्र्यों में प्रकाश डालकर कला की नई-नई संभावनाओं को विकसित करना चाहिये।"

....

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन शैलियों का क्रमिक विकास
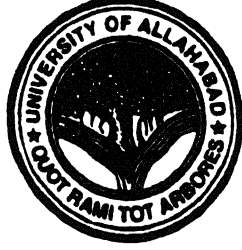
इलाहाबाद विश्वविद्यालय को संगीत विषय में
'डॉक्टर ऑफ फिलासफी' की उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशिका
डा० स्वतंत्र शर्मा
एम.ए., डी. लिट. (संगीत गायन)
संगीत व प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्री
श्रीमती सीमा श्रीवास्तव
एम.ए. (संगीत गायन)
संगीत व प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
संगीत प्रवीण
प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

अप्रैल, 2001

डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा

एम0ए0,डी0लिट0

संगीत व प्रदर्शन कला विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

8/2 अ, बैंक रोड

इलाहाबाद।

दूरभाष:440710, 642382

प्रमाण—पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध **'भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन शैलियों का क्रमिक विकास'** श्रीमती सीमा श्रीवास्तव का मौलिक शोध कार्य है, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संगीत विषय में "डॉक्टर ऑफ फिलासफी" की उपाधि हेतु प्रेषित किया जा रहा है। यह सम्पूर्ण कार्य मेंरे निर्देशन में सम्पादित हुआ है। शोधकर्त्री ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार निर्धारित उपस्थिति पूर्ण की है।

Ssharma 20.4.2010

(डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा)

निर्देशिका

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय –

भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास		1–7

द्वितीय अध्याय –

शास्त्रीय संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासकि पृष्ठभूमि		8–40
1.	वैदिक युग में संगीत–ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद	9–13
2.	पौराणिक काल में संगीत	13–14
3.	महाकाव्य काल में संगीत–रामायण काल, महाभारत काल	14–17
4.	पाणिनी काल एव जनपद काल में संगीत	17–18
5.	जैन युग एवं बौद्ध युग में संगीत	18–20
6.	मौर्य काल एवं शुंग काल में संगीत	20–21
7.	कनिष्क काल एवं नाग युग में संगीत	22–23
8.	गुप्त काल तथा हर्षवर्धन काल में संगीत	23–25
9.	राजपूत काल में संगीत	25–26
10.	मध्यकाल मुस्लिम प्रवेश युग में संगीत	26–28
11.	तुगलक युग एवं लोदी काल में संगीत	28–29
12.	मुगल काल में संगीत	29–34
13.	आधुनिक काल–उत्तरार्ध अथवा वर्तमान आधुनिक काल	34–40

तृतीय अध्याय –

विषय-प्रवेश : गायन शैलियों का क्रमिक विकास शास्त्रीय दृष्टि से		41–69
1.	गीति तथा जातिगायन	42–43

2. प्रबन्ध 43–44

3. ध्रुवपद व धमार 44–52

4. ख्याल व टप्पा 53–58

5. ठुमरी, तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत, सरगम, रागमाला, चतुरंग, सादरा 59–69

चतुर्थ अध्याय –

गायन शैलियों के विकास में गीति, जाति गायन, एवं प्रबन्ध शैली का विस्तृत अध्ययन 70–104

1. गीति–गीति के प्रकार, लक्षण व विशेषतायें 72–76

2. ध्रुवा–ध्रुवालक्षण, नाट्य में ध्रुवा, ध्रुवा भेद, भरतकालीन ध्रुवागीत 76–82

3. जातिगायन–जातिगायन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत जाति के लक्षण, जाति से रस निष्पत्ति 82–91

4. प्रबन्ध–प्रबन्ध का अर्थ, प्रबन्ध के अंग, प्रबन्ध की जातियाँ, प्रबन्ध के प्रकार व शाखायें, प्रबन्ध का उदा0 'गीत गोविन्द', 'प्रबन्ध के विशेष तत्व, एक प्रबन्ध स्वरलिपि सहित 91–104

पंचम अध्याय –

ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव, विकास व परम्परा 105–185

1. ध्रुवपद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत व ध्रुवपद की परिभाषा 108–113

2. ध्रुवपद की बानियाँ व धातु 113–115

3. ध्रुवपद के अंग व ध्रुवपद के विषय व स्रोत 115–121

4. भक्तिकालीन व रीतिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन 121–138

5. ब्रज भाषा के ध्रुवपदकार व रीतिकालीन ध्रुवपदकार 138–153

6. ध्रुवपदकारों के आश्रयदाता 153–171

7. कुछ ध्रुवपद स्वरलिपि सहित 175–185

षष्टम अध्याय –

धमार गायकी, एक रंगारंग परम्परा 186–197

1. धमार का अर्थ व विभिन्न गायकों द्वारा गाये गये धमारों का उदाहरण 187–193

3. कुछ धमार स्वरलिपि सहित 193–197

सप्तम अध्याय –

वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली का विकास 198–249

1. ख्याल की उत्पत्ति और उसके विभिन्न अर्थ 199–206

2. ख्याल शैली के अवयव 206–208

3. ख्याल शैली के प्रकार व अंग 208–220

4. ख्याल शैली के घराने 220–238

5. ख्याल शैली का साहित्यिक पक्ष 238–243

6. कुछ ख्याल स्वरलिपि सहित 244–249

अष्टम अध्याय –

टप्पा–शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली : विकास व महत्व 250–263

1. लोकगीत के रूप में टप्पा 252–254

2. टप्पे का विकास 254–256

3. बंगाल में टप्पे का विकास 256

4. विभिन्न प्रान्तों के टप्पे एवं उनका पारस्परिक अध्ययन 256–257

5. टप्पा गायकों की गायन शैलियों की विशेषता व अन्तर तथा टप्पे के घराने 258–260

6. टप्पे का साहित्य व टप्पे की स्वरलिपि 260–263

नवम अध्याय –

गायन शैलियों की परम्परा में ठुमरी का स्थान व विकास 264–307

1. ठुमरी की उत्पत्ति व अर्थ 264–270

2. चर्चरी और रास से ठुमरी का उद्‌गम 270-276

3. ठुमरी का इतिहास, ठुमरी के काव्य व ठुमरी के विषय 276–295

4. आधुनिक समय में प्रचलित ठुमरी की शैलियाँ 296

5. बोलबाँट की ठुमरी और उसकी गान शैली 296–298

6. बोलबनाव की शैली और उसकी गान शैली 298–299

7. पूरब अंग व पंजाब अंग 299–303

8. उदाहरण स्वरूप कुछ ठुमरियों की स्वर लिपियाँ 304–307

दशम अध्याय –

तराना, त्रिवट, दादरा, चतुरंग, सादरा आदि गायन शैलियों का शास्त्रीय संगीत में महत्व व विकास 308–323

1. उपरोक्त शैलियों की कुछ स्वरलिपियाँ 314–323

एकादश अध्याय –

निष्कर्ष एवं समालोचना 324–330

प्राक्कथन

भारतीय संगीत का इतिहास आरम्भ से ही उपलब्धियों का इतिहास रहा है। भारतीय संगीत की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना कि पश्चिमी देशों से भारत का सम्बन्ध। अन्य कलाओं की अपेक्षा सभी ललित कलाओं में संगीत सूक्ष्मतम है, जहाँ कि संगीतज्ञ कैनवैस, तूलिका, छेनी, हथौड़ी, आदि जैसे किसी भी बाह्य उपकरण का आश्रय नहीं लेता बल्कि शब्द ब्रह्म और नाद ब्रह्म की अनुभूति और अभिव्यक्ति के कारण संगीत मधुरतम अभिव्यक्ति का स्थान ले लेता है। संगीत में ही कलाकार निर्गुणात्मक नाद ब्रह्म को गायन शैलियों एवं उसके अन्तर्गत् स्वर विस्तार के माध्यम से सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है। संगीत विकास के विभिन्न स्तरों जैसे आदिम, प्रागैतिहासिक, वैदिक, शास्त्रीय मध्ययुगीन से होता हुआ आधुनिक स्वरूप में आया। भारतीय संस्कृति की भावना को अपने में समाहित किये हुये तथा परम्परा को अक्षुण्य रखते हुये ये मन्दिरों व राजदरबारों से आधुनिक संगीत समारोहों और गोष्ठियों तक पहुँचा है। जिसमें संगीत की गायन शैलियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा यद्यपि ये गायन शैलियाँ और इनमें गीतों के बोल समय-समय पर बदलते और परिवर्तित होते रहे फिर भी अधिकांश विषयवस्तु प्राचीन ही है।

आरम्भ से संगीत का तात्पर्य नाट्यसंगीत और नृत्य से था तथा ये धर्म एवं दर्शन से सम्बद्ध था। शतियों तक मन्त्रों का गायन एवं पाठ वैदिक कर्मकाण्ड की विशेषता रही। भारतीय दर्शन के अनुसार, मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य आवागमन के चक्र से मोक्ष प्राप्ति है और नादोपासना इस लक्ष्यप्राप्ति का एक मुख्य साधन रहा। संगीत के प्रति भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण, भारतीय संगीत की महत्वपूर्ण

विशेषता है। नटराज शिव के रूप में शिव संगीत के स्रष्टा हैं, वीणा बजाते हुये नारद संगीत के आदि गुरु हैं। पूर्व वैदिक काल की संगीत परम्परा को सिन्धू घाटी की सभ्यता में देखा जा सकता है। प्राचीन हिन्दु नाद, गन्धर्व, वेद और उसकी तत्व मीमांसा से परिचित थे। ऋग्वेद की ऋचायें संगीत बद्ध शब्दों के आरम्भिक उदाहरण हैं। सामवेद के समय तक गायन की विशिष्ट प्रणाली विकसित हो चुकी थी। बौद्ध साहित्य भी धार्मिक एवं धर्म निरपेक्ष संगीत के प्रचलन की पुष्टि करता है। इसी प्रकार प्रत्येक युग में संगीत विकास क्रम की लम्बी परम्परा के माध्यम से आगे बढ़ता रहा।

भारतीय संगीत आज राग पद्धति पर आधारित है किन्तु राग शब्द प्राचीन संगीत में नहीं मिलता। प्राचीन काल से ही गायन शैलियों के अनेक प्रकार प्रचार में आये जिनका अध्ययन मैंने अपने शोध प्रबन्ध में करने का प्रयत्न किया है। क्योंकि संगीत की अभिव्यक्ति शब्द और सुरों के माध्यम से ही होती है और ये शब्द और स्वर प्राचीन काल से ही किसी न किसी गायन शैली के अन्तर्गत् स्थान पाते रहे। इस शोधकार्य को करते समय मैंने यह अध्ययन करने का प्रयास किया है कि आज गायन के क्षेत्र में जो सबसे प्रचलित ख्याल शैली एवं अन्य शैलियाँ जैसे- ठुमरी, टप्पा, दादरा, इत्यादि हैं उनकी परम्परा प्राचीन काल की किस गायन शैली के साथ सम्बद्ध है, क्योंकि यह तो निश्चित है कि आज की प्रचलित गायन शैलियाँ मात्र आधुनिक संगीत की देन नहीं हैं, बल्कि विकास के लम्बे क्रम में इनकी एक ऐतिहासिक परम्परा है।

इस शोध प्रबन्ध को मैंने दस अध्यायों में विभाजित किया है-

प्रथम अध्याय "भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास" के अन्तर्गत् मैंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि संगीत की उत्पत्ति

व विकास का क्या क्रम रहा है। जिसके अन्तर्गत् विभिन्न विचारकों के विभिन्न मतों का वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय "शास्त्रीय संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि" में मैंने अंधकार युग से लेकर आधुनिक युग तक के भारतीय संगीत के इतिहास का क्रमबद्ध रूप में वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय विषय प्रवेश के अन्तर्गत् "गायन शैलियों का क्रमिक विकास - शास्त्रीय दृष्टि से" में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी गायन शैलियों का शास्त्रीय दृष्टि से संक्षेप में वर्णन है। जिसमें गीति, ध्रुवा, जाति, प्रबन्ध, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, सादरा, सरगम, लक्षण गीत, इत्यादि सभी का संक्षेप में वर्णन किया है। प्रत्येक का विस्तारपूर्वक वर्णन अलग-अलग अध्यायों में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय "गायन शैलियों के विकास में गीति, जाति गायन एवं प्रबन्ध शैली का विस्तृत अध्ययन" में गायन शैलियों के विकास क्रम में सर्वप्रथम गीति, ध्रुवा, जातिगायन एवं प्रबन्ध, प्रत्येक शैली का अलग-अलग विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित गीतियों के दो प्रकार थे- 1. स्वराश्रिता 2.पदाश्रिता। इन गीतियों की संख्या विभिन्न शास्त्रकारों के अनुसार, बदलती गई जिनका वर्णन हम आगे करेंगे। इसके पश्चात् ध्रुवा-लक्षण, भेद तथा भरतकालीन ध्रुवा गीत का उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् जातिगायन, जिसका समय 800ई0 तक माना गया है, का वर्णन है, जो नाट्यशास्त्र में वर्णित ध्रुवा गीतों की स्वरालिपि या संगीतिक अंग थीं। नारद द्वारा वर्णित पाँच श्रुतियाँ दीप्ता, आयता, मृदृ, मध्या, करुणा 22 श्रुतियों में परिणित हुईं, वही पाँच श्रुतियाँ जाति कहलाईं। भरत द्वारा वर्णित 18 जातियाँ, उनके दस

लक्षण, जाति से रस निष्पत्ति इत्यादि सभी का वर्णन किया गया है। जाति के बाद भारतीय संगीत की प्राचीन गायन शैली प्रबन्ध का वर्णन किया गया है। प्रबन्ध के अन्तर्गत् जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' का भी वर्णन किया गया है। प्रबन्ध के चार धातु, छः अंग, पाँच जातियाँ प्रबन्ध के में जिन तत्वों का समावेश होता है उन सभी का इस अध्याय के अन्तर्गत् वर्णन किया है।

पंचम अध्याय में "ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव, उसके विकास व परम्परा" का वर्णन है। जिसके अन्तर्गत् राजा मानसिंह को ही ध्रुवपद शैली का जन्मदाता माना गया है। यह शैली प्रबन्ध से आविष्कृत थी। इस अध्याय के अन्तर्गत् ध्रुवपद के उद्गम के विषय में अनेक विद्वानों के मतों का निरूपण है। साथ ही विद्वानों के मतानुसार, ध्रुवपद की परिभाषा दी गई है और ध्रुवपद की चार बानियाँ, चार धातु, ध्रुवपद के छः अंगों, ध्रुवपद के विषय व स्रोत का वर्णन है। इसके अतिरिक्त ध्रुवपदकारों की उपलब्ध कृतियों के आधार पर साहित्यिक मूल्यांकन, ध्रुवपदकारों व ध्रुवपदकारों के आश्रयदाताओं का विस्तृत वर्णन इस अध्याय के अन्तर्गत् किया गया है।

षष्ठम अध्याय "धमार गायकी : एक रंगारंग परम्परा" में धमार के विकास क्रम का वर्णन किया है। धमार के अन्तर्गत् होरी को भी समाहित किया गया है। कुछ धमार व होरी के बोलों को भी वर्णित किया गया है तथा कुछ धमार गायकों द्वारा रचित धमार के बोलों का भी वर्णन है।

सप्तम अध्याय "वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली का क्रमिक विकास" के अन्तर्गत् ख्याल की उत्पत्ति, अर्थ तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारकों के मतों का निरुपण किया गया

है, साथ ही ख्याल शैली के अंग, ख्याल के घराने व ख्याल शैली के साहित्यिक पक्ष का वर्णन किया है।

अष्टम अध्याय "टप्पा - शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली: विकास व महत्व" के अन्तर्गत् टप्पा के विभिन्न अर्थ, उद्‌गम, गायन शैली, लोकगीत के रूप में टप्पा, टप्पे का विकास, विभिन्न प्रान्तों के टप्पे, उनका पारम्परिक अध्ययन, बंगाल में टप्पे का विकास, टप्पा गायकों के गायन शैलियों की विशेषता व अन्तर, टप्पे के घराने, टप्पे में प्रयुक्त होने वाले राग, भावपक्ष, कलापक्ष इत्यादि अंगो पर विस्तृत वर्णन किया है।

नवम अध्याय "गायन शैलियों की परम्परा में ठुमरी का स्थान व विकास" में मैंने उपशास्त्रीय संगीत की गायन शैली ठुमरी का वर्णन किया है। जिसमें ठुमरी के विभिन्न अर्थ, उसके उद्‌गम से सम्बन्धित विभिन्न विचारकों के मत, चर्चरी और रास से ठुमरी का सम्बन्ध, चर्चरी व ठुमरी गीतों में अन्तर, ठुमरी का इतिहास, ठुमरी के विभिन्न गायक, ठुमरी के अंग व ठुमरी की गायन शैलियों के बारे में वर्णन किया है। कुछ ठुमरी के उदाहरण भी दिये हैं।

दशम अध्याय "तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत, सरगम, रागमाला, चतुरंग, सादरा आदि गायन शैलियों का शास्त्रीय संगीत में महत्व व विकास" के अन्तर्गत् उपरोक्त शैलियों का वर्णन किया गया है।

शोधकार्य के दौरान मुझे अनेक समस्याओं एवं जटिलताओं का सामना करना पड़ा जिससे मैं कई बार निराश भी हुई, किन्तु ऐसे समय में मुझे प्रेरणा देने वाली, मेंरी पथ प्रदर्शक, संगीत जगत की महान विभूति अत्यन्त विदुषी, स्नेही, वात्सल्यमयी एवं उदार ह्रदया माननीया डॉ0 श्रीमती स्वतन्त्र शर्मा, संगीत व प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद हैं। आपने अपने स्नेही व

उदार ह्रदय से मेंरे प्रति मातृभाव रखते हुए इस कार्य में आने वाली अनेक समस्याओं, जटिलताओं एवं निराशाओं से लड़ने का साहस व लक्ष्य तक पहुँचने की प्रेरणा प्रदान किया। शोध प्रबन्ध जो आज इस रूप में है वह उन्हीं की स्नेहमयी कृपा का प्रतिफल है। आपने अपने संग्रहित पुस्तकालय से अनेक पुस्तकों को अध्ययन व मनन के लिये प्रदान किया, साथ ही साथ दिशा निर्देश भी प्रदान किया। आपके इस महान उपकार, असीम कृपा, स्नेही, अत्यन्त उदारता व अनुकम्पा को शब्दो में व्यक्त कर पाना तो असम्भव है क्योंकि शब्दों की क्षमता तो सीमित है। इसे तो केवल अपने हृदय से ही अनुभव कर सकती हूँ।

परम श्रद्धेय, महान विभूति एवं मेंरे पूजनीय गुरू जी पं0 प्रेमकुमार मलिक ने भी मुझे समय-समय पर शोध कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया।

डॉ0 नीरज खरे (प्रवक्ता, संगीत विभाग) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के प्रति भी मैं ह्रदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपना बहुमूल्य समय देकर संगीत विभाग (बी0एच0यू0) के पुस्तकालय से अनेक पुस्तकें अध्ययन के लिये उपलब्ध करायीं। इसके लिये मैं उनकी सदैव आभारी रहूँगी।

इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि मानव जीवन में उसके लक्ष्य तक पहुँचाने वाले कुछ प्रेरणास्रोत होते हैं। इसमें परिवार का सहयोग सर्वोपरि होता है। यहाँ सर्वप्रथम मैं अपने पूज्य माता-पिता डॉ0 हनुमान प्रसाद श्रीवास्तव व श्रीमती प्रभा श्रीवास्तव के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य के पूर्ण होने तक विभिन्न रूपों में सहयोग देकर मुझे इस कार्य के लिए प्रेरित तथा जागरूक किया। इसके अतिरिक्त मेंरे भाईयों श्री सत्यप्रकाश श्रीवास्तव व श्री सुशील कुमार श्रीवास्वत तथा बहनें श्रीमती शशी

श्रीवास्तव व श्रीमती शीला श्रीवास्तव ने भी इस कार्य को पूर्ण करने के लिये मुझे हमेंशा उत्साहित किया। इन सबके लिए मैं श्रद्धा व स्नेह व्यक्त करती हूँ।

शोध कार्य करते समय ही परिणय सूत्र में बँध जाने के कारण मेंरे इस कार्य में कुछ और स्नेही लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ, जिनमें सर्वप्रथम माता-पिता स्वरूप मेंरे बड़े जेठ व जेठानी श्री बशिष्ठ कुमार सिन्हा व श्रीमती मधु सिन्हा तथा छोटे जेठ व जेठानी श्री अशोक कुमार सिन्हा तथा श्रीमती इन्दु सिन्हा के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। मेंरी बेटी के होने पर एक बार मैं पुनः निराशा से घिर गई और मुझे अपना शोध कार्य पूर्ण होना स्वप्न सा प्रतीत होने लगा। उस समय मेंरी बड़ी जेठानी ने मुझे पढ़ने व शोधकार्य पूर्ण करने के लिए उत्साहित व प्रेरित किया। दोनों ही जेठानियों ने मेंरी बेटी यशी की जिम्मेंदारी को पूर्ण रूप से वहन करके मुझे ज्यादा से ज्यादा पढ़ने का समय प्रदान किया और इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया। उन लोगों के प्रति में हृदय से श्रद्धा एवं अपना आभार व्यक्त करती हूँ। इसके अतिरिक्त में अपनी भतीजियों कृतिका व शिविका के प्रति भी स्नेह व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे सहयोग दिया।

इन सबके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण सहयोग मुझे मेंरे पति श्री राघवेन्द्र कुमार सिन्हा से प्राप्त हुआ। उनकी इच्छा व सहयोग के विरुद्ध यह कार्य पूर्ण होना असम्भव था। इस शोधकार्य के दौरान जहाँ कहीं भी मुझे जाना पड़ा वह अपने साथ ले गये और उन्होंने हर कदम पर मेंरा पूर्ण रूप से साथ दिया। यहाँ तक कि टाइपिंग से लेकर बाइन्डिंग तक अपना बहुमूल्य समय मुझे दिया सम्भवतः मुझे अपने पति से यही आशा भी थी। इस सहयोग के लिए मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस शोध कार्य को करते समय मैंने संगीत जगत के अनेक विद्वानों की पुस्तकों एवं लेखों का अध्ययन किया है, जिससे ये शोधकार्य पूर्ण हो सका है। मैं उन सब के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

शोधकर्त्री

Seema Srivastava

(श्रीमती सीमा श्रीवास्तव)

दिनांक :

20.4.2001

प्रथम अध्याय

भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास

भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास

संगीत चाहे भारतीय हो अथवा पाश्चात्य आदिम काल से जन–जीवन के साथ सम्बद्ध रहा है। भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य उसके सनातन स्वरूप में है, जो अनेक युगों के व्यतीत होने पर भी अपनी मूल अभिव्यंजना को अक्षुण्ण रखे हुए है। भारतीय संगीत विश्व की उन प्राचीनतम प्रणालियों में से है जिसका प्रसार भारत के सुदूर प्रदेशों में प्राचीन काल से होता आ रहा है। भारतीय संगीत की तुलना उस भागीरथी से की जा सकती है, जो गंगोत्री से निःसृत होती हुई प्रवाह स्थलों के अनुसार, नानाविध रूप धारण करती है। स्थानभेद भागीरथी के व्यक्तित्व में परिवर्तन उपलब्ध नहीं करता। यही सत्य भारतीय संगीत पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है। स्थानभेद के अनुसार, भारतीय संगीत की प्रणालियों में उत्तरार्ध तथा दक्षिणार्थ जैसा विभेद लक्षित होता है। फिर भी यह भिन्नता उसकी मौलिक एकात्मकता में कदापि हानि नहीं पहुँचाती प्लेटो ने कहा है कि "किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता का अनुमान उस देश की संगीत कला की अवस्था से लगाया जाता है। भारत की संस्कृति और सभ्यता विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रत्येक देश के संगीत पर उस देश की अपनी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव होता है। इन्हीं विशेष प्रभावों से होता हुआ संगीत अपनी विशिष्टता बना लेता है, भारतीय संगीत ने इन्हीं परिस्थितियों से लेकर विकास की लम्बी यात्रा पार की तथा वर्तमान रूप को प्राप्त किया।"

भारतवर्ष सदा से अपनी संस्कृति के लिये विश्व विख्यात है। सैकड़ों वर्ष पूर्व का इतिहास भी हमारी विभिन्न कलाओं के सम्मान

का गुणगान करता है। प्राचीन कला का सम्बन्ध पूर्णतया धर्म के साथ जुड़ा हुआ था। सभ्यता के आरम्भ में वैदिक संगीत की जो अनेकमुखी लोकधारायें प्रचलित थीं, उन्हें सबसे पहले भरतमुनि ने शास्त्रीय दृष्टि से संगठित करके संगीतशास्त्र की रचना की। भरतमुनि के बाद अनेक आचार्यों ने इस कला का विश्लेषण और व्याख्यान प्रस्तुत किया। पाश्चात्य विद्वानों ने भी ललित कला के रूप में संगीत को मान्यता दी है और उसे काव्य कला के बाद महत्व के दूसरे स्थान की अधिकारिणी ललित कला कहा है। संगीत का प्रभाव क्षेत्र अनन्त और अमिट होता है यह सर्वकालिक और सार्वभौम है। विश्व के किसी भी देश में किसी काल में सभ्य और असभ्य सभी मानव जातियों में किसी न किसी रूप में संगीत अवश्य रहा है।

भारतवर्ष में संगीत को वैज्ञानिक आधार पर नियोजित किया गया और उसके शास्त्रीय पक्ष को नियुक्त किया गया। संगीत सदा एक विकासशील कला के रूप में रहा है और इसके फलस्वरूप उसमें नये-नये रूप जुड़ते रहे हैं। समय-समय पर होने वाले आचार्यों ने अपने निरूपण में इन सब का समावेश किया और शास्त्र के आयाम में वृद्धि होती रही। चूंकि संगीत, सभ्यता और संस्कृति एक परम उपलब्धि है, इसीलिये समय-समय पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रभाव भी इस पर पड़ते रहे हैं। भारतवर्ष की सभ्यता व संस्कृति ग्रीक व चीन के समान पुरातन है। किसी देश की संस्कृति का मूल्यांकन वहाँ के कलाओं के विकास से किया जाता है। अतः भारत की सभी कलाओं के अवशेष यहाँ की सभ्यता का परिचय देते हैं। एक तरफ जहाँ खजुराहो, भुवनेश्वर, एलोरा की गुफायें तथा दक्षिण भारत के मन्दिर भारत की उच्च शिल्प कला का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी तरफ ऐतिहासिक इमारतें जो देश के

कोने-कोने में बिखरी हुयीं हैं, यहाँ के शासकों की कलाप्रियता का परिचय देती हैं। भारतीय संगीत अति प्राचीन है जिसका उल्लेख हमें वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उस युग में वेदों का पाठ सस्वर किया जाता था और वह आज भी उसी प्रकार हो रहा है।

संगीत का जन्म कैसे हुआ इस सम्बन्ध में विश्व के विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार, संगीत पहले ब्रह्मा जी के पास था और अन्त में नारद जी द्वारा संगीत का प्रचार इस पृथ्वी पर हुआ। संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुयी। ब्रह्माजी ने यह कला शिव जी को दी और शिव जी द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुयी। सरस्वती जी को इसीलिये "वीणा पुस्तक धारिणी" कहकर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वती जी से संगीत कला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ। नारद ने स्वर्ग, के गन्धर्व किन्नर एवं अप्सराओं को संगीत शिक्षा दी, वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान प्रभृति ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भूलोक पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुये।

दूसरे मत के अनुसार, नारद जी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की तब शंकर जी ने उन पर प्रसन्न होकर संगीत कला प्रदान की। पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर शिव जी ने अनेक अंग-प्रत्यंगो के आधार पर रुद्रवीणा बनायी और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की, तत्पश्चात् छठाँ राग पार्वती जी के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिव जी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुये एवं पार्वती जी द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुयी।

"संगीत दर्पण" के लेखक श्री दामोदर पंडित के मतानुसार, संगीत का जन्म ब्रह्माजी से आरम्भ होता है। इस प्रकार विभिन्न धर्मों में नाना प्रकार की कथायें प्रचलित हैं। अन्य मत के अनुसार, ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण बिना संगीत के किया परन्तु स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर आकर्षित नहीं हुये और सृष्टि का विकास तनिक भी नहीं हुआ। अतः सृष्टिकर्ता ने पुरुष और नारी को संगीत से सुशोभित किया। फिर क्या था, प्रथम स्वर पुरुष का प्रस्फुटित हुआ और उसके उपरान्त नारी का। नारी का सौन्दर्य संगीतमय हो गया और पुरुष की शक्ति भी संगीतमय हो गयी। दोनों के संयोग से एक नवीन सृष्टि का जन्म हुआ और नवीन सृष्टि यही है जो वर्तमान है।

एक अन्य मत के अनुसार, मानव ने संगीत को सर्वप्रथम बुलबुल से पाय। सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दामोदर पंडित ने स्वीकार किया कि संगीत की उत्पत्ति पक्षियों के विभिन्न स्वरों द्वारा हुयी। उन्होंने संगीत के सात स्वरों का आविर्भाव इस प्रकार बताया है- मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गंधार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढक से धैवत और हाथी से निषाद, स्वर की उत्पत्ति हुयी। मतंग की वृहद्देशी में कोहल के नाम से निम्न श्लोक उपलब्ध है -

"षड्जं वदति मयूर, ऋषभं चातकी वदेत्,
अजा वदति गान्धार, क्रौञ्चौ वदति मध्यमय्,
पु·· साधारणे काले, कोकिलः पंचमो वदेत्,
प्रावृट काले तु साम्प्राप्ते, धैवत ददुरो वदेत्,
सर्वदा च तथा देवि, निषादं वदते गजः।"

एक अन्य मत के अनुसार, मनुष्य ने संगीत का मनोरम उपहार प्रकृति से उपलब्ध किया, उसने अपने चारों ओर संगीतमय वातावरण देखा और उसे चारों ओर संगीत के मधुर स्वर सुनायी दिये, उसने उन मधुर स्वरों का अनुकरण किया और उन्हीं मधुर स्वरों का आगे चलकर विकास किया। अन्य विद्वानों के अनुसार, झरनों की जलध्वनि आगे चलकर विकसित संगीत में परिणति हो गयी। एक अन्य मतानुसार, पुरुष और नारी के प्रथम मिलन पर प्रस्फुटित स्वरों से संगीत का जन्म हुआ।

पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के अनुसार, संगीत का जन्म एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुआ। जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियायें मनोविज्ञान के आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मानव के मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

एक अन्य मत के अनुसार, पुरुष और नारी को संगीत एक दिया गया ईश्वरीय उपहार था और उन्होंने पृथ्वी पर आकर अपने उस संगीत का विकास किया। संगीत को ईश्वर का रूप माना गया है और इसी संगीत की साधना की गयी और साधना के द्वारा मनुष्य ने स्वरों के गर्भ से अनमोल रत्न निकाल लिये।

एक अन्य मत के अनुसार, संगीत के जन्म का कारण ईश्वर उपासना है। मनुष्य में ईश्वर के प्रति असीम आदर एवं श्रद्धा की भावना जागृत हो गयी और ईश्वर की उपासना करने के लिये उसे संगीत की आवश्यकता पड़ी और उसने संगीत सीखा और इस संगीत का जन्म धर्म पावनता पर हुआ। भारतीय संगीत ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष का प्रमुख संबल बन गया।

कुछ विद्वानों के अनुसार, संगीत का जन्म "ओम्" शब्द के गर्भसे हुआ। ओम् के तीनों अक्षर 'अ', 'उ', 'म' तीन शक्तियों के द्योतक हैं। 'अ' ब्रह्मा की उत्पत्ति, शक्ति का द्योतक है, 'उ' धारक, पालन रक्षण, और 'म' महेश शक्ति का द्योतक है। तीनों शक्तियों का पुंज ही त्रिमूर्ति परमेश्वर है। ओम् वेद का बीजमन्त्र है। ओम् ही साक्षात् शब्द ब्रह्म है, स्वर ब्रह्म है, शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओम् के गर्भ से हुयी है। पश्चिमी विद्वानों ने ओम् उच्चारण की ओर विशेष ध्यान दिया है। ओम् शब्द ही संगीत के जन्म का उपकरण है, जो ओम् की साधना कर पाते हैं वे ही वास्तव में संगीत का यथार्थ रूप समझ पाते हैं। इसमें लय, ताल, स्वर सभी कुछ तो है।

संगीत का उद्‌गम मानव जाति के उद्‌भव के साथ हुआ। मानव का जैसे ही नेत्रोन्मिलन हुआ उसके कण्ठ से ध्वनि, रुदन तथा गान इसी सहज ध्वनि के रुपान्तर है। नृत्य तथा वाद्य के सदृश कण्ठ संगीत की प्रेरणा आदिमानव को प्रकृति से उपलब्ध हुयी, वहाँ से परिष्कृत संगीत का निर्माण मानव कण्ठ से सम्पन्न हुआ। मानव कण्ठ स्वयं एक वाद्य है जो स्वर की सूक्ष्मताओं को आत्मसात् करने की क्षमता रखता है। प्रकृति के चिरन्तन स्तोभ से ऐसी शारीरी वीणा के माध्यम से संगीत का सम्पूर्ण विकास हो गया है यह कल्पना तर्कसंगत प्रतीत होती है।

संगीत शब्द की सार्थकता गीत के प्राघान्य में है। गीत, वाद्य तथा नृत्य में, गीत सदैव अग्रसर रहा है तथा अन्य दो उसके अनुगामी रहे है। भारतीय संगीत की जाति प्रणाली तथा राग प्रणाली प्रमुख है। भारतीय संगीत में गायन केवल सप्तक के 12 स्वर तक ही सीमित नहीं हैं विभिन्न स्वर संगतियों एवं गमकों के प्रयोग से

एक ही स्वर का गायन तथा वादन भिन्न छाया उपस्थित कर देता है। ऐसी स्वरावली का वादन पाश्चात्य संगीत के Equally Tempered वाद्यों के द्वारा सम्भव नहीं, जिसमें स्वर स्थानों की स्थिति सदैव अपरिवर्तित रहती है।

भारतीय संगीत में संवाद तत्व का विकास कण्ठानुकूलता तथा रागात्मकता के अनुसार, हुआ है। भारतीय संगीत के अन्तर्गत् Consonance का प्रयोग विशिष्ट राग की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल किया जाता है। भारतीय संगीत के ताल वाद्य पाश्चात्य ताल वाद्यों से अधिक विकसित है। पाश्चात्य ताल प्रणाली में केवल Simple quadruple दो प्रकार के तालों का वादन होता है। इनमें किसी प्रकार के बोल वैचित्र्य तथा लय वैचित्र्य के लिये अवकाश नहीं रहता है। इसके लिये भारतीय संगीत में सम तथा विषम दोनों प्रकार के ताल पाये जाते हैं। जहाँ बोल एवं लय वैचित्र्य के लिये पर्याप्त अवकाश रहता है। भारतीय संगीत की विशेषता उसकी मौलिक सृजनता में है। परम्परा तथा सम्प्रदाय को अक्षुण्य रखते हुये गान तथा वादन की मौलिकता की अभिव्यक्ति भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य है। राग की अभिव्यक्ति में गायक तथा वादक का व्यक्तितत्व सर्वोपरि है यही वैक्तितत्व विभिन्न सम्प्रदायों तथा घरानों का प्रवर्तक होता है।

....

द्वितीय अध्याय

शास्त्रीय संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(स) प्राचीन काल — वैदिक युग से लेकर राजपूत काल तक का संगीत

(रे) मध्य काल — मुस्लिम युग से लेकर मुगल काल तक का संगीत

(ग) आधुनिक काल — उत्तरार्ध अथवा वर्तमान आधुनिक काल में संगीत

शास्त्रीय संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संगीत का इतिहास अति प्राचीन समृद्ध व महत्वपूर्ण विषय है, इसका विकास भी अन्य कलाओं की भाँति शनैः शनैः हुआ किन्तु साक्ष्यों के अभाव में इसका कोई क्रमिक इतिहास उपलब्ध नहीं है।

भारत का प्राचीन इतिहास ईसा पूर्व 3500 का है। इसके पूर्व के इतिहास का कोई प्रमाण नहीं मिलता तथापि अनुमानतः कहा जा सकता है कि उसके पूर्व भी कोई सभ्यता या संस्कृति अवश्य रही होगी उस काल को इतिहासकारों ने "अन्धकार युग" कहा है। इस युग के कुछ पाषाण चिन्ह तथा कई प्रकार की मूर्तियाँ मिली हैं जिनसे इस काल में प्रचलित संगीत वाद्यों एवं सांगीतिक आकृतियों की जानकारी मिलती है।

प्रमाण रूप में भारत की सबसे प्राचीन व गौरवमयी संस्कृति का ऐतिहासिक दर्शन हमें सिन्धु सभ्यता में उपलब्ध होता है। जब सारा विश्व अशिक्षित व जंगली था उस समय यह सभ्यता सिन्धु घाटी के प्रदेश में पल्लवित हो रही थी। सिन्धु घाटी की खुदायी में प्राप्त कलात्मक आकृतियों से प्रमाणित होता है कि धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। ढोल, दुन्दुभी जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी चीनी-मिट्टी की एक मुद्रा में व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते एक पुरुष को अंकित किया गया है। दो मुद्राओं पर मृदंग जैसी वस्तुएं अंकित है। नृत्य लय दिखाने के लिये झाँझ व करताल वाद्य भी उपलब्ध थे। मुद्राओं तथा ताबीजों में वीणा के रूप वाली

वस्तुयें उपलब्ध है। धनुषाकार वीणा तथा अन्य वंशी जैसे वाद्य उपलब्ध है। ताबीजों से नृत्य के भी संकेत मिलते हैं। मिट्टी की बनी दो नर्तकियों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हैं। अतः कह सकते हैं कि नर-नारी दोनों ही संगीत प्रिय थे। शैव परम्परा का प्रवर्तन इसी काल में हुआ। मूर्ति, वृक्षादि पूजा भी निहित थी। तांडव नृत्य करते शिव की मूर्ति भी प्राप्त हुयी है। सार्वजनिक रूप से नृत्य व गाने का प्रयोग होता था। संगीत जीवन का आवश्यक अंग था। गाती हुयी नारी की मूर्ति भी मिली है। आर्यों को उत्कृष्ट संगीत की प्रेरणा अवश्य ही इसी काल के उत्कृष्ट संस्कृति से मिली होगी। संगीत और काव्य को निकट लाने में इस युग ने विशेष प्रयास किया है क्योंकि आर्यों को इसका समन्वित रूप प्रस्तुत करने की प्रेरणा इसी युग से मिली होगी।

खुदायी में इस काल की संगीत सम्बन्धीजो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे उस काल की कला व संगीत की उत्कृष्टता के प्रतीक हैं।

वैदिक युग में संगीत :-

भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग प्राचीनतम युग है। इसी काल से सबसे प्राचीन नियमित और सुसम्बद्ध संगीत मिलता है। वैदिक युग का आरम्भ आर्यों के आगमन से होता है। इनका संगीत इतना उच्चकोटि का व चमत्कारिक था कि ये देश विदेश जहाँ भी गये इन्होंने सबसे अधिक अपने संगीत की छाप उस देश पर डाली। संगीत की दो धारायें थी-

(1) शास्त्रीय संगीत

(2) लोक संगीत

वैदिक युग में प्राप्त वेदों से हमें उस युग की जो जानकारी प्राप्त होती है उसका क्रम इस प्रकार है-

ऋग्वेद में संगीत :-

ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके मन्त्र संगीतमय है। इस काल में परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था। संगीत का आयोजन गृहलक्ष्मी ही करती थी। गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का पर्याप्त प्रचलन था। तीनों प्रकार के वाद्य जिसे 'नाण्ठी' कहा जाता था का आविष्कार हो चुका था। अवनद्य वाद्यों में दुन्दुभी, आंदबर, भूमि, वनस्पति तथा तंत्र वाद्यों में कांड वीणा, कर्करी वीणा, वारण्य वीणा व सुषिर वाद्यों में तूणव, नादि और वाकुर आदि थे। ठाकुर जयदेव के अनुसार, यहाँ वीणा की जगह 'वाण' शब्द मिलता है।

ऋग्वेद की रचनायें स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण स्तोत्र कहलातीं थीं। गीत प्रबन्धों को 'गाथा' कहा जाता था। इसके लिये 'साम' नाम भी आता है। गाथाओं का गायन धार्मिक व लौकिक समारोहों में तथा साम का गायन अन्त्येष्टि के समय होता था। गाथा के गायक 'गायत्रिन' कहलाते थे।

नृत्य का कार्यक्रम खुले स्थान में जनसमूह के सामने होता था जिसमें सोमरस पीकर नर-नारी दोनों भाग लेते थे। मनोरंजन का प्रतीक 'समन' जिसमें युवक युवतियों के सांगीतिक प्रतिभाकी जाँच होती थी जिसे 'वर-वधू महोत्सव' भी कहते हैं। जहाँ विवाह के लिये चुनाव होता था। यही 'समन' आगे चलकर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ। समाज में संगीतज्ञों का उच्च्व स्थान था। बाह्मणों का संगीत पर एकाधिकार था।

यजुर्वेद में संगीत :–

इसमें उन मन्त्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्मकाण्ड के लिये होता था। होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा ये चार गायक थे। यज्ञ संचालन अध्वर्यु नामक ऋत्विज करता था। मन्त्र गद्यात्मक होते थे जो उपांशु स्वर में उच्चारित होते थे। यजुर्वेद में विशिष्ट सामों का सम्बन्ध विशिष्ट ऋतुओं जैसे– 'रथन्तर' साम का गायन बसन्त ऋतु में, 'बृहत्साम्' ग्रीष्म ऋतु में, 'वैरूप' वर्षा ऋतु में, 'शाक्वर' व 'रैवत' हेमन्त ऋतु में, से था। सामगायन मुख्य था। साम के विभिन्न खण्डों का गायन 'उद्गाता' द्वारा किया जाता था। उस समय साम वैदिक संगीत और गाथा नाराशंसी आदि लौकिक संगीत थे। अनेक वाद्य, वीणा, वाण दुन्दुभी, भूमि दुन्दुभी, शंख तथा तलब आदि थे। महिलाओं में संगीत कला विशेष रूप से थी। निम्नकुल की महिलाओं को लोक–नृत्यादि समारोहों में आमन्त्रित किया जाता था।

अथर्ववेद में संगीत :–

अथर्व संज्ञा उन मन्त्रों के लिये है जिनका प्रयोग जारण मारण आदि कार्यों के लिये किया जाता है। ये सुखमूलक व मंगलकारी हैं। अथर्ववेद में साम का पूर्ण गौरवगान हुआ है। अथर्ववेद में साम विश्वकर्मा परमात्मा को आदिम सृष्टि माना गया है। गाथा नाराशन्सी आदि लौकिक गीतों का गान विवाहआदि अवसरों पर किया जाता था। ऋग्वेद में 8.20.8 मन्त्र में 'वाण' वीणा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

"गोभिर्वाणों अज्यते् सोभरीणां रथे, कोशै हिरण्ययें।
गोबन्धवःसुजातासे इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु।।"

अर्थ– मरूत का 'वाण' सुनहरे रथों में (स्थित) सोभरियों (ऋषियों) के गान से व्यक्त (ध्वनित) होता है। महान सुजात् 'मरुत' जो गौ की सन्तति है हमें अन्न भोग और कृपा से सुमृद्ध करें। स्वामी प्रज्ञनानन्द के अनुसार–

"Indian Music is artistically fully developed, has a strong theoretical basis and a glorious history, extending over a span of 2000 years It possesses all the varieties viz, Art, Music, sacred music, dance music, folk music The beginning of Indian music is lost in the beautiful and fanciful legends of gods and goddesses, who were supposed to be its authors and patrons. The era of ancient music begins in the age of vedas. The vocal music emerged in the form of chanting the Sama Veda. The Vedic index shows a very wide variety of musical instrument use in vedic times." [1]

वाद्यों के अन्तर्गत् आधार, कर्करी तथा दुन्दुभी का उल्लेख अथर्व में स्थान–स्थान पर वर्णित है। अथर्ववेद में वर्णित है कि अप्सरायें गंधर्वों की पत्नियाँ होती थीं जो नृत्य करती हुयी सबका आमोद–प्रमोद करती थीं। पितरों की इष्टापूर्ति में सामगान का गायन होता था। साम के पाँच विभाग हिंकार, प्रस्ताव, आदि का विवरण है। बुनाई करते समय स्त्रियों द्वारा गान किया जाता था।

सामवेद में संगीत :–

सारा वैदिक साहित्य साम को संगीत मानता है। कहा जाता है साम संगीत से ही भारतीय संगीत का विकास हुआ सामवेद के मंत्रों द्वारा यज्ञ में देवताओं की स्तुति करते थे। ऋचा सामगान का

---

1 Historical Development of Indian Music-Swami Prajanananda - 1960

आधार है। ऋचाओं का गायन कुछ पद जोड़ कर जिन्हें स्तोत्र कहते हैं किया जाता था।

पहले सामगान में केवल तीन स्वर 'उदात्त', 'अनुदात्त', 'स्वरित' प्रयोग होते थे। आगे चलकर क्रमिक विकास के आधार पर वैदिक युग में ही सामगान सात स्वरों में होने लगा।

"सप्त स्वरा बस्तु गीयन्ते सामपि: साम गावधै:।।"

सामगान में छन्द गेय होते थे। सामगान के तीन भाग-प्रस्ताव, प्रतिहार और उद्गीत व उनके तीन उपांग-हिंकार, उपद्रव, निधान थे। आगे चलकर इन्हीं से ध्रुवपद के चार पद बने, सामगायन के दो रूप प्रचलित थे-

(1) आर्चिक

(2) गान संहिता

आर्चिक में ऋचाओं के बोल, गान संहिता में गीत के बोल थे। सामगायन के अतिरिक्त 'गाथा' लोकगीत के रूप में थी जिनका गायन विवाह आदि अवसरों पर वीणा के सहारे होता था, पर इनको उच्च स्थान प्राप्त नहीं था। स्त्रियाँ भी सामगान करती थीं। साम का आरम्भ व अन्त ओम् 'स्वर' से करने की प्रथा थी।

"ओमिती सामानि गायन्ति" (तैतरीय उपनिषद) स्वर साधना का नियम था। गायक के साथ तीन से छ: तक उपगायक होते थे जो 'हो' का स्वर का गान करते थे। जो मन्त्र गाये जाते हैं वही साम हैं- "गीतिषु सामाख्या।"

पौराणिक काल में संगीत :-

इस काल में उपनिषदों की स्थापना हुयी जिनमें संगीत का आभास मिलता है। वैदिक वाद्य यन्त्र ही इस युग में मिलते हैं।

वीणा के अतिरिक्त कोई नवीन वाद्य नहीं मिलते। कंठ संगीत व नृत्य में प्रगति हुयी। नाटक प्रथा की भी शुरुआत हुयी, नाटक संगीतपूर्ण होते थे। संगीत की विधिवत शिक्षा की परम्परा थी। विद्यार्थियों के लिये संगीत ज्ञान आवश्यक था। लोकगीतों व लोक नृत्यों का प्रचार बढ़ता जा रहा था।

उपनिषदों में सात स्वरों का स्पष्ट वर्णन है। मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण आदि में संगीत का विस्तृत वर्णन मिलता है। उपनिषद काल में संगीत कला में निपुण वर्ग को स्वर्गीय आनन्द का उपभोक्ता माना जाता था। उपनिषद काल में सामगान का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। आरम्भिक अवस्था से इस काल में सामगान का अत्यधिक विकास हो चुका था। मार्कण्डेय वायु विष्णु पुराणों में ग्राम राग, रागिनियों, मन्द, मध्य तार स्थानों, मूर्छना, नृत्य, नाट्य वाद्य आदि का वर्णन मिलता है। गीत, वाद्य, नृत्य से प्राप्त आनन्द को अलौकिक माना गया है।

रामायण काल में संगीत :—

इस काल में रामायण व महाभारत, महाकाव्यों की रचना हुयी। इन महाकाव्यों का रचना काल 500 ई0पू0 से 500 ई0 तक माना जाता है। इसकी रचना ऋषि वाल्मीकि ने की। लवकुश जैसे कुशल 'गायकों' द्वारा गेय काव्य में साहित्य तथा संगीत का समन्वय हुआ। रामायण में उल्लिखित है कि गंधर्व जन विशेषतया गान तथा वीणा वादन करते थे व अप्सरायें नृत्य करती थीं।

भारद्वाज मुनि के आश्रम में भरत के स्वगतार्थ इन गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने गीत नृत्य किया था। अलौकिक पुरुषों के जन्म विवाहादि अवसर पर इनके संगीत का आयोजन किया जाता था। 'तुम्बरु' का उल्लेख अप्सराओं के गान शिक्षक के रूप में हुआ है।

ललित कलायें तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग थीं। वाल्मीकि रामायण में विपची जैसी प्राचीन वीणाओं एवं शुद्ध सप्त जातियों का वर्णन है।वैदिक संगीत से भिन्न एक गांधर्व संगीत शैली प्रचलित थी। रामायण के बालकाण्ड में संगीत का वर्णन है-

"गायन्ता, नृत्य मानाश्च वादयन्तास्तु रावण।

आमोदम् परमम् यन्मूर्वशभरण भूषित:।।"

यहाँ नृत्य गीत व वाद्य का उल्लेख है। 'साम संगीत' उस समय पूर्ण उत्कर्ष पर था संगीत का एक प्रकार 'वर्ण संगीत' भी प्रचार में था। जो मात्रा ध्वनि व उच्चारण काल के भेद पर आधारित था। नृत्य, नृत्त, लास्य का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है। गायक, सूत मागध बन्दी तथा वारांगनायें संगीत का व्यवसाय करते थे। लोक कलाकारों का महत्वपूर्ण स्थान था।

रामायण काल में गान्धर्व के अन्तर्गत् श्रुति तथा स्वरों की वैज्ञानिक विवेचना आरम्भ हो चुकी थी। सात जातियों का उल्लेख है। "कैशिक" नामक विशिष्ट राग के प्रचलन का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। समाज का नैतिक स्तर ऊपर उठने लगा था। षड्ज मध्यम ग्राम का प्रचलन था। संगीत के उत्सवों का सार्वजनिक आयोजन होता था। रामचन्द्रजी के विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा मंगलगान का उल्लेख है-

"गावाहिं मंगल मंजुल बानी।

सुनि कलरव कलकंठ लजानी।।"

दुन्दुभी वाद्य रामायण काल का मुख्य वाद्य था वीणा तथा मृदंग आदि वाद्यों का भी वर्णन है। भेरी, मृदंग, शंख, मुरज तथा पणव का विशेष प्रचलन था। रामायण काल में संगीत का अत्यधिक विकास हुआ सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर ग व काकलीनी का

प्रयोग स्पष्ट होता है। इस काल में संगीत कला मनोरंजन का प्रमुख साधन था।

महाभारत काल में संगीत :-

महाभारत काल में साम व गन्धर्व दोनों का विपुल प्रचार था। वैदिक व लौकिक दोनों संगीत प्रणालियों का समान रूप से प्रचलन था। षड्ज तथा मध्यम ग्राम के अतिरिक्त गन्धार ग्राम का प्रचलन इस काल की विशेषता है। लोकोत्सवों पर गीत वाद्य तथा नृत्य का प्रयोग उल्लास की अभिव्यक्ति के लिये होता था, वीणा का अत्यधिक प्रचलन था। वीणा तथा बल्लरी के अतिरिक्त वेणु, मृदंग, पणव, पटह, मुरज, भेरी तथा शंख इत्यादि वाद्यों का भी प्रचलन था। सामगान की परम्परा यज्ञयागों मे होती थी। महाभारत काल में गेय प्रबन्धों के अन्तर्गत् साम, गाथा तथा मंगलगीतियों का विशेष उल्लेख पाया जाता है। संगीत के दिव्य कलाकारों के रूप में गंधर्व तथा किन्नरों का उल्लेख महाभारत में हुआ है। महाभारत काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य जीवन का अभिन्न अंग था। गीत, नृत्य, नाट्य का प्रयोग उत्सवों में होता था। लास्यादि नृत्यों में भाव प्रदर्शन का महत्वपूर्ण स्थान था। तत्, वितत्, घन तथा सुषिर वाद्यों के नाना प्रकारों का वर्णन है। वीणा तन्तु वाद्यों में सर्वाधिक लोकप्रिय थी। मंगल अवसरों पर शंख, भेरी, पुष्कर का समवेत निनाद किया जाता था। ताल के अन्तर्गत् पाणिताल, शम्या, सम आदि विभिन्न अंगों का उल्लेख महाभारत में हुआ है।

इस काल में संगीतज्ञों का उच्च स्थान था। संगीत नर नारियों में सामान्यत: प्रचलित था। एक ओर संगीत ईश्वरोपासना का माध्यम था व दूसरी ओर जनसाधारण के मनोरंजन का साधन था। महाभारत काल में सप्त स्वरों व गंधार ग्राम का भी वर्णन है। भगवान श्री

कृष्ण संगीत के महान् विद्वान थे। गीत, वाद्य, नृत्य में पूर्णरूपेण निपुण थे। तीन स्थानों, मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य वाद्य आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

महाभारत काल में धर्म व संगीत का घनिष्ठ व सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया। राजस्त्रियों व अन्तःपुर की महिलाओं के लिये संगीत शिक्षा का विशेष प्रबन्ध था।

पाणिनी युग में संगीत (८०० वर्ष ई०पू०) :—

८०० ई०पू० में पाणिनी द्वारा रचित कृति "अष्टाध्यायी" इतिहास में अमर है। ग्रन्थ व्याकरण पर लिखा होने के बावजूद भारतीय संगीत का रूप भी ज्ञात होता है। इस युग में संगीत ब्राह्मणों के हाथ में था। संगीत के रचयिता व शिक्षक ब्राह्मण ही थे। यज्ञादि अवसर पर मधुर स्वरों में मन्त्रों का पाठ होता था अनेक सांगीतिक उत्सव जैसे उद्यान क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, पुष्प चयन आदि समाज में प्रचलित थे। नृत्य भी काफी प्रचलित था। वाद्यों में विशेषकर वीणा, वंशी का प्रचलन था। वाद्यों की अपेक्षा कंठ संगीत इस काल में अधिक प्रचलित था। पाणिनी काल की विशेषता थी कि चारों वर्णों के संगीत की धाराएं अलग-अलग थीं। लोक संगीत भी शास्त्रीय संगीत के साथ प्रचलित था। इस युग में संगीत की पवित्रता और धार्मिकता उच्चकोटि की थी। भक्ति व ज्ञान का समन्वय इस युग में दिखता है। शास्त्रीय संगीत का काफी विकास हुआ। नर, नारी दोनों इससे अनुराग रखते थे। सात स्वर, गंधार, ग्राम का वर्णन मिलता है। गीत, वाद्य तथा नृत्य, नाट्य का आयोजन 'सम्मद' जैसे आनन्दोत्सवों पर होता था। वैदिक संगीत अपने उत्कर्ष पर था। इस प्रकार पाणिनी काल में संगीत उच्च शिखर पर था।

जनपद काल में संगीत :—

इस काल में संगीत की विशेष उन्नति नहीं हुयी। महाभारत काल में जो संगीत की स्थिति थी वह भी इस काल में स्थिर न रही। लोग आत्मसौन्दर्य की जगह बाह्य सौन्दर्य की ओर झुक गये थे। इस काल में वत्सराज उदियन नामक संगीतज्ञ थे, जिन्होंने संगीत के प्रसार व प्रचार के लिये अनेक प्रयत्न किये व आत्मिक सौन्दर्य पर विशेष बल दिया, परन्तु फिर भी संगीत मनोरंजन व विलासिता की ओर बढ़ता गया। उदियन महान वीणावादक थे। बर्मा, लंका आदि में भारतीय संगीत का व्यापक प्रचार हुआ। इस काल में लोकनृत्यों का निर्माण अधिक हुआ। नाटकों का भी प्रचलन थोड़ी मात्रा में था। नारियों के अन्दर सांगीतिक प्रवृत्ति अधिक मिलती है। स्त्री पुरुष मिलकर देवताओं की आराधना संगीत के माध्यम से करते थे।

जैन युग में संगीत :—

जैन आगमों का समय ई0पू0 4 से लेकर छठी ई0 तक रहा है। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी थे। यह एक अपूर्व मानसिक, आध्यात्मिक एवं कलात्मक क्रान्ति का युग था। संगीत कला को राज्याश्रय प्राप्त था। संगीत पर ब्राह्मणों का एकाधिकार न रहा। वह जनसाधारण में पहुँच गयी व एकसूत्रता की भावना पनपी। संगीत में आत्मिक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर कार्यक्रमों प्रचुर आयोजन गन्धर्व, नट, नट्टग, लासग, तुणेय, तुम्बवीणिय एवं मागहजन थे। किणिक जाति के लोग वाद्यों के लिये चर्म की थैलियाँ बनाते थे। आदिम नृत्य-नाट्य महावीर के जीवन पर आधारित पुरुष महिला के द्वारा समुचित भूमिका का अभिनय किया

जाता था। वाद्यवृन्द तथा नृत्य का प्रदर्शन कलात्मक आकृतियों के माध्यम के दिखाया जाता था। शंख का प्रयोग पर्यटक साधु महात्माओं द्वारा किया जाता था। चौदह पुष्प ग्रन्थों में से एक में इक्कीस मूर्च्छना व 11 अलंकार प्राप्त होता है। ठाणांग सुत में स्वरों की उत्पति, सप्त स्वरों का प्राणियों की ध्वनि से सम्बद्ध, स्वरों का मानव स्वभाव से सम्बन्ध, ग्राम, मूर्च्छनायें, गीत के गुण-दोष इत्यादि का विवरण पाया जाता है। संगीत का आधार कुछ सिद्धान्तों पर रखा गया। जैसे यदि संगीत शिक्षा लेनी हो तो अपने जीवन को बुराइयों से दूर रखो, जीव जन्तु को मत मारो, धन दौलत के लालच में मत पड़ो, इन्द्रियों को वश में करो, मन वचन से शुद्ध रहो। महावीर स्वामी के अनुसार, हिंसा करने वाले व्यक्ति संगीत जैसी कल्याणकारी कला साधना नहीं कर सकते। इन्हीं सिद्धान्तों ने संगीत को उच्च शिखर पर पहुँचाया। सार्वजनिक उत्सवों में पुरुष और नरियाँ गा बजाकर शामिल होते थे। इस युग में वीणा वाद्य का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। संगीत के क्षेत्र में प्रतियोगितायें आरम्भ हो गयी थीं। संगीत के शास्त्रीय पक्ष का विकास इस युग में अधिक हुआ। अनेक नयी गायन शैलियाँ विकसित हुयीं। वाद्यों में विशेषकर मृदंग, वीणा तथा दुन्दुभी का प्रयोग होता था।

बौद्ध युग में संगीत :-

इस धर्म के इस धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध थे। इनका समय छठीं शताब्दी ई0पू0 (ईसा से 563 वर्ष पूर्व) माना जाता है। बौद्धकाल में संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन था। कला के कारण गणिकाओं को उच्च दृष्टि से देखा जाता था व कला का व्यवसाय करने वाले को हीन माना जाता था।

संगीताराधना के लिये देवदासियों की नियुक्ति की जाती थी। संगीत का सामूहिक अनुष्ठान गिरग्ग, समज्ज तथा अन्य लोकोत्सवों पर किया जाता था, नाट्य गायन का कार्यक्रम होता था। नाटकों का भी प्रचलन था जिसमें संगीत का विशेष स्थान था। उच्च वर्ग में संगीत की विधिवत शिक्षा का प्रचलन था। संगीत तथा नाट्य को राज्याश्रय प्राप्त था। बुद्ध के जन्म पर पाँच सौ वाद्यों का वृन्दवादन हुआ था। सामूहिक उत्सव 'समज्जा' या 'समाज' में गीत, वाद्य, नृत्य के अलावा आरव्यानों का गान भी किया जाता था। बौद्धकाल में 'तत्' वाद्यों में वीणा परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी व तुंगवीणा का उल्लेख प्राप्त होता है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, भेरी, पणव, दुन्दुभी व घनवाद्यों में घण्टा, झल्लरी तथा कान्स्य ताल का उल्लेख मिलता है।

मौर्य काल में संगीत :–

चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत का बड़ा प्रेमी था। मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक "इण्डिका" में चन्द्रगुप्त की संगीत प्रियता की बड़ी प्रशंसा की है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत के विकास के लिए बहुत प्रयत्न किया। किन्तु उतनी उन्नति संगीत की नहीं हो पायी जितनी बौद्ध काल में थी। यद्यपि उसके दरबार में नित्य प्रति कलाकारों को नृत्य व गाने के लिये आमन्त्रित कर उन्हें पुरस्कृत भी किया जाता था। वाद्यों में वीणा, मृदंग, मजीरा, ढोल, दुन्दुभी, ढफ आदि अधिक प्रचलित थे। सार्वजनिक रूप से संगीत का आयोजन अधिक होता था।

चन्द्रगुप्त की मृत्य के पश्चात् बिन्दुसार ने राज्य का कार्यभार सँभाला। परन्तु संगीत क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

(273-232ई0पू0) में बिन्दुसार के बाद सम्राट अशोक के काल में पुन: संगीत का आध्यात्मिक रूप मुखरित हुआ। 262ई0पू0 के लगभग कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक का हृदय परिवर्तन हुआ और उसने बौद्ध धर्म अपना लिया। उसके इस परिवर्तन का प्रभाव तत्कालीन साहित्य व संगीत पर पड़ा। संगीत का स्वरूप आध्यात्मिक हो गया और उसका ध्येय केवल मनोरंजन न होकर मनुष्य मात्र की सेवा करना हो गया। पुन: 'समज्जा' नामक संगीत उत्सव का आयोजन होने लगा। परन्तु नैतिकता से परे आचरण होने पर अशोक ने समज्जा का बहिष्कार कर दिया। संगीतकार व समाज दोनों के लिये नैतिकता व पवित्र आदर्शों को आवश्यक माना।

शुंग काल में संगीत :-

1821 ई0पू0 अन्तिम मौर्य सम्राट वृहदस्थ को मारकर उसका सेनापति पुष्पमित्र शुंग मगध के सिंहासन पर बैठा। वह साहित्य व कला का प्रेमी था। इस काल में विद्वान पतंजलि उत्पन्न हुये। जिन्होंने "महाभाष्य" की रचना की जिसमें संगीत के चारों अंगो का उल्लेख है। पुष्पमित्र ने दो बार 'अश्वमेघ यज्ञ' किया जिसमे संगीत का प्रयोग किया गया था। वैदिक यज्ञों का पुन: प्रचार इस काल में होने लगा जिसमें मन्त्रों को गाकर प्रस्तुत करते थे। प्रतिघात के वाद्यों में भेरी, दुन्दुभी, का प्रचलन था। श्वांस से बजाये जाने वाले वाद्यों में वेणु था। तन्तु के वाद्यों में वीणा का प्रचलन था। इसका एक प्रकार 'विपची' था। प्रतिघात के वाद्यों में मृदंग के अतिरिक्त मड्डुक, पणव, दुर्दर आदि हैं। शुंग काल में पाँच स्वरों की प्रधानता थी। पंतजलि के महाभाष्य में संगीत और वाद्य के साथ नृत्य का भी संकेत मिलता है।

कनिष्क काल में संगीत (783–120ई0) :–

सम्राट कनिष्क संगीत का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे। इस काल में संगीत का आध्यात्मिक पक्ष उभर कर सामने आया। संगीत का स्तर पुनः ऊँचा उठ गया। वाद्यों में वीणा का प्रचलन काफी था। गायन के साथ संगति वीणा से होती थी। शुभ अवसरों पर गायन-वादन का आयोजन भी होता था। सर्वधारण रुचिपूर्वक संगीत शिक्षा ग्रहण करते थे। 'भाव नृत्य', 'कल्पना नृत्य' का अधिक प्रचलन था। संगीत के विकास में कनिष्क ने अत्यधिक योगदान दिया। अनेक नृत्य गृहों व नृत्यशालाओं की स्थापना करवायी जहाँ कश्मीर, अफगानिस्तान, चीन, मगध से कलाकार समय-समय पर एकत्रित होते थे। संगीत समारोहों से एकरूपता व कलात्मकता को बल मिले। संकीर्ण विचारधारा की जगह विश्वबंधुत्व की भावना जागृत होने लगी। इसी से संगीत का स्तर ऊँचा हो गया। उत्तर दक्षिण के संगीतज्ञों में आदान-प्रदान होता था। इसी समय अश्वघोष नाम के महान संगीतज्ञ का जन्म हुआ। जिन्होंने उच्चस्तरीय संगीत का निर्माण किया व "बुद्धचरित" महाकाव्य का निर्माण किया जिसमें उच्चकोटि के गीत मिलते हैं।

नाग युग में संगीत (तीसरी शताब्दी ई0पू0) :–

नाग युग की सबसे बड़ी देन भरत मुनि कृत "नाट्यशास्त्र" है। भरत संगीत के आदि पुरुष कहलाते हैं और उनकी कृति संगीत के इतिहास की सर्वाधिक प्राचीन कृति है। नाट्यशास्त्र की रचना तृतीय शताब्दी के लगभग हुई थी।

नाट्यशास्त्र साहित्य व संगीत का वृहद कोष है। रस, छन्द, भाषा, वेशभूषा, रंगमंच, अभिनय, संगीत, नृत्य, नाट्य, गान्धर्व, स्वर, ताल, पद, स्वर, श्रुति ग्राम, मूर्च्छना, जातियाँ, चार वर्ण, अलंकार, गीति, ध्रवा गीति, इत्यादि विषयों का नाट्यशास्त्र में वृहद वर्णन है।

गुप्तकाल में संगीत :-

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है जिसमें, साहित्य, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ। इस युग में शास्त्रीय व लौकिक दोनों पक्षों का विकास हुआ। गुप्तकाल के राजा जन्मजात संगीतप्रिय थे। सर्वप्रथम राजा चन्द्रगुप्त प्रथम (ई0 320-335) हुये। चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसका पुत्र समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा। समुद्रगुप्त महान् संगीतज्ञ था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ और नर्तक भी थे। उसने संगीत के विकास और परिष्कार में बहुत योगदान दिया। समुद्रगुप्त कुशल वीणावादक भी था। शास्त्रीय संगीत का इस युग में अधिक प्रचलन था। संगीतकारों को उच्च स्थान प्राप्त था। रागरागिनियों का प्रचलन था। लोक नृत्य व लोकगीतों का भी निर्माण इस काल में हुआ। समुद्रगुप्त ने स्वयं सुन्दर गीतों की रचना की व उन्हें स्वरबद्ध किया। समुद्रगुप्त के बाद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समय आता है, जो कि अत्यन्त कलाप्रेमी थे। इसी युग में सुप्रसिद्ध नाटककार कवि कालिदास हुये उन्होंने भारतीय संगीत को नयी दिशा दी। इनके नाटक "शाकुन्तला", "विकृमोर्वशियम्" एवं "मालविकाग्नि मित्र" तथा दो गीतिकाव्य- "मेघदूत" तथा "ऋतुसंहार" बहुत प्रसिद्ध हैं।

राजभवन के अन्तर्गत् संगीत गृहों में संगीत का स्थान अनिवार्य था। गीत तथा नृत्य के लिये राज्यसभा में निपुण वीरांगनाओं को नियुक्त किया जाता था। अन्तःपुर में संगीत

मनोरंजन का साधन था। 'रासक' नामक गीतों को नृत्य तथा अभिनय के साथ गाने की प्रथा थी। संगीत में जाति के स्थान पर राग प्रणाली का प्रचलन था। इसी समय "पंचतंत्र" में सातस्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनायें, छत्तीस रागों का उल्लेख प्राप्त होता है।

उस समय के वाद्यों मेंआलिग्य, वेणु, झल्लरी, तंत्री-परह, अलाबुवीणा तथा काहल आदि। अजन्ता के भित्तिचित्रों व शिल्पों से तत्कालीन वाद्यों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अन्य वाद्योंमें श्रृंग, हुंडुक्क, शहनाई, डोल तथा वीणा, कांस्यताल, मृदंग, ढोलक, वंशी का उल्लेख है।

हर्षवर्धनकाल में संगीत (606–647ई0) :-

606 ई0 में हर्षवर्धन सिंहासनरूढ़ हुआ। वह संगीत प्रेमी था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ व विद्वान थे। स्वयं हर्ष ने अनेक नाटक सुन्दर नाटक व कवितायें लिखी। उसके सभी नाटक संगीत की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। उसे संगीत के शास्त्रीय पक्ष व राग रागिनियों का ज्ञान था। उसके दरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा "हर्षचरित" की रचना की गयी थी। उसकी कविता पूर्णतया संगीतमयी होती थी। हर्ष के काल में संगीत का बहुत विकास हुआ। संगीत समारोहों का आयोजन होता था। जिसमें बड़े-बड़े संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। विदेशों में भी भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा बनी रही। कई जगह नाटयकलाओं की भी स्थापना हुयी। अतः इस काल में नाटकों का भी प्रचलन था। वीणा के कई प्रकार थे- परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, घोषवती इत्यादि।

इसी काल में महान संगीतज्ञ मतंग द्वारा रचित 'वृहद्देशी' नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम देशी संगीत का निरूपण किया गया है और रागों की विस्तृत चर्चा की गयी है। जातियों के इस लक्षण व गान्धार

ग्राम को स्वर्ग स्थित बताया है। इसी काल में सातवीं और आठवीं शताब्दियों में नारदकृत "नारदीय शिक्षा" और "संगीत मकरन्द" ग्रन्थों का विवेचन भी किया गया नारद जी ने सामवेद की उत्तम शिक्षा के लिये नारदीय शिक्षा नामक ग्रन्थ की रचना की। जिसका विषय सामगान है। नारदीय शिक्षा समस्त प्रचीन एवं आधुनिक संगीतशास्त्र का आधार ग्रन्थ है।

राजपूत काल में संगीत (647ई0 से 1000ई0 तक) :–

राजपूत क्षत्रियों के वंशज थे व युद्ध प्रिय राजपूतकाल में ही 'घराने' का जन्म हुआ। नाटककार भवभूति जिन्होंने "महावीर चरित" तथा "मालती माधव" नाटक लिखे, इसी काल में हुये। इस युग में संगीतमय नाटक अधिक प्रचलित हुये। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'गीत गोविन्द' नामक संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना का श्रेय संगीतज्ञ जयदेव को है। जिन्हें उत्तर भारत का गायक कवि होने का सम्मान उपलब्ध है। "गीतगोविन्द" में राधा कृष्ण विषयक प्रबन्ध गीत है। जिन्हें आज भी गायक ताल-स्वरों में बाँधकर गाते हैं व भाव प्रदर्शन भी होता है। इस ग्रन्थ का लैटिन, अंग्रेजी, जर्मन भाषा में अनुवाद हो चुका है। Edwrn Arnold ने अँग्रेजी में इसका अनुवाद 'The Indian Song of Songs' किया अर्थात् गीतों का गीत। जहाँ एक ओर राजपूतों की वीरता है वहीं दूसरी ओर कला की सलिल धारा प्रवाहित होती रही।

"It was composed by Jayadev The North Indian Musician whom we can definitely locate both in time and place. Geet Govinda is a series of songs descriptive of amours of Krishna and so belongs to the number of India lyrical songsters

connected with the Bhakti revival Each song was known as prabandha"

इसी काल में राजपूत कालीन राग रागिनियों के कुछ चित्र मिलते हैं। चित्रकला के माध्यम से राग रागिनियों की आत्मा प्रतिष्ठित हुयी। राग रागिनियों का भावनात्मक, कल्पानात्मक, सौन्दर्यात्मक, रूपात्मक, रागात्मक तथा रसात्मक चित्रण भली भाँति हुआ है। चित्र से संगीत, काव्य और चित्रकला को एक रूप में बाँधा गया है।

इस युग में अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। 12वी शती में कवि 'कल्हण' ने "राजतरंगिणी" नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा। इस काल में वीणा के अनेक प्रकार मिलते हैं। यह युग भक्ति मार्ग का युग कहा जा सकता है। पृथ्वी राज चौहान भी वीणावादक था। इस काल में नृत्यों का खूब विकास हुआ। संगीत अधिकतर राजाश्रय में ही पनपा। अतः जनसाधारण से अलग होता गया। श्रृंगारपूर्ण संगीत का अधिक निर्माण हुआ।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना भारतीय संगीत का उत्तरी और दक्षिणी पद्धतियों में विभाजन का सूत्रपात होना है। इस विभाजन का आधारभूत ग्रन्थ भरत व शारंगदेव के हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में पठानों के आगमन से भारतीय संगीत पर गहरा असर पड़ा जबकि दक्षिण की संस्कृति सुरक्षित रही।

मध्यकाल :-

मुस्लिम प्रवेश युग में संगीत :-

ग्यारहवीं शती से मध्यकाल का आर्विभाव होता है। इस काल के प्रारम्भ से उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियाँ पृथक होने लगी

थीं। इस काल में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण निरन्तर होते रहे। 1300 ई0 तक मुसलमानों का सुदृढ़ साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया। फारसी सभ्यता, कला एवं संगीत का प्रभाव उत्तरी भारत के संगीत पर पड़ा। मध्यकाल में राग गायन का प्रचलन हो गया। ध्रुवपद और ख्याल भी प्रचलित हुये।

मुसलमान सन्त जिन्हें 'सूफी' कहते हैं, संगीत के बहुत प्रेमी थे। आचार्य बृहस्पति के अनुसार, 'मुसलमान शासकों के दरबार में भी परिस्थिति ऐसी न थी कि विशुद्ध भारतीय भावनायें तथा भारतीय कलायें उभर सकें।

13 वीं, 14वीं शाताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में संगीत का पुनः उत्कर्ष हुआ। अलाउद्दीन ने संगीत के प्रचार व प्रसार में बड़ा योग दिया। अमीर खुसरो जिसने भारतीय में अनेक नवीन प्रयोग किये वो अलाउद्दीन के ही दरबार में था। उसी ने कई राग 'लिलफ, साजगिरी, सरपरदा व कव्वाली शैली को जन्म दिया। उसने कई शैलियाँ जैसे- ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि व कई ताल-झूमरा, सूल, आड़ा, चारताल तथा वाद्यों में तबला सितार को जन्म दिया। अमीर खुसरो ने अनेकों कवितायें ब्रजभाषा में लिखीं। दक्षिणी संगीतज्ञ गोपाल नायक अमीर खुसरो के समकालीन थे। विद्वान रानाडे जी ने लिखा है-

"Amir Khusro was a famous singer at the court of Sultan Allauddin (A D 1295-1316). He was not only poet and musician but also a soldier and statesman and was a minister of two of the Sultans Sitar was modified by him He was a scholar lover of music a poet, a musicologist and statesman. From Amir Khusro's time classical songs changed from sanskrit to Braja

Bhasha. Another of Amir Khusro's outstanding achievement was the cultivation and popularization of the quawali songs."[1]

इसी समय दक्षिणी भारत का सबसे बड़ा विद्वान था शारंगदेव जिसने 13वीं एवं 14वीं शताब्दी के मध्य "संगीतरत्नाकर" की रचना की उत्तर तथा दक्षिण दोनों जगह समान रूप से इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानते थे। स्वामी प्रज्ञनानन्द के अनुसार–

"Sangit Ratnakar is a valuable treatise on music composed by Pt Sharangdeve in the early thirteenth century Sharangadeve has tried to give a common basic of stream of music both of north and south. In his encyclopedic work "Sangit-Ratnakar he discussed the broad range of musical forms Systematiezed the old music theory and explained a multitude of musical terms Sangit Ratnakar reminds of our old tradition and sloves all the misconceptions of present Sharangdeve refferred shrutis, Nad ,Tal and other aspect of music"[2]

तुगलक युग में संगीत (1320–1412ई0) :–

गयासुद्दीन तुगलक, तुगलक वंश का प्रथम सुल्तान था। इसे न तो संगीत में रूचि थी न इसके शासन में संगीत का उतना विकास हुआ। इनके बाद इनका बेटा मुहम्मद तुगलक सुल्तान बना। जो बहुत विद्वान व संगीतप्रेमी था। इसने संगीत के विकास में अपना बहुत योगदान दिया। यह दरबार संगीतज्ञों को राज्याश्रय देता था व उनका मान सम्मान करता था।

---

1 Hindustani Music - G H Ranade, Popular Prakashan, Bombay 1971
2 A History of Indian Music - Swami Prajanananda, Ramkrishna, Vedanta Math, Calcutta 1963

लोदी काल में संगीत (1414–1526 ई0) :–

लोदी वंश के तीन सुल्तान हुये, बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी इब्राहिम लोदी। इन तीनों को संगीत से बहुत प्रेम था। अतः इस काल में संगीत में और सुधार हुआ। हिन्दू व मुस्लिम दोनों कलाकारों ने मिलकर जनता में संगीत के प्रति रूचि पैदा की व संगीत के उत्थान में जुटे रहे। एक ओर हिन्दू कलाकार भारतीय संगीत की प्राचीनता व धार्मिकता को विकृति रहित बनाने का प्रयास कर रहे थे दूसरी ओर मुसलमान संगीतज्ञ अरबी संगीत का भारतीय संगीत में मिश्रण करते रहे। इस काल में कव्वाली, गज़ल, ख्याल, ठुमरी का खूब प्रचलन होने लगा था। समूह गान और 'नृत्यों' का भी खूब विकास हुआ। इसी काल में 'राग तरंगिर्णी' नामक ग्रन्थ की रचना हुयी। जिसके प्रणेता लोचन थे। इसकी रचना 15वीं शताब्दी के आस-पास हुयी।

मुगलकाल में संगीत (1526–156ई0) :–

सबसे पहला मुगल सम्राट बाबर था जो स्वयं बड़ा संगीतज्ञ था। 1526ई0 में इब्राहिम लोदी को हराकर दिल्ली की कुर्सी पर आरुढ़ हुआ। बाबर के काल में ख्याल, कव्वाली इत्यादि का प्रचलन रहा। श्रृंगारिकता के साथ संगीत के प्राचीन स्वरूप को भी अक्षुण्य रखा गया। 1500ई0 के लगभग पं0 काल्लिनाथ ने "संगीतरत्नाकर" पर विस्तारशः टीका लिखी जिससे संगीत का शास्त्रीय स्वरूप निखर आया। पन्द्रहवीं शताब्दी में (1458-1499ई0) जौनपुर के बादशाह 'सुल्तान हुसैन शर्की' ने ख्याल गायकी का आविष्कार किया व नवीन रागों की रचना की जैसेः- जौनपुरी तोड़ी, सिन्धु भैरवी, रसूल तोड़ी, 12 प्रकार के श्याम, जौनपुरी, सिन्दूरा इत्यादि। कुछ विद्वानों के अनुसार, हुसैन शर्की ने ख्याल का आविष्कार नहीं किया बल्कि

ख्याल के समान गाना समाज में पहले से प्रचलित था। उन्होंने केवल उस गायकी को पसन्द कर गायकों को प्रोत्साहित किया व प्रचार किया। इसी समय जगह-जगह भजन कीर्तन में संगीत का उपयोग होने लगा। बंगाल के चैतन्य महाप्रभु व अन्य भक्तों ने कीर्तन का प्रचार किया जिससे संगीत की आत्मिक शुषमा व आध्यात्मिक भूमि सुदृढ. हो गयी। इसी समय 1550 ई0 में "स्वरमेल कलानिधि" की रचना हुयी जिसके प्रणेता रामाश्रय जी थे। इस ग्रन्थ की गणना दक्षिणात्य पद्धति के आधारभूत ग्रन्थों में की जाती है।

बाबर की मृत्यु के पश्चात् 1550 ई0 में उसका बेटा हुमायुँ गद्दी पर बैठा। हुमायुँ भी बहुत संगीत प्रेमी था। इस काल में भजनों व गीतों का बहुत विकास हुआ। ईश्वर के दिव्य रूप को भजनों की लड़ी में गूँथ दिया गया।

अकबर का काल (1556–1605) :–

हुमायुँ के बाद अकबर को बहुत छोटी उम्र में राज्य भार ग्रहण करना पड़ा। अकबर ने भारत की सभी कलाओं के विकास के लिये प्रयास किया। वह स्वयं कला प्रेमी था। कलाकारों एवं विद्वानों को अपने दरबार में उच्च पद व सम्मान दिया। अकबर के ही दरबार में संगीत सम्राट तानसेन भी था जो उसके दरबारी नवरत्नों में सर्वश्रेष्ठ था। उन्होंने तानसेन को 'काष्ठाभरण वाणी विलास' की उपाधि से विभूषित किया। अकबर के अन्य दरबारी कलाकारों में रामदास, शुबहन खाँ, मियाँ चाँद, वीर मण्डल खाँ, सरोद खाँ इत्यादि थे। इसी काल (1600ई0) में पुण्डरीक विट्ठल नामक ग्रन्थकार भी हुये।

इसी काल में "राग सागर" नामक ग्रन्थ रचा गया जिसमें मेल पद्धति की व्याख्या की गयी है। अकबर के काल में क्रियात्मक व

शास्त्रीय दोनों पक्षों का पर्याप्त रूप से विकास हुआ। अकबर के काल में 36 संगीतज्ञ थे। संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्णयुग कहा गया है। उस समय ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर थे जो संगीतज्ञों का बहुत सम्मान करते थे उनके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहते थे। बैजूबावरा इन्हीं के राज्यकाल में हुये। बैजू के ही सहयोग से राज मानसिंह ने ध्रुवपद का प्रचार-प्रसार किया। ग्वालियर की ध्रुवद गायकी आज भी मशहूर है। इस प्रकार मानसिंह ने संगीत के विकास में विशेष योगदान दिया।

ध्रुवपद के दो प्रकार प्रचलित थे- (1) गीत के वे प्रकार जो विष्णु पद कहलाये (2) दूसरा प्रकार राजदरबार में प्रचलित था यह पद ध्रुवपद कहलाये। मुगल बादशाहों ने भी ध्रुवपद गायन शैली को मान्यता दी जिससे इसे सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिली। इन्हें गाने वाले कलावन्त कहलाये जिन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। धीरे-धीरे समाज में ख्याल गायन शैली प्रचार में आने लगी और समाज में अपनी जड़ें जमाती रहीं परिणाम स्वरूप ध्रुवपद का स्थान कम होता गया। उस काल में गायकों के तीन वर्ग थे-(1) कलावन्त वर्ग, जो ध्रुवपद गायन शैली का पोषक था (2) कव्वाल वर्ग, जो कव्वाली के साथ-साथ ख्याल भी गाते थे। (3) जो ध्रुवपद के स्थायी अन्तरा तथा आलाप बढ़त और कव्वाली की तान बढ़त के मिश्रण से ख्याल के नवीन स्वरूप को विकसित कर रहे थे। ये गायक सन्त कवियों की रचनाओं को ख्याल का रूप देते थे जो लोकप्रिय हो रही थीं। वीणा की जगह सितार का प्रयोग हो रहा था।

अकबर के युग में भक्ति रस के अनेक कवियों ने जन्म लिया जैसे-सूर, कबीर, तुलसी। अकबर के काल में ही हिन्दू सन्त

संगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी हुये जो यमुना नदी के तट पर वृन्दावन में निवास करते थे तथा संगीत सम्राट तानसेन के गुरू थे। इनके अन्य शिष्यों में बैजू, गोपाल दास, मदन लाल, रामदास, सोमनाथ पंडित आदि थे। स्वामीजी ने अनेकों ध्रुवपद, धमार, तराने, त्रिवट, रागमालाये चतुरंग तथा कई राग बनायें। उनके शिष्यों ने देश के कोने-कोने में जाकर संगीत का प्रचार-प्रसार किया। स्वामीजी की काफी रचनायें "संगीत कल्पुद्रुम" में मिलती हैं।

इसी समय तानसेन भी हुये जिन्हें संगीत की नैपुण्यता के कारण संगीत सम्राट की उपाधि मिली। तानसेन की प्रमुख रचनायें ध्रुवपद हैं। इनके 300 ध्रुवपद तो ग्रन्थों में मिलतें हैं तथा अलिखित ध्रपद घरानेदार कलावंतो को कंठस्थ है।

संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्णयुग कह सकते हैं क्योंकि इस काल में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियों का विकास सुचारू रूप से हुआ।

अकबर की मृत्यु के उपरान्त उसका बेटा जहाँगीर 20 अक्टूबर सन् 1605ई0 में गद्दी पर बैठा। वह भी कला व साहित्य का अनुरागी था। जहाँगीर के दरबार में विलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रम दाद, मक्खु, परवेज दाद और हमजान प्रसिद्ध गवैये थे। इसी काल में सोमनाथ जी ने 1610 ई0 में "राग विबोध" नामक संगीत ग्रन्थ का निर्माण किया। जहाँगीर के समय में ही भारतीय संगीत पद्धति पर 1625ई0 में पं0 दामोदर ने "संगीत दर्पण" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। जिसमें राग रागिरियों के 'ध्यान' अत्यन्त आकर्षक व मनोरंजक है।

1627ई0 में जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शाहजहाँ गद्दी पर आसीन हुआ। वह भी अपने पिता के समान संगीत प्रेमी

था। वह संगीतज्ञों का बहुत आदर करता था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहते थे। जैसे-हैदर खाँ, लाल खाँ, रामदास, भट्टाट्टेर तथा जगन्नाथ आदि। शाहजहाँ स्वयं एक कुशल गायक था, सितार वादन में प्रवीण था। उसने अनेक गीतों की रचना की। इस काल में ध्रुवपद शैली का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ। गुजरात व महाराष्ट्र के नृत्य विकसित होते रहे।

1658 ई0 को औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह संगीत का कट्टर शत्रु था। उसने भारतीय संगीत की उत्कृष्टता, उच्चता के बजाय मुस्लिम युग में संगीत का मात्र श्रृंगारिक रूप का ही अवलोकन किया जो अपनी निम्नावस्था को उस समय प्राप्त था अत: उसे संगीत से घृणा हो गयी। उसकी धारणा बन गयी कि मनुष्य के चरित्र को भ्रष्ट करने का एक मात्र साधन संगीत है। उसने समस्त दरबारी गायकों को सेवामुक्त कर दिया। संगीत समारोहों पर प्रतिबन्ध लगा दिया व संगीतज्ञों के वाद्ययन्त्र जलवा दिया। उसकी यह संकीर्ण विचारधारा भारतीय संगीत के लिये हानिप्रद सिद्ध हुयी किन्तु फिर भी इसी समय उत्तर भारत में सर्वाधिक लोक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' की 1650ई0 में रचना हुयी। इस ग्रन्थ के रचयिता पं0 अहोबल थे। इसी में सर्वप्रथम वीणा पर स्वर स्थान की नवीन पद्धति अपनाई गयी।

"संगीत पारिजात" के पश्चात् हृदय नारायण देव ने "हृदय कौतूक" और "हृदय प्रकाश" दो लघु व रोचक ग्रन्थ लिखे औरंगजेब के ही काल में भावभट्ट ने (1674-1709ई0) "अनूप विलास", "अनूप संगीत-रत्नाकर", "अनुपांकुश" तीन ग्रन्थों का सृजन किया। इसी काल में पं0 व्यंकटमुखी ने तंजौर नरेश विजय राघव के अनुरोध से 1660 ई0 में "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" का सृजन

किया। इस समय औरंगजेब के शासन का आरम्भ था। इस ग्रन्थ में 72 थार, एक थार से 484 रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है।

जितना औरंगजेब संगीत का विरोधी था उतना ही अधिक इस काल में संगीत साहित्य निर्मित हुआ।

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पं0 श्रीनिवास ने "रागतत्व विबोध" नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में 36" के वीणा के खुले तार पर 7 शुद्ध व 5 विकृत स्वर की स्थापना की है। मध्यकालीन ग्रन्थकारों में श्रीनिवास ही अन्तिम ग्रन्थकार हैं इस काल में राग रागिनी पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ।

औरंगजेब की मृत्यु सन् 1707 ई0 मे हुयी, इसके साथ ही हम 18वीं शताब्दी में पदार्पण करते हैं जब आधुनिक युग का सूत्रपात होता है।

आधुनिक युग (1800 से अब तक) :—

इसे दो भागों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) पूर्वार्द्ध आधुनिक काल (1800 से 1900 तक)

(2) उत्तरार्ध आधुनिक काल (1900 से अब तक)

मुहम्मद शाह रंगीले (1719-1748) जो बहादुर शाह का पोता था, गद्दी पर बैठा। यह मुगल काल का अन्तिम बादशाह था। वह बहुत विलासप्रिय था। मुहम्मद शाह कला का अत्यन्त प्रेमी था, इसी लिये उसका नाम "रंगीला" पड़ा। उसका शासन काल संगीत कला एवं साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। उसके दरबार में आलम और धनानन्द नाम के उच्चकोटि के कवि और अदारंग-सदारंग जैसे संगीत शिरोमणि थे।

संगीत की दृष्टि से यह क्रान्तिकारी युग था। क्योंकि ध्रुवपद, धमार की जगह ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली तथा सितार जैसे वाद्य का प्रचार व विकास इसी काल में हुआ।

18वीं शती में उस्ताद नेमत या न्यामत खाँ नाम के एक विख्यात बीनकार व संगीतज्ञ हुये जिनका संगीत को उन्नत करने में बहुत बड़ा योगदान है। उनका उपनाम सदारंग था। इनका जन्म तो औरंगजेब के काल में हुआ पर इनकी शिक्षा औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह प्रथम (1707-12ई0) के समय हुयी। सदारंग मुहम्मदशाह के प्रिय दरबारी गायक थे। सदारंग ने मुहम्मद शाह रंगीले को संतुष्ट करने के लिये सहस्रों ख्यालों की रचना की, इन्हें कई विद्याओं व भाषाओं का ज्ञान था। ख्याल की रचना के साथ उसे सुर व लय में बाँधा भी। इनकी साहित्यिक कृतियों में रस, भाव, नायक, नायिका के भेद का वर्णन है। सदारंग ने एक नवीन शैली प्रारम्भ की वह थी कव्वाली की परम्परा की ख्याल गायकी। सदारंग के ही भाई खुसरों खाँ भी उच्चकोटि के कलाकार थे। इन्होंने भी अनेकों ख्यालों की रचनायें की जिनका प्रचार आज भी है। वे स्वयं ध्रुवपद गायक थे और वीणा भी बजाते थे। अदारंग ने ही 'सितार' वाद्य का आविष्कार किया। अनेक रागों का आविष्कार किया। तबले पर सितारखानी ठेके का प्रचार किया।

'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में गुलामनबी शोरी के द्वारा हुआ। शोरी मियाँ पंजाब के रहने वाले थे। टप्पा आज भी लोकप्रिय शैली है। इनके टप्पे खमाज, झिंझोटी, भैरवी, सिन्धू जैसे रागों में मिलते हैं। यह अन्य शैलियों से बिल्कुल भिन्न है तथा चंचल प्रकृति का है।

शास्त्रीय संगीत के कुछ प्रकार फारसी में रहे जैसे 'त्रिवट, तराना, गज़ल, रेवता, कव्वाली, कलवाना' इत्यादि।

इसी काल में सबसे अधिक प्रचलन ठुमरी का भी रहा। ठुमरी भी टप्पे वाले रागों में ही होती है। ठुमरी में पंजाबी, अद्धा, कव्वाली आदि तालें प्रयुक्त होती थीं। लखनऊ में ठुमरी का अधिक प्रचलन था। कोठे पर इसका गायन होने से इसे निम्न वर्ग का समझा जाने लगा। जनता में इसी समय सुगम संगीत का भी प्रचार होने लगा।

इस प्रकार मुहम्मद शाह का राज्य अवनति की ओर अग्रसर था जबकि उसके राज्यकाल में संगीत उन्नति को प्राप्त थी नवीन रागों की खोज हुयी, शैलियाँ बनी। गायन, वादन, नृत्य के शिक्षा की भी व्यवस्था थी। मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के पश्चात् कलाकारों को दिल्ली से बाहर जाना पड़ा क्योंकि 1731ई0 में नादिरशाह के आक्रमण के कारण कलाकारों की कला सुरक्षित न थी।

सन् 1846 से 1856ई0 तक नवाब वाजिद अली शाह नवाब रहे। ये भी कलाप्रेमी व विलासी थे। इनके दरबार में अहमद खाँ, ताज खाँ, गुलाम हुसैन खाँ, दुल्ली खाँ, उत्तम गायक थे। स्त्रियों में जोहरा, मुश्तरी, हैदरी, श्रेष्ठ संगीतज्ञा थीं। स्वयं वाजिद अली शाह ने 'अख्तर' उपनाम से अनेक सादरे, ख्याल, ठुमरियों व गज़लों की रचना की। इनकी रचनाओं में से खमाज का प्रचलित 'सादरा'-'सुध बिसर गई आज अपने गुनन की' तथा बहार का प्रसिद्ध ख्याल- 'फूलवाले कटा मैका गडुवा मोल ले दे रे' प्रसिद्ध है। साथ ही ठुमरी भैरवी की- 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय' प्रसिद्ध है। इसी समय उन्होंने भाषा के छोटे-छोटे वाक्यांशों के आधार पर 'कहन

ठुमरी' का आविष्कार किया। सन् 1841-42 में यह बनारस और पूर्वी अंचलों में काफी प्रचारित हुयी थी। वाजिद अली के समय में लखनऊ में नाच के साथ ठुमरी, पूर्वी ठुमरी, पछाहीं ठुमरी, धनाक्षरी ठुमरी का चलन था। वाजिद अली ने नाट्य में भी ठुमरी का प्रयोग आरम्भ किया। रास में भी ठुमरी का प्रयोग हुआ। 'होली' गान भी ठुमरी नाम से प्रचलित हुआ। प्यारे खाँ, जाफर खाँ, हैदर खाँ, बासत खाँ अच्छे गायक थे।

मुगल साम्राज्य के अन्तिम सम्राटों में अहमदशाह के दरबार में सुरभावन और आलम ध्रुवपदकार थे।

मुगल शासन के अंतिम बादशाह बहादुरशाहजफर का राज्यकाल आता है। इस समय अंग्रेजों का पूरी तरह से अधिकार हो गया था। दिल्ली के अधिकांश कलाकार विभिन्न रियासतों में नवाबों व राजाओं के आश्रय में चले गये। संगीत, रामपुर, अवध, पटियाला, हैदराबाद, बनारस आदि शहरों में केन्द्रित हो गया। मुगल साम्राज्य की अवनति के बाद अवध संगीत कला का केन्द्र बन गया। उस समय नवाबों की रूचि ठुमरी व चैती व कजरी सुनने में थी। अत: संगीत की यही शैलियाँ दरबार में प्रतिष्ठित हुयीं। वज़ीर मिर्जा जिनका उपनाम कदर पिया है तथा जो बादशाह नसीरूद्दीन हैदर के पोते थे उन्होंने ठुमरी का आविष्कार किया। इनकी अधिकतर ठुमरियाँ भातखण्डे जी कृति 'क्रमिक पुस्तक मालिका' में दी गयी है।

मुगल काल के बाद ब्रिटिश काल का प्रारम्भ हुआ। संगीत कुछ प्रमुख रियासती राजाओं के दरबार तक ही सीमित रह गया। यूरोपीय काल में भारतीय जनता में संगीत के प्रति अरुचि स्पष्ट दिखायी पड़ती है। इसी समय सौभाग्यवश कुछ विद्वानों ने इसके महत्व को समझा और शास्त्रीय पक्ष को सशक्त बनाया तथा कुछ

अंग्रेज विद्वानों ने भी भारतीय संगीत का अध्ययन कर इससे सम्बन्धित पुस्तकों को छपवाया। अतः जनता में फिर से भारतीय संगीत के प्रति रूचि जाग्रत होने लगी।

भारतीय संगीत के शास्त्रीय पक्ष को निम्न विद्वानों ने अपना योगदान दिया-

मुहम्मद रजा ने सन् 1883ई0 में "नगमाते आसफ़ी" नामक ग्रन्थ का सृजन किया। जिसमें उन्होंने राग-रागिनी वर्गीकरण के सिद्धान्त की कटु आलोचना की व उस काल की आवश्यकता के अनुसार, उसकी सार्थकता को नकारा। उन्होंने राग-रागिनी का वर्गीकरण राग-रागिनी में कुछ समानता के आधार पर किया। सर्वप्रथम उन्होंने शुद्ध सप्तक के रूप में बिलावल का उपयोग किया यही सप्तक आज के हिन्दुस्तानी संगीत का आधार है। उन्नीसवीं शताब्दी का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ "रागकल्पद्रुम" है जिसके प्रणेता कृष्णानन्द व्यास जी हैं। सौरेन्द्र मोहन टैगोर ने उन्नसवीं शती के उत्तरार्ध में संगीत के कई उत्त्म ग्रन्थों का सृजन किया। इनका लिखा हुआ ग्रन्थ "The Universal History of Music" अत्यधिक प्रचलित हुआ। "कण्ठ कौमुदी", "संगीत सार", "यंत्रक्षेत्र दीपिका" इनके अन्य प्रमुख ग्रन्थ हैं।

इसी समय "गीत सूत्रसागर" नामक ग्रन्थ बँगला में लिखा गया जिसे कृष्ण धन बनर्जी ने लिखा है। जिसमें यूरोपीय स्वर लिपि पद्धति में सैकड़ों ध्रवुपद और ख्याल को बड़ी कुशलता से लिपिबद्ध किया है।

उत्तरार्ध अथवा वर्तमान आधुनिक काल (1900 से लेकर अब तक) :–

19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध काल अत्यन्त महत्वपूर्ण युग है। यह युग पुनर्जागरण का युग था, ब्रिटिश शासन की नींव मजबूत होती जा रही थी।

संगीत को राष्ट्रीय संस्कृति का अभिन्न अंग समझ कर उसके पूर्व गौरव को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था। इस प्रयास में शामिल दो नेता- (1) विष्णु नारायण भातखण्डे (2) विष्णु दिगम्बर पलुस्कर थे। दोनों संगीतज्ञों ने संगीत कला की प्रतिष्ठा व उत्थान के लिये दृढ़ संकल्प होकर अनगिनत कार्य किये व अपने उद्देश्य को पूर्ण किया।

भातखण्डें जी ने गीतों के कलात्मक दोषों का निवारण किया। "स्वरमालिका", "श्रीमलक्ष्य संगीतम्", "क्रमिक पुस्तक मालिका" आदि कई पुस्तकों का सृजन् किया तथा सरल स्वरलीपि पद्धति का निर्माण किया। उन्होंने मेलद पद्धति के आधार पर 10 थाट के अन्तर्गत् भारतीय रागों को वर्गीकृत किया। उन्होंने ग्वालियर में 'माधव संगीत विद्यालय' लखनऊ में 'मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक', बड़ौदा में 'म्यूजिक कॉलेज' की स्थापना की। पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी ने सूर, मीरा, कबीर, तुलसी की भक्ति रस प्रधान रचनाओं को राग में बांधकर अपने पाठ्यक्रम में उसे समाविष्ट किया। पंडित जी ने सर्वप्रथम रागों के समय के नियम की स्थापना की। उन्होंने "संगीत बालबोध", "भारतीय संगीत लेखन पद्धति", "संगीत तत्वदर्शक", "अंकित अलंकार", राग प्रवेश, नारदीय शिक्षा सटीक, "टप्पा गायन" एवं अन्य पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त

पण्डित जी ने लाहौर व मुम्बई में गान्धर्व महाविद्यालय, इलाहाबाद में प्रयाग संगीत समिति तथा कानपुर, बनारस, अहमदाबाद व नासिक में संस्थायें खोलीं।

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य अनेक विद्वानों ने संगीत के विकास में सहयोग दिया जैसे-श्रीबालकृष्ण बुवा, राजा नवाब अली, पं0 रामकृष्ण, राजा भैय्या पूँछवाले, श्री डी0वी0 पलुष्कर, पं0 भोलानाथ भट्ट, श्री कृष्णरातनजंकर, पं0 ओंकारनाथ ठाकुर इत्यादि।

स्वतन्त्रता पश्चात् भारत सरकार ने भी संगीत के विकास की ओर ध्यान दिया व शिक्षण में ललित कला के महत्व को पूरी तरह स्वीकार कर लिया है। बीसवीं शताब्दी में आकाशवाणी, दूरदर्शन, संगीत नाटक अकादमी की स्थापना एवं अपने देश के विभिन्न प्रान्तों व विदेशों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन कर तथा लोक संगीत व लोक कलाओं को विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन देकर सरकार ने संगीत शिक्षा का विस्तार कर दिया है। आज विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुदान आयोग की सहायता से संगीत सम्मेलनों, सेमिनार, संगीत गोष्ठियों आदि का आयोजन होता रहता है। संगीत पर वृहद् स्तर पर शोध कार्य भी हो रहे हैं। अनेक संस्थायें संगीत शिक्षण कर रहीं हैं।

....

तृतीय अध्याय

विषय – प्रवेश

गायन शैलियों का क्रमिक विकास

शास्त्रीय दृष्टि से

(स) गीत, जाति गायन व प्रबन्ध

(रे) ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा व ठुमरी

(ग) तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत,
सरगम, रागमाला, चतुरंग व सादरा

विषय—प्रवेश: गायन शैलियों का क्रमिक विकास—शास्त्रीय दृष्टि से

शास्त्रीय दृष्टि से गायन शैलियों के क्रमिक विकास को जानने के लिये हमें गायन शैलियों के प्राचीन रूप पर दृष्टिपात करना होगा जो वैदिक काल से ही समय-समय पर परिवर्तित होती रही और संगीत की कलात्मक व सुन्दर शैलियाँ अपना बहुरंगी रूप दिखाती रहीं।

सामगान के समय से लेकर आज तक अनेक गायन शैलियाँ आरम्भ हुईं, विकसित हुईं और समय के परिवर्तन के साथ-साथ ही वह अप्रचलित होती गई। पुरानी शैलियों से ही समय के साथ नयी-नयी शैलियाँ विकसित होती गई। इस प्रकार प्राचीनतम शैली और आज तक प्रचलित शैलियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध देखा जा सकता है

गायन शैलियों का उद्गम कब कहाँ और कैसे हुआ इस पर हम विचार करेंगे। प्राचीन शैलियों के आधार पर अथवा प्राचीन तथा आधुनिक संगीत के मिश्रण से, या फिर प्राचीन शैलियों के स्वाभाविक विकास मात्र से अर्थात् क्रमिक उन्नति द्वारा इनका उद्गम हुआ। वैदिक काल से पूर्व मानव अपने मनोभावों को विभिन्न कण्ठ ध्वनियों द्वारा व्यक्त करता था। आज भी संगीत का आधार हम इन्हीं मनोभावों और वाणी को या स्वर को मान सकते हैं अर्थात् मधुर ध्वनियाँ ही संगीत शैली का आधार हैं। देवताओं को संतुष्ट करने के लिये धीरे-धीरे यज्ञ का निर्माण हुआ। जिसमें ऋग्वेद की ऋचायें गायी जाती थीं। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं को

गेय रूप देकर 'साम संहिता' नाम दिया। इस प्रकार प्राचीन काल से ही स्वर लय युक्त मंत्रों द्वारा ईश्वर की उपासना की जाती थी। प्राचीन काल के साम संगीत से लेकर आज तक की सभी शैलियों का आधार स्वर है। वैदिक संगीत से लेकर आगे के समय तक संगीत बहुत परिवर्तित हो गया और विभिन्न शैलियों का उद्‌भव प्रारम्भ हो गया जिसका क्रम इस प्रकार है-

गीति :–

भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में गीतियों का उल्लेख मिलता है जो दो प्रकार की थीं-(1) स्वराश्रिता, (2) पदाश्रिता। इन गीतियों की संख्या विभिन्न शास्त्रकारों के अनुसार, बदलती गईं। जिनका वर्णन हम आगे करेंगे।

इन गीतियों के तत्व आज के गायन शैलियों में भी भिन्न-भिन्न प्रमाण में दिखाई पड़ते हैं, जैसे- ध्रवुपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि शैलियों के स्वर प्रयोगों में तथा विभिन्न रागों की स्वर सरंचना में देख सकते हैं।

जाति गायन :–

जाति गायन का समय पहली ई० से 800 ई० तक माना जा सकता है। वैसे "रामायण" में भी जाति का उल्लेख मिलता है और 13वीं शताब्दी के ''संगीत रत्नाकर'' ग्रन्थ में भी जाति का वर्णन मिलता है। जातियाँ ''नाट्य शास्त्र'' में वर्णित ध्रुवागीतों की स्वर लिपि या सांगीतिक अंग थीं। वे गीति साहित्य व संगीत की मिश्रित बंदिशें थीं जो नाटक के दो भागों के बीच में गायी जाती थीं।

इस प्रकार ये जातियाँ 18 जातियों में विकसित हुईं और जाति व गीति शैलियाँ कुछ समय के लिये लगभग साथ-साथ चलीं। समय

परिवर्तन के साथ-साथ आगे आने वाली पीढ़ियाँ इन्हीं शैलियों को अपनाती रहीं। जातियों के पश्चात् लगभग दो तीन सौ वर्ष तक संगीत की कोई भी शैली सामने नहीं आई। कोई सात सौ-आठ सौ ई0 तक भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। विभिन्न राज्यों के राजाओं में द्वेषभाव रहने के कारण कलाकारों की मनोवृत्ति संकीर्ण हो गई, जिसके कारण संगीत का विकास कुछ अवरूद्ध हो गया। आठवीं शताब्दी में हिन्दू गायकों, शिल्पियों, दार्शनिकों से मुसलमानों का सम्पर्क हुआ, जो व्यापार के लिये भारत आये थे। मुसलमानों ने भारतीय भाषा को व लोकाचार को अपनाया और हिन्दू व मुसलमानों का मेल-जोल बढ़ता गया।

प्रबन्ध :–

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग राजपूत काल में ही संगीत दो धाराओं में विभाजित हो गया- उत्तर भारतीय संगीत व दक्षिण भारतीय संगीत। इसी काल में सर्वप्रथम 'प्रबन्ध' का विकास हुआ। डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा जी के अनुसार-

"Prabandh was a vocal composition form, a systematic and organized type of Giti (song) with Sanskrit texts. The word "Prabandh" literally means anything well knit or well fitted Pra + Bandh + Dhatra = Prabandh. In music Prabandh means a combination of Dhatu and Ang. Prabandh form of vocal music emerged in the 11th century because Jaideo has written "Geet - Govinda" in the style of Prabandh. Sarangadev also devoted a whole chapter to Prabandh in his 'Sangit-Ratnakar'. He maintains that there are four components of a Prabandh, viz .. udgraha, Melapaka, Dhruva and Abhoga. The Prabandh style of

music enjoyed great popularity upto the 13th century From the fourteen century Dhrupada began to take its place. The present form of Dhrupad is an evolved form of Prabandh style. "[1]

जयदेव के द्वारा लिखित पुस्तक "गीत गोविन्द" प्रबन्ध शैली में है। ये प्रबन्ध संस्कृत भाषा में हैं जिसमें राधा-कृष्ण का वर्णन है। संगीत में प्रबन्ध का प्रयोग एक गायन शैली के रूप में किया गया। पं0 शारंगदेव की "संगीत रत्नाकर" नामक पुस्तक का तीसरा सम्पूर्ण अध्याय "प्रबन्धाध्याय" नाम से ही लिखा गया है जिसमें प्रबन्ध की ही चर्चा है। 1000 ईसा से लेकर 1290 ईसा तक प्रबन्ध प्रचलित रहे और इस बीच भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होते रहे। व्यापार के साथ-साथ मुसलमानों ने भारत में अपने धर्म का प्रचार भी आरम्भ कर दिया। भारत के राजाओं में द्वेषभाव रहने के कारण उनकी हार हुई और इस प्रकार मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव भारत में बढ़ गया। कलाकारों, संगीतज्ञों और विद्वान लेखकों को मुस्लिम संस्कृति के बारे में ही लिखने के लिये बाध्य किया जाने लगा और इस प्रकार जिस संगीत का इस काल में विकास हुआ वह मुस्लिम संस्कृति पर आधारित था। फिर भी तेरहवीं शताब्दी तक कुछ संगीत सेवकों के द्वारा प्रबन्ध गायन शैली की रक्षा की गई।

ध्रुवपद :–

प्रबन्ध के सैकड़ों प्रकार थे तथा उनके भेद और उपभेद भी थे। उनमें एक प्रबन्ध था 'सालग सूड़' और उसका एक भेद था 'ध्रुव'। इसमें अक्षरों की संख्या, स्वर, ताल तथा प्रस्तुति ढंग सभी सुनिश्चित होते थे। सम्भवतः नवगीत 'ध्रवपद' की प्रेरणा इसी 'ध्रुव प्रबन्ध' से मिली अर्थात् ध्रुवपद की उत्पत्ति ध्रुवप्रबन्ध से हुई। ध्रुव

---

1. डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा- 'भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 337

के चार अवयव थे- उद्ग्राह, ध्रुव अन्तर और आभोग। जो आगे चलकर स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग नाम से प्रचलित हुये। कुछ प्रबन्ध दो चरण के ही होते थे अत: कुछ ध्रुवपदों में भी दो ही 'तुक' रखे गये-स्थायी व अन्तरा। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (1486-1516ई0) संगीत मर्मज्ञ थे। उन्होंने संगीत विषयक एक ग्रन्थ लिखा था- "मानकुतूहल।" कोई दो सौ साल बाद मुगल बादशाह औरंगजेब के एक संगीत रसिक सेनानायक फकीरूल्लाह ने फ़ारसी में उसका अनुवाद किया और उसका नाम "रागदर्पण" रखा। उसके अनुसार, मानसिंह तोमर ही 'ध्रुवपद' के जन्मदाता थे। किन्तु उसका कथन तर्कसंगत नहीं लगता। कोई व्यक्ति विशेष, चाहे कितना भी प्रतिभासम्पन्न क्यों न हो किसी गायन शैली का सृजन नहीं करता। वह तो युग की रूचि के अनुकूल और निरन्तर प्रयोगों के परिणामस्वरूप अपने आप बन जाती है। हाँ मानसिंह ने अपने दरबारी नायकों की सहायता से ध्रुवपद को निखारा, सँवारा और उसे एक पहचान दी।

ध्रुवपद की उत्पत्ति ध्रुवप्रबन्ध से भले ही हुई हो किन्तु अन्य प्रबन्ध-प्रकारों का असर उस पर पड़ा ही होगा। 'ध्रुव' का अर्थ है- नियत, विशिष्ट रूप से रचित और पद का अर्थ है- स्वर ताल से लसित काव्य। अत: ध्रुवपद वह शैली थी, जिसमें शब्द, राग स्वर ताल, मात्रा, और लय सभी सुनिश्चित होते थे। इसकी अदायगी में कलावन्त कोई फेरबदल अथवा मनमानी नहीं कर सकता था। प्रबन्धों का अपना अनुशासन था, अपने नियम थे। ध्रुवपद को स्वभावत: यह अनुशासन अपने पूर्वज प्रबन्ध से विरासत में मिले। जयदेव का "गीतगोविन्द" प्रबन्ध शैली में ही गाया जाता था। उसने भी ध्रुवपद पर अपनी छाप अवश्य छोड़ी होगी।

इस्लामी सत्ता की स्थापना के साथ ही भारतीय संगीत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अरब, अफ़गान, फारसी, तुर्क, मंगोल- ये सब जब आये तो अपने संग अपनी संगीत परम्परा भी लाये। उनकी अपनी रूचि थी, जुबान थी और अपनी गायन शैलियाँ थीं। जबकि भारतीय संगीत का संस्कार व व्यक्तित्व अलग था। देशी-विदेशी सभी ने युग की मांग को स्वीकारा। परिणामस्वरूप एक ऐसी सांगीतिक सरिता का उद्‌गम हुआ जिसमें सभी धाराओं का सांमजस्य था। दूरस्थ दक्षिण काफी समय तक इस प्रभाव से अछूता रहा। किन्तु उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत अब अपने परिवर्तित परिवेश में उभरने लगा। प्रबन्धजनित ध्रुवद दो धाराओं में बँट गया। एक वह विद्या, जो मध्यकालीन मन्दिरों में फली-फूली और जिसे 'विष्णुपद' अथवा 'हवेली संगीत' की संज्ञा मिली और दूसरी वह जो राजाश्रय में दरबारों में शासकों की रूचि के अनुकूल बनती बदलती रही। विष्णुपद भक्तिपरक था और उसका उद्देश्य था, आत्मानन्द। दरबारी ध्रुवपद मुख्यत: भोगपरक था। और उसका उद्देश्य था आश्रयदाताओं को रिझाना। विष्णुपद के प्रतिनिधि थे स्वामी हरिदास और दूसरे के अगुवा थे अकबरी नवरत्न मियाँ तानसेन। अकबरी युग ध्रुवपद का स्वर्ण युग था। उस काल में एक से एक बढ़कर गायक और नायक हुये। जो केवल गाता था वह 'गायक' कहलाता था और जो गायक, कवि और संगीत शास्त्री तीनों होता था, उसे 'नायक' कहा जाता था।

शाहजहाँ के दरबार में भी ध्रुवपद को बड़ा आश्रय मिला। उसने उसके नायक बख्शू के एक हजार ध्रुवपदों का एक संग्रह भी कराया। जिसका शीर्षक "सहसरस" था। यह अब देवनागरी लिपि में भी उपलब्ध है। औरंगजेब को गाने बजाने में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी किन्तु उसके यश-वर्णन में कितने ही ध्रुवपद रचे गये। इस

काल की पुष्टि राग दरबारी कान्हड़ा में, चौताल में निबद्ध इस ध्रुवपद से होती है-

"धन धन तू दिल्ली पति, छत्रपति,

बखत बली, औरंगजेब , जलालुद्दीन।"

ध्रुवपद की यह शानदार परम्परा चार सौ साल तक चलती रही। मुगल सत्ता ज्यों-ज्यों दक्षिण की ओर बढ़ती गई, ध्रुवपद उधर भी उभरता गया। अधिकांश ध्रुवपदों की रचना मध्यकाल में ही हुई। सत्रहवीं सदी के संगीतशास्त्री भावभट्ट ने ध्रुवपद की विशद व्याख्या की है। किन्तु अब जो ध्रुवपद उपलब्घ हैं उनमें से बहुत कम भावभट्ट के मापदण्ड पर खरे उतरते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी बदलाव आता गया। भातखण्डे जी द्वारा रचित 'क्रमिक पुस्तक मलिका' में ऐसे ध्रुवपद हैं जिनका अर्थ ही समझ में नहीं आता। वैसे ज्यादातर ध्रुवपद ब्रजभाषा में ही लिखे गये। बाद की रचनाओं में अरबी-फारसी आदि के शब्द भी जुड़ते गये। विषयवस्तु में विविधता रही- भक्ति, श्रृंगार, वीर सभी रसों से ओतप्रोत। बैजू, तानसेन, स्वामी हरिदास, चिन्तामणी के अनेकों ध्रुवपद आज भी गाये जाते हैं। अठ्ठारवीं सदी के नायक, ख्याल गायन के प्रणेता सदारंग के चौखण्डी ध्रुवपद का एक नमूना प्रस्तुत है जो 'खमाज' राग में है-

स्थायी - *रंग लाल, रूप लाल, अधर अधिक लाल,*

दृग लाल, डोर लाल, कोर लाल झलके।

अन्तरा - *कर लाल, चूरि लाल, सीस फूल द्रुम लाल,*

ऐसे लाल बीच प्यारी लाल, लाल लाल पलकें।

संचारी - *असन बसन लाल, दसन चमक लाल,*

लालहि ललना, लाल मुखन के।

आभोग - *माला लाल सबहि लाल, दुलरी के रेसम लाल,*

सदारंग प्यारे लाल, लाल ही में ललके।

भातखण्डे द्वारा संग्रहीत 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के दूसरे भाग में इस ध्रुवपद की स्वरलिपि भी दी गई है, किन्तु शब्द कुछ उलझे हुये हैं।

वर्तमान ध्रुवपद गायकी के दो प्रमुख क्रम होते हैं- रागालाप और फिर गीत की प्रस्तुति। प्रारम्भ में विशिष्ट राग के निर्धारित नियमों के अनुसार, विभिन्न मोहक स्वर संगतियों द्वारा क्रम से बढ़ते हुये श्रोताओं के सम्मुख राग का आपाद-मस्तक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। आलाप अनिबद्ध होता है। इस नोमतोम के आलाप में 'ते', 'ने', 'रे', 'री' आदि अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। इसके पश्चात् गीत प्रस्तुति होती है। गीत का पहला चरण स्थायी कहलाता है। इस भाग की रचना प्रायः मन्द्र और मध्य सप्तक के स्वरों तक ही सीमित रहती है। दूसरा खण्ड अन्तरा होता है जो मध्यम अथवा पंचम से आरम्भ होता है। तीसरा खण्ड 'संचारी' जिसमें रचना बीच की मार्मिक स्वरावलियों में संचरित होती है। अन्त में 'आभोग' आता है उसमें गीत का साहित्य व संगीत दोनों ही अपने चरम बिन्दु पर पहुँचता है। इसी के साथ ध्रुवपदिया अपने गति गायन की प्रक्रिया समाप्त करता है। ध्रुवपद अधिकतर चौताल, सूलताल और तीव्र तालों में गाये जाते हैं।

आलाप और गीत के बाद तीसरा क्रम होता है- 'लयबाँट' का व 'उपज' का। इसमें लय-ताल का चमत्कार प्रदर्शित किया जाता है। पखावजी के साथ नोंक-झोंक, ताल के विभिन्न खण्डों से उठती

लय की काट-छाँट, दुगुना-चौगुना आदि चाल इस खण्ड की विशिष्टता होती है। ध्रुवपद गायकी का मर्मभेदी अंग आलाप है। प्रभावी आलाप के लिये अपेक्षित है मधुर, मँजी, पाटदार आवाज, राग की आकृति एवं प्रकृति दोनों के प्रगाढ़ परिचय, सही सटीक स्वर लगाव और गमकों का कल्पनात्मक एवं कुशल प्रयोग। इनके लिये प्रतिभा के साथ दीर्घकालीन तप और साधना भी अनिवार्य है।

धमार :-

धमार एक विशेष गायन शैली है। इसे ध्रुवपद अंग की गायकी माना जाता है क्योंकि ध्रुवपद के समान धमार लयकारी प्रधान शैली में गाया जाता है। इसकी शैली भी ध्रुवपद के के समान है। धमार को ध्रुवपद गायक ही अधिकतर गाते हैं, अतः कह सकते हैं कि ध्रुवपद गायन व धमार गायन में चोली-दामन का साथ है। इसका एक कारण यह भी है कि ध्रुवपद में जो चार बानियाँ- खण्डार बानी, नौहार बानी, गोबर बानी और डागुर बानी हैं वही बानियाँ धमार में वर्णित हैं।

धमार की धूमधाम केवल लोक जीवन अथवा वैष्णों के मन्दिरों में ही नहीं थी अपितु मुगलों के दरबार और अन्तःपुर रंगीन धमारों से शोभायमान होते थे। 'धमाल', 'धमार', 'धमारी' इन तीनों रूपों का मूल एक ही है। संस्कृत धातु 'धम्' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, फूँक मारना और बजाना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'धम् इव इच्छति' (धम्+कृ+अच्) हो सकती है जिसका अर्थ होगा- 'गान का वह प्रकार, जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़काता हुआ-सा चले।'

लोक संगीत में 'धमार' एक सामुहिक गान है, जो टोलियों में गाया जाता है। होली खेलने वालों की टोलियाँ रंग खेलती हुई

धमार गाती हैं और इनकी संगति, प्रधान वाद्य ढोल द्वारा होती है। धमार का विषय होली से सम्बन्धित होता है जिससे कृष्ण और राधा के होली खेलने का चित्रण होता है। साथ ही गोपियाँ, सखागण, नृत्य, गान, मजीरा, मृदंग, वंशी अबीर-गुलाल की बहार, रंग भरी पिचकारी, आदि का वर्णन होता है जो 'होरी' का शाब्दिक चित्र प्रस्तुत कर देता है। जन साधारण में यह 'होरी' धमार नाम से प्रचलित है।

मन्दिरों में वैष्णव संतो द्वारा रचित विशिष्ट पद 'धमार' ताल में गाये जाते हैं जिन्हें धमार कहते हैं। इनकी संगति पखावज व झाँझ द्वारा होती है। इस गान के पीछे कीर्तनकारों की आनुवांशिक परम्परा है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार 'अबुल फजल' ने "आइने अकबरी" में 'कीर्तनिया' नामक ब्राह्मण संगीतजीवियों की चर्चा की है।

धमार की गायकी में अच्छा गायक मात्रा, प्रस्तार का आश्रय लेकर लय के असंख्य और विविध झूलों में झूलता और श्रोताओं को झुलाता है। पखावजी इस क्रिया में उसका साथ देता है। कभी-कभी दोनों में प्यार से नोंक-झोंक भी होती है।

दरबार में जो धमार गाया जाता था उसमें शहंशाह को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। जहाँगीर के कथनानुसार, तानसेन अपनी रचनाओं में अकबर का नाम डाल दिया करते हैं। मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी कलाकार नेमत खां सदारंग ने भी अनेक धमारों की रचना की है। सदारंग की रचनाओं में मुहम्मद शाह नायक थे। सदारंग संगीत और काव्य में महाकवि 'देव' के शिष्य थे। उनका एक धमार इस प्रकार है-

"अब तौ मुहम्मदसाहि पिय घर आए।

चहल पहल फागुन की देखौ, जित तित सदारंग बरसाऐ।।

चैन सों गाओ आओ रहसि रहसि कहि लाखनि-लाखनि पाए।

इक होरी दूजे न्हाए रंग सो, यह सुख गिने न जात गिनाए।।"

सदारंग ने होली में वर्षा का आरोप इस प्रकार किया है-

"फागुन मास मैं बरखा जह प्रगट दिखाई।

पिचकारी अरू भोडर चपला, अबीर गुलाल घटा छाई।।

करि सिंगार हार-भोती-माल, बग पंगति छवि छाई।

सदारंगीले छबीले मुहम्मदसा उमंगो झर लाई।।"

धमार रचना की परम्परा को आगे बढ़ाते हुये सदारंग के भतीजे और दामाद फिरोज खाँ अदारंग, रामपुर राजवंश के संस्थापक नवाबअलीमुहम्मद खाँ के पुत्र नवाब मुहम्मद सादुल्ला खाँ के आश्रय में रहे। अदारंग कहते हैं-

"एरी नैंक सुध हमसों बोलि नारि।

होरी मैं गुमान काम नहिं आवै, तू तो मुगध गँवारि।।

कहूँ रंग, कहूँ अबीर गुलाल, कुहूँ कुमकुमा कहूँ पिचकारी।

ऐसी हौं फगुआ माँगियै मुखते, 'अदारंग' अँचरा डारि।।"

सदारंग के पुत्र मनरंग भी जयपुर दरबार में रहे। इनके धमार में हिंदू दरबार का पूरा प्रभाव था। नूररंग ने भी पारम्परिक शैली में धमारों की रचना की है। नूररंग ने एक विरहिणी की व्याकुलता का वर्णन इस प्रकार किया है-

"आलि आयौ जह फागुन मास, पिय कीनो गमन,

मो पै कैसे करे जहरितु उन बिन माई।

ज्यों-ज्यों सुधि आवत मोहन की, ग्रह-आँगन अति,

दूभर विरह देत दुख दुखदाई।।

चहुँ ओर डफ बाजन लागे, मन्मथ करत चढ़ाई।

जहँ दुख वैरी पाछे लगौ, बड़ो कठिन है भाई।।

पल-पल छिन ऐसौ बीतत, कह सकत तेरी दुहाई।

'नूररंग' के दरस देखे बिन, नैननि नींद न आई।।"

इन गेय रचनाओं में छंद का बंधन अनिवार्य नहीं है। दरबारों की यह धमार-परम्परा दरबारों की स्मृति मात्र है।

वैसे धमार ताल में निबद्ध 'होरी' नामक गीत को 'धमार' कहते हैं, किन्तु संगीतज्ञों ने इन दोनों में थोड़ा अन्तर कर रखा है। उनके अनुसार, धमार विद्या केवल धमार ताल में गाई जाती है व ध्रुवपद शैली से गाई जाती है, जबकि 'होरी' धमार ताल की अपेक्षा दीपचन्दी, चाँचर, तीनताल में गाई जाती है तथा ठुमरी व ख्याल शैली से गाई जाती है। 'होरी' कोटि में होली के प्रसंग युक्त गीत ही होते हैं।

आजकल ख्याल की लोकप्रियता के कारण अब कालेज तथा विश्वविद्यालायों में सारा पाठ्यक्रम ख्याल पर ही आधारित होता है। ध्रुवपद धमार मात्र परिचय देने के लिये सिखाये जाते हैं। पुरानी पीढ़ी के धमार गायकों में उस्ताद नत्थन खाँ, उस्ताद विलायत हुसैन, फैयाज खाँ, एवं डॉ० सुमति मुटाटकर आदि है। ध्रुवपद धमार गायकों मे अला बन्दे खाँ, रहीम सैन, सीताराम तिवारी, नसीर मुईनुद्दीन, राम चतुर मलिक, अमीनुद्दीन डागुर, नसीरुद्दीन, असगरी बाई के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

ख्याल :–

भारतीय रागदारी संगीत की श्रेष्ठ सम्पदा ध्रुवपद गायकी रही है, किन्तु आज वह परित्यक्त है। इस गायकी का प्रधान आदर्श था उसकी गम्भीरता, भव्यता एवं विपुलता तथा साथ ही सुसंगति के साथ अपने वजन की रक्षा, नियमों की कठोरता के साथ पालन। यही कारण था कि अठ्ठारवीं सदी से ध्रुवपद का स्वरूप बदलता गया और उसका प्रभाव ख्याल पर पड़ा अर्थात् उसी के प्रभाव से ख्याल की उत्पत्ति हुई। राग के अलंकृत रूप और उसके वाणी रूप मे मिलन के प्रयासों से ही ख्याल का उद्‌भव हुआ। दोनों के जैव मिलन अर्थात् गीत और रूपकालप्ति के सम्मिश्रण से एक नवीन आकार सामने आया। आरम्भ में ख्याल, ध्रुवपद गायकी के पथ का अनुसरण करता था। उसका विकास, विस्तार भी उसी पथ का आदर्श मानकर होता था, इसीलिये उसमें पुरुषोचित गाम्भीर्य की विशेष अभिव्यक्ति थी। अलंकार बाहुल्य न था। आज ख्याल, अलंकार बहुल होता जा रहा है साथ ही ठुमरी गायकी की ओर लुढ़कता जा रहा है। आज इसमें नारी सुलभ माधुर्य प्रमुखता से सामने आ रहा है और वह अपनी उदात्तता व गम्भीरता खोता जा रहा है।

ख्याल को प्रचार में लाने में अनेक संगीतज्ञों ने अपना योगदान दिया। 18वीं शताब्दी में सदारंग जिनका असली नाम न्यामत खाँ था उन्होंने ख्याल रचनायें कीं और अपनी रचनाओं में मुहम्मद शाह रंगीले का नाम डाल दिया। ऐसा भी कहा जाता है कि विलम्बित ख्याल का आविष्कार जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की द्वारा 15 वीं शताब्दी में हुआ और द्रुत ख्याल का चलन अमीर खुसरो द्वारा कव्वाली गायन शैली से हुआ। इस प्रकार ख्याल के आविष्कारक

जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की थे जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार, अमीर खुसरों ख्याल गायन शैली के निर्माता कहे जाते हैं परन्तु इस बारे में सभी एकमत हैं कि ख्याल का आविष्कार पंद्रहवी शताब्दी में हुआ और इसका प्रचार अठ्ठारवीं शताब्दी में सदारंग तथा अदारंग द्वारा पूर्णरूप से हुआ। इस प्रकार अमीर खुसरो, सुल्तान हुसैन शर्की व सदारंग, अदारंग के नाम, ख्याल शैली के उद्‌गम की चर्चा में सामने आते हैं।

कुछ विद्वान ऐसे हैं जो ख्याल को प्राचीन शैलियों पर आधारित मानते हैं अर्थात् ध्रुवपद की शुद्धता बनाये रखने के लिये जो बन्धन थे, उनके विरूद्ध हुई प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ख्याल का आर्विभाव हुआ। एक विद्वान ख्याल का उद्‌गम साधारणी गीति से मानते हैं। 7वीं व 8वीं शताब्दी में प्रचलित मधुर गमकों से युक्त साधारणी गीति का स्वभाविक विकास ही 'ख्याल शैली' बना जिसमें सब प्रकार की गमकें, खटके, मुर्की, व कम्पन आदि का मिश्रण था। फारसी में ख्याल शब्द का अर्थ है- 'कल्पना' या 'कल्पनात्मक रचना'। वास्तव में ख्याल शैली न फ़ारस से आयी, न अरब से, न अमीर खुसरो ने इसका आविष्कार किया, और न सुल्तान हुसैन शर्की ने। हाँ उन लोगों ने विकास में योगदान अवश्य दिया जिसमें 18वीं शताब्दी में मुहम्मद शाह रंगीले के समय में यह बहुत लोकप्रिय हुआ व सदारंग-अदारंग ने सैकड़ों गीतों की रचना की।

सभी शैलियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि कोई भी शैली अनायास एक व्यक्ति के प्रयत्नों से अर्थात् एकदम से आरम्भ नहीं हुआ बल्कि धीरे-धीरे नई शैली प्रारम्भ हुई और उसके

पहले की प्रचलित शैली कम प्रचलित होती गई, परन्तु एकदम समाप्त नहीं हुई, उदहरण स्वरूप-

(1) गान्धर्व संगीत 600 से 500ई0पू0 से तीसरी या पाँचवी शताब्दी तक प्रचलित रहा और इसी बीच देशी संगीत भी प्रचलित था। अन्त में देशी संगीत ने ही जोर पकड़ा।

(2) जातियों का उल्लेख 400ई0पू0 में लिखी गयी 'रामायण' में भी मिलता है और दूसरी शताब्दी में भरत के समय में भी था उसके पश्चात् उसमें परिवर्तन आते गये और उसका प्रचलन कम होता गया। 13वीं शताब्दी में वह अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था जिनका उल्लेख शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ में किया है। कुछ रागों का उनसे सम्बन्ध भी बताया है।

(3) प्रबन्ध का उल्लेख लगभग 11वीं शताब्दी में जयदेव कृत "गीत गोविन्द" ग्रन्थ में मिलता है और उसके पश्चात् 13वीं शताब्दी में शारंगदेव के ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" में तो इस पर पूरा एक अध्याय लिखा गया है।

(4) मुसलमानों के भारत में आ जाने पर कव्वाली शुरू हुई जो आज भी प्रचलित है।

(5) प्रबन्ध के आधार पर ही ध्रुवपद नामक की शैली का प्रचार हुआ जो आज भी प्रचलित है।

इस प्रकार सभी शैलियाँ एक दूसरे से उद्भूत अथवा एक दूसरे पर आधारित होती हैं और एक शैली का पतन होने से पूर्व ही दूसरी शैली प्रचलित हो जाती है अर्थात् परिवर्तित शैली या विकसित शैली ही किसी शैली के पतन का कारण बनती है। जाति, प्रबन्ध, कव्वाली, ध्रुवपद आदि सभी एक दूसरे के पतन का कारण बने परन्तु फिर भी प्राचीन शैली को नई शैली एकदम समाप्त न

कर सकी। एक समय में एक ही प्रकार का संगीत पूर्णतया प्रचलित रहे, ऐसा आवश्यक नहीं क्योंकि उदाहरण स्वरूप हम देखते हैं कि जाति का उल्लेख 400 ई0पू0 में लिखित 'रामायण' में भी है और 13वीं शताब्दी में लिखित 'संगीत रत्नाकर'' में भी है। इसका अर्थ यह हो सकता है कि यह शैली इस बीच के समय नष्ट नहीं हुई थी परन्तु अन्य शैलियों के मध्य दब गयी थी। यह भी सम्भव है कि जो रूप उसका 'रामायण' के समय था, वह 13वीं शताब्दी में पूर्णतया बदल गया हो। यही बात ख्याल के विषय में भी प्रतीत होती है।

18वीं शताब्दी तक आते-आते ख्याल के स्वरूप को मुहम्मद शाह रंगीले के समय पूर्णतः पनपने का अवसर मिला। इस समय यद्यपि इसमें श्रृंगारिकता का स्थान बढ़ गया था फिर भी सदारंग - अदारंग आदि के प्रयत्नों से ख्याल का इतना अधिक प्रचार हुआ कि जिसके प्रभाव से आज तक इस शैली को मान्यता प्राप्त हो रही है।

टप्पा :—

टप्पा गायन शैली उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् आती है। टप्पा गायन शैली को हिन्दी भाषी प्रान्तों में 'टप्पा', बंगला में 'टौप्पा' और पंजाबी में 'टप्पे' के नाम से जाना जाता है। टप्पा शब्द पंजाबी प्रान्त के 'टप्पना' शब्द से निर्मित है जिसका अर्थ है उछलना, कूदना, फुदकना इत्यादि।

'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ गुलामनबी शोरी के द्वारा हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार, ध्रुवपद व ख्याल में अपनी तानें लगाने के कारण गुलाम नबी को अपने पिता ख्याति प्राप्त गायक गुलाम रसूल से डाँट खानी पड़ती थी। फलतः उन्होंने घर छोड़ कर पंजाब

जाकर टप्पे की रचना की। यह चपल गति की श्रृंगार रस प्रधान शैली है तथा अपने अर्थ के अनुरूप उछाल खाकर गिरती रहती है। पंजाब प्रान्त में ऊँट के समान चाल वाला गाना ही टप्पा था। टप्पा गायन शैली में बन्दिशों की रचना करते समय शोरी मियाँ ने बाह्य कलेवर को और अधिक सूक्ष्म बना दिया। यही संक्षिप्तता टप्पे की विशेषता बन गई। संक्षिप्तता के कारण एक आवर्तन में स्थायी तथा दूसरे आवर्तन में अन्तरा गाने का प्रचलन हो गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, ध्रुवपद की बेसरा गीति के आधार पर टप्पा गायन शैली की रचना हुई।

ब्रजभाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के रचयिता बल्लभाचार्य जी का समय 16वीं शताब्दी माना जाता है। उनके अनुसार, सोलहवीं शताब्दी में ख्याल एवं टप्पा अथवा टप्पख्याल की रचनायें गाई जाती थीं और बहुत लोकप्रिय भी थीं। किन्तु साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि शोरी मियाँ में ज़मज़मा तान लेकर गाये जाने वाले टप्पों से ये कितने भिन्न है। प्रसिद्ध ग्रन्थकार फकीरुलाह ने लाहौर प्रान्त के एक प्रसिद्ध प्रेमगीत के रूप में टप्पे का उल्लेख किया है। शोरी मियाँ के पश्चात्‌वर्ती गायकों की परम्परा से हम अधुना प्रचलित टप्पे के रूप का अन्दाजा लगा सकते हैं। सदारंग ने भी टप्पे की रचना की है।

शोरी मियाँ के गायन में तान, कम्पन, गिटकिरी इत्यादि अनोखे थे। इनके टप्पे खमाज, झिंझोटी, भैरवी, सिन्धु, जैसे रागों में उपलब्ध हैं। टप्पा गायन शैली के गायन में गले की तैयारी की आवश्यकता होती है। भारतीय और फारसी संगीत पद्धतियों का सुन्दर सम्मिश्रण मुसलमान काल की ही विशेषता है।

टप्पा में प्रयुक्त होने वाले राग निम्नलिखित हैं-

भैरवी, खमाज, बिहाग, काफी, देश, जयजयवन्ती, राग रूप, झिझोंटी, मांड, जंगला, सिन्धूरा आदि। टप्पा गायकी के साथ पंजाबी ताल, टप्पा ताल पश्तो ताल, मध्यमान ताल बजाया जाता है। टप्पा की बन्दिशों में पिया से विरह के भाव, प्रियतम की प्रतीक्षारत प्रेमिका की पुकार आदि का वर्णन मिलता है। टप्पा के घरानों में ग्वालियर, गोगरे, बनारस, गया, विष्णुपुर, इलाहाबाद, पटियाला घराना प्रमुख हैं।

अठ्ठारवीं शताब्दी के उत्तर काल में ही टप्पे का विकास हुआ। टप्पा के शब्दों का अधिकाधिक संकोच होता गया। इसमें स्थायी अन्तरा दो धातु शेष रह गये। टप्पा गीतों का मुख्य विषय श्रृंगार ही होता है। शब्द अधिकांशतः पंजाबी भाषा के ही होते हैं। तान बहुल होने के कारण शब्दों की तोड़मरोड़ अधिक होती है, इस कारण काव्य सौन्दर्य के द्वारा रसानुभूति टप्पा -- गायकी में सम्भव नहीं होती।

टप्पा गायकों में उस्ताद निसार हुसैन खाँ, शंकर पण्डित, राजा भैया पूँछवाले, एल.के. पण्डित, कृष्णधन घोष, श्री गनपत राव, भास्कर राव बखले, लालजी बुआ, देवजी बुआ, शिव सेवक मिश्र, पशुपति मिश्र, सिद्धदेश्वरी देवी, रसूलनबाई, गिरिजा देवी, बड़ी मोतीबाई, बंगारीबाई, राजन-साजन मिश्र, रामप्रसाद मिश्र, गोपेश्वर बनर्जी, निहार रंजन बनर्जी, रामनिधि चक्रवर्ती, भोलानाथ भट्ट, गणेश प्रसाद मिश्र, तान रस खाँ, हुसैन बख्श, शाकर अली, प्रो0 सुन्दर सिंह, उत्तम सिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ठुमरी :-

संगीत कला का प्रवाह सदैव दो धाराओं में प्रवाहित होता रहा है- मार्ग तथा देशी। दोनों में कलाकार की सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति का स्थान रहता है। मार्ग संगीत में यह अभिव्यक्ति नियमों की सीमा में बद्ध रहती है और देशी संगीत में इसका रूप अपेक्षाकृत स्वच्छन्द रहता है अर्थात् मार्ग संगीत में शास्त्रपक्ष और देशी संगीत में लोकपक्ष प्रधान रहता है। संगीत चाहे, मार्गी हो अथवा देशी, दोनों का उद्गम लोक में प्रचलित संगीत से हुआ है।

ठुमरी भी मूलतः लोकसंगीत से उपजी गान विधा है। विद्वानों की मान्यता है कि उत्तर भारत में नृत्य व अभिनय के साथ गाई जाने वाली देशी शैली के रूप में ठुमरी का सूत्रपात हुआ। 'रागदर्पण' में ठुमरी सम्बन्धी उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से अभी तक सबसे पुराना है। फकीरुलाह ने अपने इस ग्रन्थ में ठुमरी को राग बरवा का ही दूसरा नाम बताया है। सत्रहवीं शताब्दी में रचित वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि ठुमरी एक पुरातन गीत है।

एक स्वतन्त्र और समग्र कला विधा के वर्तमान रूप में ठुमरी का विकास लखनऊ में, नवाबी छत्रछाया में हुआ। ठुमरी के विकास और प्रचार में सर्वप्रथम जिन व्यक्तियों ने योगदान दिया उसमें लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह उनके दरबारी गायक सादिक अली खाँ और लखनऊ घराने के कथक नर्तक महाराज बिंदादीन प्रमुख थे।

ठुमरी मूलतः नृत्यगीत भेद था जिसका कथक नृत्य शैली से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक विभिन्न सामाजिक उत्सवों और महफ़िलो में वेश्याओं द्वारा ठुमरी गान के

साथ उसके बोलों का अर्थभाव कथक नृत्य शैली के माध्यम से किया जाता था।

ठुमरी गान का प्रयोग नाटकों में भी किया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में लेखक मिर्ज़ा नज़ीर बेग ने ऑपेरा नाटक, 'मार्कए-लंकारामायण' लिखा जिसमें ठुमरी का प्रयोग गाने के रूप में किया गया है।

वेश्याओं द्वारा ठुमरी गान में साधरणतया रागों के सर्वमान्य नियमों की अवहेलना किए जाने के कारण बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ध्रुवपद व ख्याल के स्वाभिमानी संगीतज्ञ ठुमरी को उपेक्षित दृष्टि से देखते थे। किन्तु अपनी कलात्मकता व स्वाभाविक माधुर्य के कारण ठुमरी ने धीरे-धीरे भारतीय जनमानस को इतना प्रभावित किया कि अनेक उच्चकोटि के प्रतिष्ठित संगीतज्ञों ने उसे अपनाया और संगीत-सभाओं व संगीत-सम्मेलनों में गाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार ठुमरी कोठे के परिसर से निकलकर अभिजात्य संगीत सभाओं में प्रतिष्ठित हुई।

ठुमरी गान की वर्तमान प्रचलित पद्धति उन उस्तादों से प्रारम्भ हुई जिन्होंने ठुमरी गीतों में निहित भावों को नृत्य व अभिनय की अपेक्षा विभिन्न स्वर-सन्निवेशों द्वारा व्यक्त करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार की ठुमरी के प्रवर्तकों में भैया गनपतराव और मौजुद्दीन खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। ठुमरी के विकास में भैया गनपत राव के विषय में श्री दिलीप चन्द्र बेदी ने लिखा है- 'भैया गनपतराव ने ठुमरी गान में ऐसी तराश पैदा की कि तमाम गायक उनकी तकलीद (अनुसरण) करने लगे।'

इस प्रकार ठुमरी एक विशिष्ट गान-विधा के रूप में विकसित होकर जनसमाज में लोकप्रिय व प्रचलित हुई। मूलत: नृत्यात्मक

गीत-विधा होने के कारण, ठुमरी में प्रारम्भ से ही गीत के बोलों का महत्वपूर्ण स्थान था। इसीलिए 'बोल' को ठुमरी की आत्मा, उसकी जान कहा जाता है वर्तमान युग में ठुमरी दो अंगो से गाई जाती है-'पूरब अंग' और 'पंजाब अंग'।

पूरब अंग :-

उत्तर भारत के पूर्वी भागों में प्रचलित ठुमरी को 'पूरब अंग की ठुमरी' कहा जाता है। पूरब अंग की ठुमरी अपने सुरीलेपन, चैनदारी और बोल बनाव आदि के लिये प्रसिद्ध है। इसके दो भेद माने जाते हैं जिन्हें क्रमशः लखनवी और बनारसी शैली कहा जाता है।

लखनवी शैली :-

लखनऊ की ठुमरी अभिजात्य संगीत परम्परा और दरबारी शान शौक़त की झलक पेश करती है। 'बोलों को नज़ाकत और भावुकता से कहना ही लखनऊ की ठुमरी की जान है।' लखनवी ठुमरी में खटका, मुर्की और छोटी तानों की अच्छी सजावट रहती है। लखनऊ क्षेत्र में टप्पा गान विधा का बहुत प्रचार होने के कारण लखनवी शैली की ठुमरी पर टप्पा शैली के स्वर संदर्भों की झलक कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होती है।

परम्परागत व मूल लखनवी ठुमरी बंदिशी ठुमरी है जिसकी रचना छोटे ख्याल की भाँति होती है बनारस की बोल-बनाव की ठुमरी के आविर्भाव के बाद बंदिशी ठुमरी की लोकप्रियता कम ही नहीं हुई वरन् उसी शैली पर भी बोल-बनाव की ठुमरी का प्रभाव पड़ा। अतः वर्तमान युग में मूल लखनवी शैली प्रायः लुप्त ही हो गई है।

बनारसी शैली :-

बनारस नगर और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में मुख्य रूप से प्रचलित होने के कारण इसे बनारसी ठुमरी कहा जाता है। चैनदारी, बोल वृत्तान्त की मधुरता इस ठुमरी शैली की विशेषताएं हैं। इन ठुमरियों के बोल बनाव में 'काकु' का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। बनारसी ठुमरी पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाए जाने वाले चैती, कजरी, पूरबी आदि लोकगीतों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस शैली की ठुमरी कभी-कभी सजावट हेतु ठुमरी के विषयानुकूल रीतिकालीन हिन्दी की ब्रज, अवधी इत्यादि भाषाओं मे रचित दोहा, सोरठा आदि कहने का प्रचलन है।

पंजाब अंग :-

पंजाब अंग की ठुमरी में बोल-बनाव के अतिरिक्त छोटी-छोटी तानों, बोलतानों, मुर्की, खटके, ज़मज़मा आदि का अलंकरण पाया जाता है। स्वर वैचित्र्य, कण, टप्पा शैली की छोटी-छोटी खटकेदार तानों का व्यवहार पंजाब अंग की ठुमरी की विशेषता है। इस अंग की ठुमरी में पंजाब प्रदेश के हीर, माहिया, टप्पा, मुल्तानी, काफी, पहाड़ी अादि लोकगीतों की धुनों की स्पष्ट झलक मिलती है।

इस युग के पूरब अंग की ठुमरी के कलाकारों में स्व0 भोलानाथ भट्ट, महादेव प्रसाद मिश्र, स्व0 पंडित हरिशंकर मिश्र, स्व0 भोलानाथ भट्ट, महादेव प्रसाद मिश्र, स्व0 बड़ी मोतीबाई, स्व0 सिद्धेश्वरी देवी, स्व0 रसूलनबाई, स्व0 बेगम अख्तर, शोभा गुर्टू, गिरिजा देवी, बागेश्वरी देवी, स्व0 हीरा देवी मिश्र, स्व0 शांता देवी, सविता देवी, रीता गांगुली, अनिता सेन, पूर्णिमा चौधरी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कलाकारों ने तथा इनकी शिष्य परम्परा ने

अपने-अपने योगदानन से ठुमरी की पूरब शैली की संगीत परम्परा को समृद्ध किया है।

बनारस की बड़ी मोतीबाई, रसूलनबाई, सिद्धेश्वरी देवी इस युग की उत्तम ठुमरी गायिकाएं हुईं हैं। प्रबल भावाभिव्यक्ति, उत्कृष्ट बोलबनाव, टप्पा अंग की तानों का प्रयोग, अरे हाँ, रे जैसे स्तोभाक्षरों का प्रयोग इनके ठुमरी गायन की विशेषताएं थीं। इनके कारण ही बनारस में बोल - बनाव की ठुमरी का नया युग आया। विद्धेश्वरी देवी के शिष्य परम्परा में उनकी सुपुत्री सविता देवी तथा शिष्या रीता गांगुली व कौमुदी मुंशी के नाम उल्लेखनीय है। स्व0 बेगम अख्तर के ठुमरी गायन में लखनऊ की नज़ाकत, नफ़ासत, शब्दों में निहित भावों की सुंदर अभिव्यक्ति पूरब और पंजाब अंग की ठुमरियों का सुंदर मिश्रण इत्यादि प्रमुख विशेषता थी। उनकी शिष्य परम्परा में शान्ति हीरानन्द और रीता-गांगुली के नाम उल्लेखनीय हैं।

पंडित महादेव प्रसाद मिश्र, विशुद्ध पूरब अंग की शैली के प्रतिनिधि हैं। महादेव मिश्र जी के बोलों की 'कहन' उनकी मौलिक विशेषता है। इनके अतिरिक्त श्री भोलानाथ भट्ट जी का नाम भी उल्लेखनीय है। उनके शिष्यों में माणिक वर्मा, सुलोचना, यजुर्वेदी व मालती पांडे प्रमुख हैं। गिरिजा देवी की ठुमरी शांत और सीधे स्वभाव की है।

पंजाब अंग की ठुमरी शैली को प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्व0 अली बख्श के पुत्रों स्व0 बड़े गुलाम अली खाँ और उनके छोटे-भाई स्व0 बरकत अली खाँ को दिया जाता है। इन्होंने पूरब अंग की ठुमरी में पंजाबी लोकधुनों, टप्पे की सूक्ष्म हरकतों, स्वर-वैचित्र्य और चमत्कार का समावेश करके ठुमरी की एक सर्वथा नवीन

शैली को प्रचलित किया जो कि 'पंजाब अंग की ठुमरी' के नाम से प्रकाश में आई। पंजाब अंग की ठुमरी गायन में बड़े गुलाम अली खाँ, मीरा बनर्जी, सन्ध्या मुखर्जी आदि के नाम प्रमुख हैं। वर्तमान युग में पंजाब अंग की ठुमरी गाने वाले अन्य कलाकारों में पाकिस्तान के स्व0 नज़ाकत अली और सलामत अली, पंडित जगदीश प्रसाद, अजय चक्रवर्ती, निर्मला अरूण, अजय पोहनकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सार्वजनिक संगीत सभाओं में प्रतिष्ठित होने के बाद ठुमरी गायकी धीरे-धीरे इतनी लोकप्रिय होती गई कि विदेश के अनेक उच्चकोटि के ध्रुवपद गायकों और विभिन्न घरानों के ख्याल गायकों ने इसे अपनाया। इनमें स्व0 फैयाज खाँ, स्व0 अब्दुल करीम खाँ, शंकर राव पंडित, स्व0 राजा भैया पूँछवाले, मथुरा के चन्दन चौबे, पण्डित दिलीप चन्द्र वेदी आदि ने ठुमरी को बहुत आदर, प्रेम और सद्भाव से अपनाया। कालान्तर में कलाकारों द्वारा अपने संगीत कार्यक्रमों का समापन ठुमरी से करने की प्रथा-सी चल पड़ी है। ठुमरी के क्षेत्र में किराना घराने के सुप्रसिद्ध गायक स्व0 उस्ताद अब्दुल करीम खाँ का योगदान उल्लेखनीय है। प्रचलित ठुमरी के अर्थ-प्रधान स्वरूप को स्वर प्रधान में बदलकर उन्होंने किराना घराने की ठुमरी की नींव रखी।

वर्तमान युग में जन सामान्य ने ठुमरी की लोकप्रियता तो अर्जित की है किन्तु उसकी प्रस्तुति ख्याल गायन के उपरान्त एक छोटी भावनात्मक वस्तु के रूप में की जाती है। पुराने समय में ठुमरी की विशिष्ट महफिलें सजा करती थीं और छह से दस घंटे चला करती थीं किन्तु आज संगीत सभाओं में ठुमरी का प्रदर्शन कार्यक्रम के बाद एक छोटी रसात्मक शैली के रूप में किया जाता है। यद्यपि आज भी कुछ कलाकार हैं जिनका शिक्षण विशेष रूप से ठुमरी शैली में हुआ है किन्तु उनकी संख्या कम है।

वर्तमान युग में ठुमरी गायन के प्रति लोकाभिरूचि बढ़ी है किन्तु उसके पद में गिरावट आई है। इतना होने पर भी इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि ठुमरी, जो पहले कोठे की चहारदीवारी तक सीमित थी, उसे आज अभिजात्य संगीत सभाओं में मान्यता प्राप्त है। प्रत्येक युग में धीरे-धीरे इसका विकास होता रहा है। पिछले कई वर्षों से इसका मूल रूप विभिन्न परिवर्तनों के साथ इसी प्रकार का चला आया है, जैसा वह आज हमको सुनने को मिलता है।

तराना :-

यह ख्याल के प्रकार की एक गायकी है इसमें संगीत के बोल ऐसे होते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता, जैसे- ता, ना, दा, रे, तदारे, ओदानी, दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थायी और अन्तरा में ये दो भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

तराने में राग, ताल और लय का ही आनन्द है। प्राचीन काल में तराना को 'स्तोभगान' के नाम से जाना जाता था जिनका कोई अर्थ तो नहीं होता था परन्तु वे ओंकार की ध्वनि के वाचक होते थे और गायन में वाद्य यंत्र का आनन्द भी देते थे। तरानों का गायन मनोरंजक माना जाता है। बहादुर हुसैन खाँ, नत्थू खाँ, तथा वर्तमान काल में निसार हुसैन खां, पं0 विनायक राव पटवर्धन और पं0 कृष्णराव इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हुये हैं।

तराने के शब्द निरर्थक होते हैं मगर उसमें उसके राग और ताल का पूरा आनन्द आता है। गमक इत्यादि के साथ कहे गये तराने में बड़ा आनन्द होता है। परन्तु अतिश्योक्ति हास्यजनक होती है। कुशल गायक के गायन में राग के स्वरों का अनोखा आनन्द होता है और वह तरह-तरह से अपने राग की व्यख्या करता है। जो

गायक गमक की अतिश्योक्ति करते हैं वह केवल अपने गले का रियाज़ करते हैं। और जो 'दिर्र दिर्र' की झड़ी बाँधते हैं वह कभी-कभी सितार वादन की नकल करते हैं। तराने में राग का आनन्द आना चाहिये, रफ्तार का नहीं। इसकी भी अपनी विशेष गायकी है, जो अब सुनने में नहीं आती।

तिरवट या त्रिवट :–

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। किसी तराने में जब मृदंग के बोलों का भी प्रयोग किया जाता है तो ऐसे तरानों को 'त्रिवट' के नाम से जाना जाता है। इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। वर्तमान समय में तिरवट गायकी का प्रचार कम हो गया है।

दादरा :–

एक विशेष प्रकार की गायकी को 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल गज़ल से कुछ मिलती-जुलती है। मध्य तथा द्रुत लय में दादरा अच्छा मालुम पड़ता है। इसमें प्रायः श्रृंगार रस के गीत होते हैं। दादरा एक ताल का भी नाम है।

लक्षण गीत :–

लक्षण गीत प्रबन्ध में राग का संक्षेप वर्णन होता हैं। और उसकी मुख्य विशेषतायें बताई जाती हैं। इसमें स्वरों व शब्दों का संयोग विलक्षण होता है। विद्वान गायकों द्वारा रचित बहुत से लक्षण गीत बड़े सुन्दर हैं। कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों, उस राग के वादी-संवादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो तो उसे 'लक्षणगीत' कहते हैं। लक्षण गीत

से राग-सम्बन्धी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती हैं। इस युग में 'चतुर पण्डित' के लक्षण गीत बहुत प्रसिद्ध हैं। 'चतुर पण्डित' स्वर्गीय 'भातखण्डे जी' का ही नाम था और वह संगीत में अद्वितीय होने के अलावा स्वर में डूबे हुये बड़े रसिक और महान् संगीत प्रेमी और संगीत प्रचारक भी थे।

सरगम :–

रागबद्ध व तालबद्ध स्वर-रचना विशेष को 'सरगम' गीत कहते हैं। इसमें किसी प्रकार की कविता नहीं होती, केवल स्वर ही होते हैं। सरगम-गीत भिन्न-भिन्न रागों व तालों में निबद्ध होते हैं। इनको गाने से विद्यार्थियो को स्वरज्ञान तथा रागज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

रागमाला :–

जब एक गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक पंक्ति में एक-एक राग के स्वर लग जाते हैं तथा उस राग का नाम भी आ जाता है, तो ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

चतुरंग :–

ख्याल, तराना, सरगम, त्रिवट चार अंग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरंग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी सी परन रहती है। चतुरंग को ख्याल की तरह गाते हैं किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

सादरा गायन :–

ध्रुवपद होरी, ख्याल तथा ठुमरी की तरह सादरा भी गायन की एक शैली है जो बहुत कम प्रचलित रही है। आज के श्रोता जो संगीत में रूचि रखतें हैं तथा बहुत से सामान्य गायक सादरा गायन का नाम भी नहीं जानते। कहा जाता है कि अवध दरबार के गायक उस्ताद दुल्हे मियाँ ने सादरा गायन आरम्भ किया। उस्ताद दुल्हे मियां के पूर्वज आगरा घराने के हाजी सुजान के सम्बन्धी थे और आगरा छोड़कर शाहदरा (दिल्ली) आकर बस गये। दूल्हें मियाँ लखनऊ दरबार में आ गये और उनके गायन की शैली इसीलिये सादरा कहलाई।

सादरा गायन ध्रुवपद अंग का गायन है जिसे झपताल में गाते हैं। इस गायन में ध्रुवपद तथा होरी गायन से अधिक चपलता है। सादरा गायन में स्थायी को शुद्धता से ध्रुवपद की परम्परा में गाया जाता है। लय-बाँट का कार्य जिसे उपज भी कहते हैं, और बोलतान का प्रयोग ही सादरा गायन की विशेषता है। अतः ध्रुवपद से दो सीढ़ियाँ तथा होरी से एक सीढ़ी ऊपर संगीत के विकास में सादरा गायन का स्थान है। इस गायन की अगली सीढ़ी में ख्याल गायन है। उस्ताद मुहम्मद साहब का एक सादरा मालकोश राग में निबद्ध है जो इस प्रकार है-

"भज मन निरंकार,
जब लौ घट में प्रान।
प्रगट भये कछु भेद न जाना,
कहत हाजी सुजान।।"

सादरा गायन में कविता पर बल दिया जाता है, जैसे ध्रुवपद व होरी में। अत: इसमें श्रोताओं को आकर्षित करने की क्षमता है। अहमद खलीफा तथा उस्ताद मुहम्मद हुसैन खाँ साहब ने ऐसे कोई शिष्य ही नहीं निकाले जो इस गायन शैली का प्रचार व प्रसार करते है।

समय ने ध्रुवपद तथा होरी गायन को पीछे ढकेल दिया और इसी प्रकार सादरा गायन का आज एकदम लोप ही हो गया है।

....

चतुर्थ अध्याय

गायन शैलियों के विकास में गीति, जाति गायन एवं प्रबन्ध शैली का विस्तृत अध्ययन

(स) गीति के प्रकार, लक्षण व विशेषतायें

(रे) ध्रुवालक्षण, नाट्य में ध्रुवा, ध्रुवा भेद व भरतकालीन ध्रुवागीत

(ग) जाति के लक्षण व जाति से रस निष्पत्ति

(म) प्रबन्ध का अर्थ, प्रबन्ध के अंग, प्रबन्ध की जातियाँ, प्रकार व शाखायें

गायन शैलियों के विकास में गीति, जाति गायन एवं प्रबन्ध शैली का विस्तृत अध्ययन

विकास के लम्बे क्रम में कोई न कोई मूल कारण सदैव से ही अस्तित्व में रहा है और प्रत्येक वस्तु चाहे वो गायन शैली के रूप में हो या किसी अन्य रूप में, उस मूल अस्तित्व को ही प्रकाशित करती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि गायन शैलियों के विकास क्रम में हम वर्तमान काल से लेकर वैदिक काल तक के गायन शैंलियों के विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें, जिसके फलस्वरूप हम ये अनुमान लगाने में समर्थ होंगे कि आज जो गायन शैलियाँ प्रचार में हैं वो उन प्राचीन शैलियों का परिवर्तित रूप है अथवा कुछ विशेष शैलियों के विशेष अंगों के मिश्रण से उत्पन्न होकर किसी नये रूप में आज ये शैलियाँ प्रचलित हैं। इसी उद्देश्य से वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के विकास क्रम का अवलोकन उचित है। गायन शैलियों का विकास क्रमिक उन्नति के फलस्वरूप हुआ है। जैसा कि स्वामी प्रज्ञानानन्द जी का कथन है-

"The upholders of the sankhya and the vedanta believe in the satkaryavada, which means, effect is the manifested form of cause that exists eternally. They maintain that everything comes out from that which already exists in a causal form. The theory of evolution also connotes the idea of gradual manifestation of that which already existed in a subtle and causal form and involution implies the notion of going back to

casual form and Evolution implies the notion of going back to the casual state . "Nasah Karnarlayah" From this it is evident that evolution means the manifestation of something in a gradual process. Evolution is not, therefore, an entirely new thing, but the emergence of the new form out of the ashes of the old one with some necessary changes like additions and alterations, adjustments and readjustments. "[1]

वैदिक काल में अनेक देवताओं के पूजन का विधान था जैसे- इन्द्र, वरुण, सूर्य, अग्नि, वर्षा आदि की पूजा की जाती थी और इस पूजा का आधार मानव के कंठ से निकली संगीत की ध्वनियां थीं। इस प्रकार भावना से युक्त ध्वनियां संगीत का पहला अंश कहलायीं। धीरे-धीरे यज्ञ का निर्माण हुआ तब ऋग्वेद की ऋचायें गायी जाने लगीं। ऋग्वेद में लगभग 10472 ऋचायें हैं और इन्हीं ऋचाओं में से कुछ गेय ऋचायें साम संहिता के रूप में संग्रहित हुईं। इस प्रकार संगीत का सबसे पहलाद ग्रन्थ 'सामवेद' रचा गया। आज भी विभिन्न धर्मों के लोग इन ऋचाओं का गायन अपने इष्ट देव की आराधना के लिये करते हैं। वैदिक मन्त्र पहले तीन स्वरों में गाये जाते थे- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में कहा है-

"उच्चेरुदात्त: नीचैरनुदात्त समाहार: स्वरित:।"[2]

वैदिक काल में सात स्वर प्रचलित हो गये जिनके नाम इस प्रकार हैं- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट व अतिस्वार्य। वास्तव में स्वर ही संगीत का आधार है और साम संगीत से लेकर

---

1 Swami Prajanananda - Historical Study of Indian Music P 23

2. महामहोपाध्याय पं० वी० वेंकटराम शर्मा विद्या भूषण (सशोधक एव सम्पादक तैत्तिरीय प्रतिशाख्य) पृ० 10

वर्तमान तक सभी गायन शैलियों का आधार स्वर है। समय-समय पर संगीत में बदलाव आता रहा और संगीत का रूप बदलता रहा। भरत के "नाट्यशास्त्र" में हमें 'गान्धर्व' और 'गान' संगीत का उल्लेख मिलता है-

"न मध्यमस्य नाशस्तु कर्त्तव्यो कि कदाचन।
सर्वस्वराणां प्रवरो ह्यनाशी मध्यम: स्मृत:।
गान्धर्वकल्पेविहित: सामस्वपि च मध्यम:।।"[1]

शास्त्रों में संगीत दो प्रकार का मिलता है मार्ग और देशी। पं0 शारंगदेव ने "संगीत रत्नाकर'' के प्रथम अध्याय में कहा है-

"मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्ग: स उच्यते।
यो मार्गितो विरिच्चाधै प्रयुक्तो भरतादिभि:।।22।।
देवस्य पुरत: शम्भोर्नियताभ्युदयप्रद:।
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्।।23।।
गीतं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिघीयते।"[2]

वैदिक काल से तीसरी शताब्दी तक आते आते संगीत बहुत परिवर्तित हो गया और बाद में उसमें अनेक परिवर्तन होते रहे।

गीति :—

भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमें गीतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। गीति दो प्रकार के होते हैं-

(1) स्वराश्रिता

---

1 भरत कृत - नाट्यशास्त्र, चौथा भाग 28 वा अध्याय पृ0 43
2 प0 शारगदेव - 'सगीत रत्नाकर', प्रथम भाग, प्रथम अध्याय, पदार्थ सग्रह प्रकरण, पृ0 14

स्वराश्रिता गीतियों का सम्बन्ध रागों की स्वर संरचना तथा राग के चलन से रहता है, जबकि पदाश्रिता गीतियों का सम्बन्ध बंदिश की सरंचना व स्वरों में शब्दों व अक्षरों के रखाव से रहता है। 'संगीत रत्नाकार' में स्वराश्रिता गीतियों का विवरण ग्रामरागों के सम्बन्ध में मिलता है जिसमें पाँच स्वराश्रिता गीतियों पर आधारित पाँच प्रकार के ग्राम रागों की चर्चा की गयी है। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में जब गान्धर्व या मार्ग संगीत प्रचलित था विभिन्न स्थान के लोगों ने अपने-अपने मनपसंद संगीत का निर्माण किया जिसके फलस्वरूप पदाश्रिता गीतियों की रचना हुई। पं० शारंगदेव के अनुसार, "वर्ण पद तथा लय से सम्बन्धित गान क्रिया 'गीति' कहलाती है।"[1]

स्वराश्रिता –

स्वराश्रिता गीतियों की चर्चा शास्त्रों में रागों की स्वर सरंचना तथा विभिन्न स्वर प्रयोगों की दृष्टि से की गयी है। स्वराश्रिता गीतियों की संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान सात गीतियां मानते हैं, कुछ पांच तथा कुछ विद्वानों ने तीन तथा दो गीतियां मानी हैं। कुछ विद्वान केवल एक ही गीति मानते हैं। प्रसिद्ध शास्त्रकार मतंग ने सात गीतियां मानी हैं जो निम्नलिखित हैं-

शुद्धा, भिन्ना गौड़ी, रागगीति, साधारणी, भाषा तथा विभाषा। जबकि दुर्गा मत के अनुसार, पाँच गीतियां थीं- शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा व साधारणी। याष्टिक के अनुसार, तीन गीतियां व प्राचीन शास्त्रकार शार्दुल ने केवल एक गीति माना है।

---

1 पं0 शारगदेव कृत "सगीत रत्नाकर", प्रथम भाग, प्रथम स्वराध्याय, पृ0 280

पं० शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' की टीका 'संगीत सुधाकर' में सिंहभूपाल ने मतंग द्वारा बताये गये सात गीतियों का उल्लेख इस प्रकार किया है-

"प्रथमा शुद्धगीतिः स्याद द्वितीया भिन्न का भवेत्।
तृतीया गौड़ीका चैव रागगीतिश्चतुर्थिका।।
साधारणी तू विज्ञेया गीतिज्ञैः पंचमी तथा।
भाषागीतिस्तु षष्ठी स्याद्विभाषा चैव सप्तमी।।
भाषा चैव विभाषा च तथा चान्तरभाषिका।
तिस्त्रस्तु गीतमः प्रोक्ता याष्टिकेन महात्मना।।
भाषासंख्या गीतिरेकैव शार्दुलमतसंमता।
गीतयः पंच विज्ञेयाः शुद्धा भिन्ना च बेसरा।।
गौड़ी साधारणी चैव इति दुर्गमिते मतम्।"[1]

इस प्रकार समय-समय पर गीतियों की संख्या विभिन्न शास्त्रकारों तथा विभिन्न व्यक्तियों के गायन के अनुसार, बदलती गई। मतंग और शारंगदेव ने इन सात या पांच गीतियों के कुछ विशिष्ट लक्षण व विशेषतायें बताई हैं जो निम्नलिखित है-

(1) शुद्धा गीति में सीधी कोमल व मधुर ध्वनियाँ प्रयुक्त की जाती थीं।

(2) भिन्ना गीति में वक्र गीति के स्वर मधुर गमकों के साथ लगाये जाते थे।

---

1. पं० शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' (द्वितीय भाग, रागविवेकाध्याय, प्रथम सस्करण) की 'सगीत सुधाकर' टीका में पृ० 4, 5, पर सिहभूपाल द्वारा उल्लिखित

(3) गौड़ी गीति में नियमित रूप में कम्पन व गमक के साथ तीनों सप्तकों में स्वर लिये जाते थे।

(4) बेसरा गीति में आन्दोलन के साथ स्वरों को द्रुत लय में गाया जाता था।

(5) साधारणी गीति में अपनी कोई विशेषता न होकर ऊपर की चारों, गीतियों का मिश्रण रहता था।

(6) भाषा गीति में 'काकु' का विशेष योग रहता था और इनमें मधुर परन्तु स्पष्ट रूप से ध्वनियाँ प्रयुक्त की जाती थीं।

(7) विभाषा में जिन ध्वनियों का प्रयोग किया जाता था वे सुन्दर कोमल व शान्त तथा विभिन्न प्रकार की गमकों से सुसज्जित होती थीं।

इन गीतियों के तत्व ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि शैलियों के स्वर प्रयोगों में तथा विभिन्न रागों की स्वर सरंचना में देख सकते हैं।

पदाश्रिता –

भरत के अनुसार, गीतियां नाट्य के अतिरिक्त गान्धर्व में भी गाई जाती रहीं हैं। परम्परा के अनुसार, पदाश्रिता गीतियां चार प्रकार की मानी गई हैं- मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता, पृथुला।

(1) **मागधी**- भरत के अनुसार, भिन्न वृत्ति अर्थात् प्रथम भाग विलम्बित लय द्वितीय भाग मध्य लय तथा अन्तिम खण्ड द्रुत लय में गाई जाने वाली गीति मागधी कहलाती है।

(2) **अर्धमागधी**– मागधी की अपेक्षा आधी लय में अर्थात् द्रुत लय में गाई जाने वाली गीति अर्धमागधी कहलाती है।

(3) **सम्भाविता**– लघु अक्षरों से युक्त गीति सम्भाविता कहलाती है।

(4) **पृथुला**– गुरू अक्षरों से युक्त गीति को पृथुला कहा गया है।

इस प्रकार के अनेक परिवर्तनों के पश्चात् भी ख्याल के विकास में गीतियों के प्राचीन तत्वों के दिग्दर्शन होते हैं।

ध्रुवा :–

वैदिक छन्दों में ताल के सांमजस्य के लिये ओकार व हिंकार अक्षरों का प्रयोग किया गया। इन अक्षरों व अन्य सार्थक वाक्यों द्वारा चौदह प्रकरण गीतों की रचना हुई, जिनमें वैदिक छन्दों के 'वृत्त' नामक विकारों का उपयोग भी किया गया जिन्हें ध्रुवा की संज्ञा दी गई। इन गीतों द्वारा शिव की स्तुति की गयी।

ध्रुवा लक्षण –

ध्रुवा की सृष्टि भाषा, स्वर गति इत्यादि तत्वों से हुई है। अभिनव गुप्त के अनुसार, 'गीति का आधार नियत पद समूह ध्रुवा कहलाता है।' वाक्य, वर्ण, सांगीतिक-अलंकार, यति, पाणि और लय के ध्रुव (नित्य) रूप में अन्योन्याश्रित रूप को ध्रुवा कहते हैं। भरत के अनुसार, सप्तरूप (प्रकरण गीत) के प्रमाण और अंग भी ध्रुवा कहलाते हैं और 'ऋक्' (गीत विशेष) 'गाथा' तथा पाणि भी ध्रुवा के ही अन्तर्गत् हैं। ध्रुवा छन्दोबद्ध होते हैं। भरत के अनुसार, छन्दहीन शब्द की सत्ता सम्भव नहीं और न छन्द ही शब्दहीन होता है।

नाट्य में ध्रुवा –

रसानुकूल ध्रुवाओं का प्रयोग नाट्य को उसी प्रकार सुशोभित करता है। जिस प्रकार नक्षत्र आकाश को शोभित करते हैं। ध्रुवा

को नाट्य का 'प्राण' कहा गया है। ध्रुवा गीति का आधार पदसमूह है। वाक्य, वर्ण, अलंकार, यति (छन्द) पाणि (तालसंकेत) और लय उनके अनिवार्य तत्व हैं। रससृजन में ध्रुवा का अत्यधिक महत्व है। नाट्य में पंचविध, ध्रुवागान का उल्लेख मिलता है-

(1) प्रवेशिकी

(2) नैष्क्रामिकी

(3) आक्षेपिकी

(4) प्रासादिकी

(5) अन्तरा

पात्रों के प्रवेश के समय रसों व अर्थों से युक्त गायी जाने वाली ध्रुवा 'प्रवेशिकी' कहलाती है तथा अंक के अन्त में पात्रों के निष्क्रमण के समय की जाने वाली ध्रुवा 'नैष्क्रामिकी' कहलाती है। नाट्य के क्रम का उल्लंघन करके जिस ध्रुवा का प्रयोग करते हैं वह 'आक्षेपिकी', जो ध्रुवा रंगस्थल में प्रसन्नता ला देती है वह 'प्रासादिकी' तथा दोषाच्छादन जैसे- विस्मृत, क्रुद्ध, मत्त इत्यादि के लिये प्रयुज्य ध्रुवा 'अन्तरा' कहलाती है।

ध्रुवा के छः भेद –

रस तथा गुण के आधार पर ध्रुवाओं के निम्न छः भेद माने गये है-

(1) **शीर्षिका–** यह श्रृंगार रस में उत्तम प्रकृति के पात्रों का आश्रय होती है तथा इसमें मृदु वर्णों और पदों का प्रयोग होता है।

(2) **उद्गता**– (उद्धता) वीर और रौद्र रस में इसका प्रयोग होता है। आश्चर्य, रोष, विषाद, उत्पात, विशेषश्रम, प्रत्यक्षवेदन के समय में तथा भयानक रस में भी द्रुत लय में इसका प्रयोग होता है।

(3) **अनुबन्ध**– यति, लय, वाद्यगति, पद, वर्ण, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, को गीत एवं रस में नियतरूपेण अनुबद्ध करने के कारण इस ध्रुवा का नाम अनुबन्ध है।

(4) **विलम्बिता**– पात्रों के मनोभावों का भलिभाँति परिचय देने वाला ध्रुवा विलम्बिता है। नृत्य, औत्सुक्य, श्रम, दैन्य, चिन्ता और दु:ख में इसका प्रयोग होता है।

(5) **अड्डिता**– श्रृंगरोत्पन्न गुणों व रसों से युक्त मनोहर ध्रुवा का नाम अड्डिता है।

(6) **अवकृष्टा**– अवकृष्ट अक्षरों से युक्त, बद्ध निरुद्ध पतित और व्यथित अवस्था के प्रदर्शन के लिये करुण रस में इसका प्रयोग होता है। यह तार स्वर से आरम्भ होता है।

ध्रुवापद –

अक्षरबद्ध प्रत्येक वस्तु पद है और उसके दो प्रकार निबद्ध व अनिबद्ध है तथा दो अन्य प्रकार अताल व सताल है। ध्रुवा में निबद्ध और सताल पद का ही प्रयोग होता है। जो ज्ञेय होते हैं। यह अक्षर छन्द, यति, ताल से युक्त होता है।

ध्रुवा प्रयोज्य तीन वृत्त –

(1) गुरुप्राय

(2) लघुप्राय

(3) गुरु, लघु व क्षर

ध्रुवा प्रयोज्य भाषायें –

ध्रुवा में विभिन्न भाषाओं के प्रयोग का विधान है। "नाट्यशास्त्र" में शौरसेनी जैसी लोकभाषा का वर्णन है।

भरतकालीन ध्रुवागीत –

नाट्य के 32वें अध्याय में ध्रुवा-गीत के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। भरत ने नाट्य में ध्रुवागीत के प्रत्यक्ष प्रयोग का वर्णन किया है तथा उससे भी पूर्व ध्रुवा गीतों का महत्वपूर्ण स्थान था, इस सम्बन्ध में भी नाट्यशास्त्र में स्पष्ट वर्णन किया है। ध्रुवा गीत में स्वर, पद तथा ताल तीनों का सुन्दर सामंजस्य है। वर्ण अलंकार, लय, यति, उपपाणि इन अंगों के पारस्परिक नियत सम्बन्ध के कारण इनको ध्रुवा कहा जाता है। ध्रुवागान का प्रचार नाट्यशास्त्र की रचना से पूर्व था। इसका प्रमाण नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। नारद जैसे गन्धर्वाचार्यों के द्वारा उसकी विवेचना की जा चुकी थी। उसी परम्परा के अनुसार, सर्वप्रथम भरत ने ध्रुवा गीतों का विवेचन किया है।

"ध्रुवेति संज्ञितानि स्युर्नारदप्रमुखैर्द्विजैः।
यान्यंगानीह मुक्तेषु तानि में सन्निबोधत।।"[1]

आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार, नाटक के विभिन्न प्रसंगो के भावात्मक एकता स्थापित करने के कारण ये नाट्य गीत 'ध्रुवा' कहलाते हैं। इन ध्रुवा गीतों को परम्परा का क्रियात्मक रूप भरत के

---

1 भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' - स्वराध्याय, पृ0 - 282

पहले से लेकर परवर्ती संस्कृत नाटक ग्रन्थो में बराबर पाया जाता है। कालीदास ने अपने नाटक "विक्रमोर्वशीय" में इन्हीं ध्रुवा गीतों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। बाण ने भी अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है। मुशरि के "अनर्धराघव" नाटक तथा राजशेखर के नाटकों में भी इनका वर्णन है। दामोदर के "कुट्टिनीमत" नामक नाटक में प्रवेशिकी आदि ध्रुवा गीतों के गाये जाने का वर्णन है। अतः स्पष्ट है कि ध्रुवा गीतों की परम्परा भरत के पूर्व से लेकर बाण के समय तक विशुद्ध रूप से विद्यमान थी।

भरत के अनुसार, छन्द, वृत्त तथा पद की विशिष्ट रचना ध्रुवा गीतों के निर्माण में सहयोग देती रही है। निबद्ध पद समूह, जाति, प्रकार, प्रमाण, स्थान तथा नाम इन पाँच अंगो से ध्रुवा गीतों का निर्माण करते हैं-

"जाति स्थानं प्रकारश्च प्रमाणां नाम चैव हि।

ज्ञेया ध्रुवाणां नाटयज्ञैर्विकल्पाः पंचहेतुकाः।।"[1]

भरत के अनुसार, ध्रुवाओं का यथारस व यथास्थान प्रयोग तथा ध्रुवागान, स्वर, वर्ण, स्थान, लय आदि अंगो के साथ किये जाने पर नाट्य को सफल बना देता है। विभिन्न ग्रामरागों में भी ध्रुवाओं का गान होता था जिसका उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' में है। ध्रुवा गीतों के लिये मध्यम, षड्ज, साधारित, कैशिक मध्यम तथा कैशिक राग का विधान था, जो नाटकों की विभिन्न सन्धियों में गाये जाते थे। इन ध्रुवागीतों का निर्माण ऋटक, पाणिका, गाथा तथा सप्तरूप प्राचीन गीतों के अंगों के लेकर बताया गया है-

"या ऋचः पाणिका गाथा सप्तरूपांगमेव च।

सप्तरूपं प्रमाणं हि सा ध्रुवेत्थभिसंज्ञिता।।

1.भरत कृत 'नाट्य शास्त्र'।

एम्यस्त्वंगेम्य उद्घृत्य नानाछन्द: कृतानि च।

ध्रुवात्वं यानि गच्छन्ति तानि वक्ष्याम्यहं द्विजा:।।"

प्राचीन ध्रुवागीत शब्द, छन्द तथा ताल में निबद्ध होते थे। ध्रुवा में शब्दों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति के लिये आवश्यक माना जाता था। ध्रुवागीतों का आधारभूत तत्व इस प्रकार है-मुख, प्रतिमुख, वज्र, सन्धि, संहरण, वैहायसिक, उपवर्त, अवपात, स्थिर, प्रवृत, शीर्षक, भावघात, प्रस्तार, चतुरस्व, प्रवेश्य, अन्ताहरण, संविष्टत, महाजनिक। ध्रुवागीतों में पहले आलाप गान, उसके पश्चात्, वाद्य तथा उसके बाद छन्दगान होता था-

"पूर्वगानं ततो वाद्यं तो वृत्तं प्रयोजयेत्।

गीतवाद्यागसम्बन्ध: प्रयोग इति शंसित:।।"

ध्रुवा के साथ पुष्कर तथा मृदंग जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी 'भाण्डसमाश्रय ग्रह' के अन्तर्गत् भरत ने वाद्य वादन के सम्बन्ध में बताया है कि-

"अभाण्डमेकं गानस्यं परिवर्त प्रयोजयेत्।

यच्चतुर्थे सन्निपाते तस्य भाण्डग्रहो भवेत्।।"

भरत के कथन से स्पष्ट है कि ध्रुवागान का प्रथम आवर्तन भाण्डवद्य की संगति के तथा चौथे 'सन्निपात' नामक ताल स्थान पर मृदंग अथवा पुष्कर का वादन किया जाता था। भरकालीन नाट्य में ध्रुवागीतों का विशिष्ट स्थान था। गद्य तथा काव्य के द्वारा जिन भावों की अभिव्यक्ति रहती थी, उनके लिये गीतों का प्रयोग किया जाता था।

"यानि वाक्येस्तु न ब्रूयात्तानि गीतैरुदाहरेत्।

गतैरेव हि वाक्यार्थैरन्यै: प्रातेवलाश्रयै:।।"

ध्रुवागान में वर्ण तथा अलंकार का उतना ही प्रयोग किया जाता था जितना कि वे उद्देश्य पूर्ति मे बाधक न हों। भरत के अनुसार, ध्रुवाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

(1) *"एसो बसन्तमहुआसिआअणो*
सैलो त्व पुष्वपणवस्स छालिओ।।"

(2) *"विविहवणविहारी कमलवणसुअंधी।*
कुमुअवणविवोही सरदि सरई वाओ।।"

(3) *"हसंदलसमुदिए सा रसकुलमुहले।*
मत्रमहुअरगणे हिंडेइ महुअरिआ।।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र में ध्रुवा प्राकृत भाषा थी। ध्रुवाओं की एक अन्य विशेषता सांकेतिकता है। अर्थात् जिन घटनाओं या प्रसंगो की अभिव्यक्ति वर्णित थी वहाँ ध्रुवाओं का प्रयोग होता था अर्थात् गीत की सांकेतिक भाषा प्रयोग होती थी। यह संकेत मुख्यत: सादृश्य गुण पर आधारित होता था।

जाति गायन :–

जाति गायन का समय 'नर्मदेश्वर चतुर्वेदी' जी के अनुसार, पहली ई0 से 800 ई0 तक माना जा सकता है। रामायण (400ईसा पू0) में भी जाति उल्लेख मिलता है और 13वीं शताब्दी के ' 'गीत रत्नाकर'' नामक ग्रन्थ में भी जाति का वर्णन किया गया है। जाति गायन के सम्बन्ध में प्रथम प्रमाण निम्नवत् मिलता है-

तारन्यास के अतिरिक्त सप्त स्वर स्वरादिकों के स्वर पर ही जाति गान का सारा अस्तित्व निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण भरतादिकों के मत में निम्नलिखित है-

"वर्णाधिलंकृता गानक्रिया पदलुयान्विता।

गीतिरित्युच्यते सा च बुधैरुक्ताचतुर्विधा।।

मागधी प्रथमागेया: द्वितीयाचार्धमागधी

सम्भाविता च पृथुलेप्येतासां लक्ष्मचक्ष्महे।।"

जातिगायन के सम्बन्ध में विद्वानों के मत इस प्रकार है-

(1) जातियाँ नाट्यशास्त्र में वर्णित ध्रुवा गीतों की स्वरलिपि या संगीतिक अंग थी। इन विद्वानों के विचार से ध्रुवा, गीत, साहित्य व संगीत की मिश्रित बन्दिशें थीं, जो नाटक के दो भागों के बीच के समय में गाई जाती थीं। अथवा साधारण जनता में भगवद् आराधना के लिये इसका प्रयोग होता था। इस प्रकार जातियाँ संगीत की सुन्दर व रीतियुक्त कुछ आकृतियाँ थीं जिन्हें राग का अग्रगामी या प्रस्तावना स्वरूप कहा जा सकता है।

(2) जाति गायन का प्रयोग नाटक पथदर्शन में होता था और वह नाटक से ही सम्बन्धित होता था। इसीलिये इसे नाट्य-गीति भी कहा गया है।

(3) 'नारदीय शिक्षा' में जिन पाँच श्रुतियों तीव्रा, आयता, मृदु, मध्या व करुणा का वर्णन मिलता है व जो आगे चलकर 22 श्रुतियों में परिणित हो गई, वही पाँच श्रुतियाँ जाति या जनक कहलाईं और शेष श्रुतियाँ जन्य या व्यक्ति कहलाईं। जाति को 'शिव' व जन्य को 'शक्ति' कहा गया है। नारद के अनुसार-

"दीप्तायता करुणानां मृदुमध्यमयोस्तया।

श्रुतीनां योऽविशेषज्ञों न स आचार्य उच्यते।।"

भरत के काल में जाति तथा जातिराग दोनों परम्पराओं का प्रचलन था। भरत ने जातियों का विवेचन गान्धर्व के स्वर तथा पद दोनों के अन्तर्गत् किया है-

"स्वराश्र श्रुतयो ग्रामों मूर्च्छना: स्थानसंयुक्ता।
स्थानं साधारणे चैब जातयोऽष्टादशैव चै।।
छन्दो वृतानि जात्यश्र नित्यं पदगतात्मका:
गान्धर्वसंग्रहौ ह्यौषा विस्तारं व निबोधत।।"

दीप्ता— जिसमें चमक हो, जो देदीप्यमान है। इसके अन्तर्गत् बाद में उत्पन्न हुई रौद्री, वर्जिका, तीव्रा, उग्रा आदि हैं।

आयता— जिसमें फैलाव व विस्तार का क्षेत्र अधिक हो। इसके अन्तर्गत् क्रोधा, प्रसारिकी, संदीपनी, रोहिणी और कुमुदवती आती है।

मृदु— जिसमें शान्ति और कोमलता हो। इसके समान विशेषताओं वाली रतिका, प्रीति, क्षिति और मन्दा इसके अन्तर्गत् आती है।

मध्या— जिसमें समान गति से चलने की क्षमता हो वह मध्या है। इसके अर्न्तगत् रक्ता, रम्या, रंजनी, मार्जनी, क्षोभिणी आती है।

करुणा— करुणा वह है जिसमें दयालुता व कृपालुता और सहानुभूति की भावना हो। इसके अन्तर्गत् दयावती, मदन्ती और आलापनी है।

कहा जाता है कि समाज के स्तुति गान से ही जाति गान की उत्पत्ति हुई। प्राचीन काल में लोग अपने-अपने इष्ट देवताओं की पूजा या आराधना करने के लिये विभिन्न प्रकार से गाते थे।

तत्कालीन समाज के इन्हीं स्तुति गीतों से आगे चलकर अठारह जातियों का निर्माण हुआ।

भरत ने भी अष्टादश जातियों का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया है। जिन्हें षड्ज तथा मध्यम ग्राम में विभाजित किया है। ग्रामगत वर्गीकरण की सारणी निम्नवत है-

षड्जग्राम	मध्यम ग्राम
(1) षाड्जी	(1) गान्धारी
(2) आर्षभी	(2) मध्यमा
(3) धैवती	(3) पंचमी
(4) नैषादी	(4) रक्तगान्धारी
(5) षड्जकैशिकी	(5) गान्धारोदीच्यता
(6) षड्जोदीच्यवा	(6) गान्धारपंचमी
(7) षड्जमध्या	(7) मध्यमोदीच्यवा
	(8) आन्ध्री
	(9) नन्दयन्ती
	(10) कार्मारवी
	(11) कैशिकी

इस प्रकार 18 जातियाँ निष्पन्न होती हैं जो शुद्ध और दो वर्गों में विभक्त हैं, जिनमें सात शुद्ध व ग्यारह विकृत हैं। भरत ने जातियों को उनकी स्वरों की संख्या के क्रमानुसार औडव-षाडव और सम्पूर्ण जातियों में विभक्त किया है।

कहा जाता है कि दूसरी शताब्दी में रागों को ही जाति के नाम से जाना जाता था। 'संगीत रत्नाकर' में रागालाप के जो लक्षण

दिये गयें हैं वही लक्षण भरत ने जातियों के लिये बताये हैं ये दस हैं जो निम्नलिखित हैं-

"ग्रहांशौ तारमन्द्रा च न्यासोऽपन्यास एव च।

अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडुविते तथा।।"[1]

इसी से यह अनुमान लगा सकते हैं कि जातियों में से ही राग का स्वरूप उद्‌भूत हुआ। यह अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। 18 जातियों के दस लक्षणों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है-

ग्रह स्वर- ग्रह स्वर का लक्षण भरत ने इस प्रकार बताया है-

"ग्रहस्तु सर्वजातीनामंश एव हि कीर्तितः।

यत्प्रवृत्तं भवेद्गानं सोंऽशो ग्रहविकल्पितः।।"

अर्थात् समस्त जातियों में ग्रह स्वर अनिवार्यतः अंशस्वर ही होता है। जिस विशिष्ट स्वर से जाति का गान आरम्भ हो उस अंश को 'ग्रह' कहते हैं। एक से अधिक स्वरों का प्रयोग अंश स्वर के रूप में किया जाता है। शुद्ध जातियों में ग्रह और अश स्वर अनिवार्य रूप से एक ही होता है और जाति का न्यास भी उसी स्वर पर होता है। विकृत जातियों में अनेक अंश स्वर में से एक ग्रह स्वर होता है। अंश स्वर वादी होता है इसी के सम्वादी, अनुवादी आदि स्वरों से जाति का स्वरूप निर्मित होता है।

अंश स्वरः भरत के अनुसार, जाति का अंश स्वर वही है जिसमें रजंकता तथा रक्तिगुण की स्थिति हो तथा जिससे रंजकता प्रवृत्त हो। भरत की जातियों में अंश स्वर का अत्यधिक महत्व है अंश स्वर के निम्न लक्षण हैं-

---

1 भरत कृत 'नाट्यशास्त्र', पृ0 43

इसमें राग का निवास होता हो। इससे राग का आविर्भाव हो। वह तार तथा मन्द्र अवधि का नियामक हो। नानाविध स्वर समूहों में उसका सर्वाधिक प्रयोग हो तथा उसके सम्वादी व अनुवादी स्वर भी शेष स्वरों की अपेक्षा प्रबल हों। जो ग्रह, अपन्यास, विन्यास, सन्यास तथा न्यास के माध्यम से समस्त जाति को परिवेष्टित करता हो।

तार तथा मन्द- इसका प्रयोग विशिष्ट अवधि तक होता है। जाति का गान कण्ठ अंश अर्थात मध्य स्थान से गाये जाने वाले अंश स्वर से लेकर तार स्थान में चार अथवा पाँच स्वरों तक अथवा मतान्तर से सात स्वरों तक किया जाता है।

तार स्वर वह है जो एक ही सप्तक में होने पर मध्य स्वर से ऊँचा है, और मन्द्र वह है जो मध्य स्वर की अपेक्षा निम्न है। उदाहरणस्वरूप एक सप्तक में स, रे, ग ,म, प, में यदि 'ग' कण्ठ स्वर है तो 'म' व 'प' तार स्वर तथा 'रे' व 'स' मन्द्र स्वर होगा।

न्यास और अपन्यास- दत्तिल के अनुसार, 'न्यास' वह स्वर है जिस पर गीत का अवसान होता है तथा 'अपन्यास' वह स्वर है जो गीत के विदारी अर्थात् मध्य खण्ड के अन्त में प्रयुक्त होता है। अर्थात् न्यास सम्पूर्ण गीत के अन्त में व अपन्यास मध्य में आता है अट्ठारह जातियों में कुल इक्कीस न्यास स्व्र व छप्पन अपन्यास स्वर बतलाये गये हैं।

'सन्यास' वह न्यास स्वर है जो गीत के प्रथम खण्ड के अन्त में अंश स्वर के अविवादी के रूप में आता है।

विन्यास भी अंश का अविवादी रूप है किन्तु यह खण्डगत शब्दों अथवा पदों के अन्त में प्रयुक्त किया जाता है। 'विन्यास' की परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' में निम्नवत् है-

"अंशविवाद्येव विन्यास स तु कथ्यते। यो विदारीभागरूपपदप्रान्तेऽ वतिष्ठते।।"

अल्पत्व एंव बहुत्व- अल्पत्व दो प्रकार से सम्पादित होता है-

(1) लंघन

(2) अनभ्यास

औडव तथा षाडव जातियों में वर्ज्य स्वरों का लघंन होता है। अन्य स्थानों पर अनभ्यास अर्थात् स्वरों के सकृत उच्चारण से स्वरों का अल्पत्व रखा जाता है।

षाडव तथा औडव- षाडव छः स्वरों से युक्त तथा औडव पाँच स्वरों से युक्त होता है। भरत के अनुसार, अट्ठारह जातियों में से चार सम्पूर्ण, चौदह षाडव व औडव में दस जातियाँ हैं। यद्यपि जाति में कम से कम पाँच स्वर होना आवश्यक है तथापि देशी संगीत में यदाकदा चार स्वरों का प्रयोग होता है। मतंग के अनुसार, चतुः स्वरों का प्रयोग अधिकतर शबर, पुलिन्द, कांबोज, किरात आदि आदिवासी लोगों के संगीत में पाया जाता है।

आचार्य 'अभिनव गुप्त' के अनुसार, जाति से तात्पर्य ऐसे विशिष्ट स्वरसन्निवेश से है, जिसमें रत्तिगुण का प्राधान्य होता है। श्री 'अमरेशचन्द्र चौबे' के अनुसार, "यह जातियाँ प्रायः वृन्द लोकगीत थीं जिनकी स्वर रचना पर विशेष ध्यान दिया गया था।" इसके आरम्भ एवं समाप्ति के स्वर रचना की रूपरेखा ताल, न्यासस्वर आदि सब नियमबद्ध थे ताकि वृन्दगान में असम्बद्धता न हो।" यदि माना जाये कि जनसाधारण के गीतों से भगवद्भजनों आदि से ही जातियाँ निर्मित हुईं, तो यह स्वाभाविक है कि जातियाँ मजदूरों के गीत, भगवद्भजन के गीत, विवाहोत्सव के गीत, नाटक मे प्रयुक्त होने वाले गीत और अन्य सभी प्रकार के गीत सम्मिलित थे। अतः अवश्य ही वृन्दवादन भी सम्मिलित था। इन विभिन्न गीत

प्रकारों में विभिन्न रसों का समावेश था। 'डा० श्री ना० रातंजनकर ने जातियों की उत्पत्ति लोकगीतों से मानी है।

जाति से रस निष्पत्ति –

भरत ने जातियों का सम्बन्ध रसों से बताया है। भरत के अनुसार, जातियाँ अपने विशिष्ट अंशस्वर के कारण रसात्मकता की पोषक होती हैं। भरत के अनुसार–

"ध्रुवा विधाने कर्त्तव्या जातिर्गाने प्रयत्नतः।

रसं कार्यमवस्थां च ज्ञात्वा योज्याः प्रयोक्तृभिः।।"

अर्थात् जातिगान में उन्हीं ध्रुवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिये जो रस, कार्य तथा अवस्था के अनुकूल हो। इस स्थिति में ऐसी जातियों का चयन किया जाना चाहिये जिनका अंश स्वर अभीष्ट रस का पोषक हो। जातिगान के अन्तर्गत् सप्तस्वरों में से कुछ स्वर विशिष्ट रस के अनुकूल बताये गये हैं–

"मध्यपंचमभूयिष्ठं हास्यश्रृङ्गारयोर्भवेत्।

षड्जर्षभप्रायकृतं वीररौद्राद्भुतेषु च।।

गान्धारसप्तमप्रायं करूणो गानभिष्यते।

तथा धैवतभूयिष्ठ बीभत्से समयानके।।"

अर्थात् मध्यम तथा पंचम स्वर का प्राबल्य हास्य तथा श्रृंगार का उत्पादक होता है, षड्ज तथा ऋषभ वीर रौद्र तथा अद्भुत रस के पोषक होते हैं। गान्धार तथा निषाद करुण रस का परिपोष करते हैं तथा धैवत् का बहुल प्रयोग वीभत्स तथा भयानक रस को सिद्ध करते हैं।

षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम के विभिन्न जातियों की रस कल्पना भरत के अनुसार, निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट है–

जाति	रस
(1) षड्जोदीच्यवती	श्रृंगार - हास्य
(2) षड्जमध्या	श्रृंगार - हास्य
(3) आर्षभी	वीर, अद्भुत, रौद्र
(4) षाडजी	वीर, अद्भुत, शैद्र
(5) षड्जकैशिकी	करुण
(6) धैवती	वीभत्स, भयानक, करुण
(7) गान्धारी	करुण
(8) रक्तगान्धारी	करुण
(9) मध्यमा	श्रृंगार, हास्य
(10) पंचमी	श्रृंगार, हास्य
(11) नन्दयन्ती	श्रृंगार, हास्य
(12) मध्यमोदीच्यवा	वीर, रौद्र, श्रृंगार, हास्य
(13) गान्धारोदीच्यवा	वीर, रौद्र, रौद्रवीर, अद्भुत
(14) कार्मारवी	अद्भुत, वीर, रौद्र, अद्भुत
(15) आन्ध्री	अद्भुत, वीर, रौद्र, अद्भुत
(16) कैशिकी	वीभत्स, भयानक
(17) गान्धारपंचमी	वीभत्स, भयानक, श्रृंगार, हास्य
(18) नैषादी	करुण

भरत के अनुसार, रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा व्यभिचारी भावों के समुचित संयोग से होती है।

मध्यकालीन संगीत ग्रन्थकारों के अनुसार, संगीत के सातों स्वरों का विशिष्ट रस से नियत साहचर्य का सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जातियों के गायन में रसों का समावेश तथा एक अच्छी शब्द रचना तैयार करके वर्णों व धातुओं आदि का प्रयोग भी पूर्णतया किया जाता होगा और उसे एक धुन में बाँधने के लिये ताल, लय तथा उन दस लक्षणों का प्रयोग भलीभाँति किया जाता होगा।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र के अनुसार, सात आधार जातियाँ अट्ठारह जातियों में परिणित व विकसित हो गईं। 18 जातियों से ग्राम राग उत्पन्न हुये जिससे अनेकों उपराग निकले। उपरागों से भाषाराग और फिर विभाषा राग, विभाषाराग से अन्तरभाषा राग धीरे-धीरे क्रमिक विकास के रूप में सामने आये।

जातियों के (700-800 ई0) पश्चात् लगभग दो तीन सौ वर्ष तक संगीत की कोई नई शैली सामने नहीं आई। जो संगीत प्रचलित थी उसी में थोड़ा कभी विकास होता कभी पतन होता दिखाई देता। उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था, उनमें आपस में द्वेष की भावना थी। राजपूत युद्ध प्रिय होने के साथ-साथ संगीत प्रेमी तो थे परन्तु उनके समय में संगीत का केवल बाह्य विकास अधिक हुआ। कलाकारों की भी संकीर्ण मनोवृत्ति होने से संगीत की सार्वभौमिकता व उसका आत्मिक सौन्दर्य समाप्त हो गया।

प्रबन्ध :—

'प्रबन्ध' भारतीय संगीत की प्रचीन गायन शैली का एक रूप है। वैसे तो समय-समय पर गीत शैलियों के अनेक प्रकार प्रचलित रहे। जैसे- शुद्ध, गाथा, पाणिका, नायक तत्पश्चात् भरत काल में ध्रुवा गीतों का अस्तित्व था। परन्तु मतंग के काल 8वीं ई0 से

'प्रबन्ध' नामक गीत शैली पूर्णतया अस्तित्व में आ गई थी। बृहद्देशी में प्रबन्ध का प्रयोग मिलता है। 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित ध्रुव प्रत्यक्ष रूप से नाट्य कला से सम्बंधित थे, और जब संगीत का नृत्यकला एवं नाटक से स्वतन्त्र रूप से विकास होने लगा तब ध्रुव के स्थान पर प्रबन्ध शुरू हुये। बाद के सभी लेखकों ने मार्ग गीत व प्रबन्ध पर ही प्रकाश डाला। शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' में भी प्रबन्ध का प्रयोग है। इन्हीं प्राचीन प्रबन्धों के स्वरूपों से बाद की प्रत्येक शैली के निर्माण में योग मिला।

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग राजपूत काल में ही संगीत की दो धारायें दृष्टिगोचर होती हैं- उत्तर भारतीय संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत। इसी काल में जयदेव द्वारा लिखित पुस्तक 'गीतगोविन्द' मिलती है जो प्रबन्ध शैली में है, जिसमें उन्होंने लिखा है-

"वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा पद्मावती चरण चारणचक्रवर्ती।

श्री वासुदेव रतिकेलिकथासमेंतमेंतंकरोतिजयदेवकविः प्रबन्धम्।।"[1]

अर्थात् जिनका चित्त पवित्र सरस्वती जी के चरित्र से ओत्प्रोत् है जो राधिका के चरण सेवियों में श्रेष्ठ है, वे जयदेव कवि यह प्रबन्ध रचते हैं जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला सम्बन्धी रसपूर्ण कथायें हैं। 'गीतगोविन्द' के गीतों को पुस्तक में अष्टपदी कहा गया है यह प्रबन्ध संस्कृत में है।

प्र+बन्ध+धञ से प्रबन्ध शब्द बनता है जिसका स्पष्ट अर्थ है बद्ध या बन्ध अर्थात् संगीत में प्रबन्ध का अर्थ है- धातु और अंगों की सीमा में बँधकर जो रूप बनता है वह 'प्रबन्ध' कहलाता है। 'प्रबंध्यते इति प्रबन्ध' अर्थात् किसी भी बंधी हुई नियमबद्ध

---

1 जयदेव कृत 'गीत गोविन्द', पृ0 2

रचना प्रबन्ध है। आधुनिक काल में बंदिश शब्द का प्रबन्ध के स्थान पर प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ भी बाँधने से है। ठाकुर जयदेव सिंह के मत से-

"Prabandh was a vocal composition form, a systematic and organised giti (song) with Sanskrit texts. The word 'Prabandh' literally means anything well-knit or well fitted.

Pra+Bandh+Dhatra = Prabandh In music Prabandh means a contribution of Dhatu and Ang. It is a blanket term for composition It means a song in which words or Padas are set in a definite structure and pattern preferably with a devotional context"

कोई भी रचना यदि धातु और अंगो से बद्ध है तो प्रबन्ध कहलाती है। प्रबन्ध ही बाद में गीत कहलाये जो प्रबन्ध के ही विकसित व सरल रूप थे। कोई भी रचना पहले प्रबन्ध फिर गीत होती है। अनेक ग्रन्थों में प्रबन्ध शब्द का प्रयोग हुआ है जैसे- नामदेव ने भरतभाष्य में प्रबन्धों को 'देशी-गीत का ध्याय' कहा है, 'मानसोल्लास' में प्रबन्ध संज्ञा का प्रयोग हुआ है। संगीत नारायण, संगीतराज, संगीत दर्पण, संगीत पारिजात, नाट्य चूड़ामणि, अनूप संगीत आदि अनेक ग्रन्थों में प्रबन्ध संज्ञा का प्रयोग हुआ है और इस प्रबन्ध संज्ञा को धातु और अंगो से निबद्ध माना है। प्रबन्ध को वस्तु या रूपक के नाम से जाना जाता है।

धीरे-धीरे वाद के ग्रन्थकारों ने प्रबन्ध की अपेक्षा 'गीत' को अधिक महत्व दिया। पद का महत्व घटकर राग विस्तार पर अधिक बल दिया जाने लगा। संगीत पारिजात के समय तक प्रबन्धों का प्रयोग काफी कम हो गया। उत्तर भारत में धीरे-धीरे ध्रुवपद

गायन शैली का प्रयोग अधिक होने लगा। धीरे-धीरे प्रबन्ध गायन लुप्त होने लगा। प्रबन्ध का शास्त्रीय पक्ष तो अवश्य लिपिबद्ध किया गया किन्तु स्वरलिपि नही लिखी गई जिससे भविष्य की पीढ़ी के काम आ सके। हम केवल इतना जान सकते हैं कि अमुक प्रबन्ध अमुक राग में गाया जाता था।

प्रबन्ध का विस्तारपूर्वक व सुसम्बद्ध ढंग से निरूपण सर्वप्रथम हमें शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में ही प्राप्त होता है। ंगीत रत्नाकर' का तीसरा अध्याय 'प्रबन्धाध्याय' नाम से है जिसमें प्रबन्ध की ही चर्चा है। शारंगदेव ने गान के दो भेद बताये हैं-

"निबद्धनिबद्धं तद् द्वेधा निगदितं बुधै।।
बद्धं धातुभिरङ्गैश्च निबद्धभमिधीयते।
आलप्तिर्बन्धहीनत्वादनिबद्धभितीरिता।।
स चास्माभिः पुरा प्रोक्ता निबद्धं त्वधुनोच्यते।
संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तु रुपकम्।।"[1]

भावार्थ-निबद्ध और अनिबद्ध ये गान के दो भेद विद्वानों के द्वारा बताये गये हैं। धातु और अंगों से जो बंधा हुआ है वह निबद्ध कहलाता है। इसके विपरीत धातु और अंगो का बंधन न होने के कारण आलप्ति को अनिबद्ध कहा गया है, निबद्ध गान को ही प्रबन्ध कहा है। निबद्ध गान की ही तीन संज्ञायें हैं- प्रबन्ध, वस्तु, रुपक। प्रबन्ध के चार धातु व छः अंग हैं।

प्रबन्ध के चार धातु –

उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव व आभोग है। अन्तरा नामक एक धातु और है जो केवल सालगसूड़ों में होती है, अन्य प्रबन्धो में नहीं।

---

1 प0 शारंग देव - 'संगीत रत्नाकर', अद्‌यार संस्करण, दूसरा भाग, चतुर्थ अध्याय, पृ0 188

उद्ग्राह से गीत का प्रारम्भ होता था। मेलापक, प्रथम, धातु उद्रग्राह व तृतीय धातु ध्रुव को मिलाने वाला होता था। ध्रुव में लोच नहीं होता। इसी नित्यता के कारण इसकी संज्ञा ध्रुव है। प्रबन्ध का अन्तिम धातु आभोग है जिसका अभिप्राय परिपूर्णता है। प्रत्येक प्रबन्ध में उद्ग्राह और ध्रुव सदैव उपस्थित रहते थे। धातुओं को अंश, कली, तुक या भाग भी कहा जाता है।

प्रबन्ध के छः अंग –

पं0 शारंगदेव ने प्रबन्ध के छः अंग बताये हैं जो इस प्रकार हैं- स्वर, विरूद, पद, तेनक, पाट व ताल। पं0 शारंगदेवे के अनुसार-

"प्रबन्धावयवो धातुः स चतुर्धा निरूपितः।

उदग्रहः प्रथमस्तत्र ततो मेलामक ध्रुवौ।।6।।

आभोगश्चेति तेषां च क्रमाल्लक्षमाभिदध्महे।

उद्ग्राह प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः।।8।।

द्रवत्वच्च स्वः पश्चादाभोगस्त्वन्तिमो मतः।

ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः।।9।।"[1]

शारंगदेव के अनुसार, प्रबन्ध के छः अंगो का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

(1) **स्वर–** स्वर प्रत्येक गेय रचना का आवश्यक अंग है। इसके बिना कोई रचना गाई नहीं जा सकती। इसकी ऊँचाई-निचाई के कारण ही किसी रचना में गेय रूप आता है। इससे सांगीतिक स्वर स, रे, ग़ आदि स्वराक्षरों का भान होता है।

---

[1] प0 शारगदेव कृत- संगीतरत्नाकर, आदयार संस्करण, दूसरा भाग, प्रबन्ध-धाध्याय पृ0 188

(2) विरुद– जिसकी आराधना में या प्रशंसा में उस प्रबन्ध की रचना हुई है, उसके गुणसूचक नामों को ही विरुद कहते हैं।

(3) पद– यह गीत का साहित्य सम्बन्धी भाग होता है स्वर ताल आदि के अतिरिक्त जो गीत के बोल या शब्द होते हैं वही पद कहलाता है। यह प्रबन्ध के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अंग माना गया है।

(4) तेनक– 'तत्' पदार्थ के प्रकाशक पद को वाक्य या तेन कहा गया है। यह मंगलार्थ प्रकाशक पद होते हैं। तेन का अर्थ ही मेंगन करने वाला है। मंगल करने वाले शब्द जैसे हरिऊँ, हे जगदीश आदि।

(5) पाट– तालवाद्यों पर बजने वाले वर्णसमूह को पाट कहते हैं। प्राचीन प्रबन्धों जैसे त्रिवट आदि में तो रचना के अन्तर्गत् ही यह वर्णसमूह भी बोले जाते हैं।

(6) ताल– तबले या पखावज पर समान अन्तराल में जब आघात किया जाये अर्थात् मात्राओं द्वारा जब लय दिखई जाये तो वह 'ताल' है। ताल के अनुरूप ही गेय रचना बनाई जाती है। प्रबन्धों में अंगों की संख्या भी नियमानुसार कम ज्यादा की जा सकती थी। ये निमय पाँच जातियों से बद्ध थे।

इसके अतिरिक्त डॉ0 प्रेमलता शर्मा के अनुसार, नृपति कुमभकर्ण ने प्रबन्ध के पाँच धातुओं का वर्णन किया है। जो निम्नलिखित है:

"धातु पंचविधस्तत्र प्रबन्धावयवाभिधः।

उद्ग्राह आद्यभागः स्यात्तो मेलापक ध्रुवा।।6।।

अन्तराभोगसंज्ञौ च लक्ष्मैषां प्रागुदाहतम्।

यदन्तरप्रतिज्ञेयात् (द्) धातुः पंचविद्यो भवेत्।।8।।"[1]

कल्लिनाथ ने भी दो, तीन व चार धातुओं से युक्त प्रबन्धों का उल्लेख किया है-

"तेन द्विधातुषु प्रबन्धेषु मेलापकोभोगयोः त्रिधातुषु प्रबन्धेषु, सर्वत्र मेलापकस्येव परित्यागः ध्रुवस्य न क्वचिदपि परित्याग इत्यर्थः।"[2]

प्रबन्ध के उपरोक्त अंगो का उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत दोनों ही में समान रूप से प्रयोग होता है, स्वर ताल और पाट का प्रयोग गीत में आज भी किया जाता है।

प्रबन्ध की पाँच जातियाँ हैं जिन्हें भेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी और तारावती कहा गया है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार, प्रबन्ध जातियों के नाम भिन्न हैं जैसे- श्रुति, नीति, कविता और चम्पू।

प्रबन्धों की पाँच–जातियाँ जो निम्नलिखित हैं –

(1) **मेदिनी-** मेदिनी जाति के अन्तर्गत् आने वाले प्रबन्धों में छः अंगों का होना आवश्यक था।

(2) **आनन्दिनी-** ये पाँच अंगो से युक्त होती थी।

(3) **दीपनी-** चार अंगो से युक्त दीपनी होती थी।

(4) **भावनी-** भावनी चार अंगो से युक्त होती थी।

(5) **तारावली-** दो अंगो से युक्त तारावली थी।

कुछ लोगों के मतानुसार, छः जाति का नाम श्रुति है क्योंकि श्रुति अर्थात् वेद के भी छः अंग हैं।

---

[1] डॉ0 प्रेमलता शर्मा- "संगीतराज" (नृपतिकुम्भकर्णप्रणीतः) प्रथम खण्ड गीतरत्नकाप

[2] कल्लिनाथ- कलानिधि टीका, पृ0 189

धातु, अंग तथा जातियों के विभाजन के अतिरिक्त प्रबन्ध के दो अन्य प्रकार हैं-

(1) अनिर्युक्त

(2) निर्युक्त।

अनिर्युक्त- ऐसा प्रबन्ध गीत जो छन्द व ताल आदि में बंधा हुआ न हो, वह अनिर्युक्त कहलाता है।

निर्युक्त- छन्द व ताल आदि से बंधा हुआ प्रबन्ध निर्युक्त कहलाता है। इन दो प्रबन्धों के अतिरिक्त विद्वानों के अनुसार, प्रबन्ध का एक अन्य भेद भी है, जिसे उभयात्मक प्रबन्ध कहा गया है। इन प्रबन्धों में कभी अंग और छन्द का समावेश रहता है।

प्रबन्ध विशेषतया तीन प्रकार की शाखाओं में विभाजित थे –

(1) सूड- जिसके दो भेद थे-(1)शुद्ध सूड (2)सालग सूड

(2) आली अथवा आलीसंश्रय

(3) विप्रकीर्ण।

(1) **सूड**-यह एक देशज शब्द है। गतिविशेष के समूह का वाचक है। शुद्ध सूड आठ प्रकार के थे: 1-एला, 2-करण, 3-ढेकी, 4-वर्तनी, 5-झोम्बड, 6-लम्भ, 7-रास, 8-एकताली। सालग सूड सात प्रकार के थे: 1-ध्रुव 2-मण्ठ, 3-प्रतिमण्ठ, 4-निस्सारुक, 5-अड्ड, 6-रास, 7-एकताली।

इनमें से एला नामक प्रबन्ध को सर्वोपरि, उत्तम, महाकठिन प्रबन्ध माना गया है। इस प्रबन्ध में गीत के सब गुण आ गये हैं, जैसे-समान, गधुर, कान्त, दीप्त, समहित, सुकुमार, प्रसन्न और ओजस्वी एलाप्रबन्ध में कुल 16 पद और 3 पाद हैं। एला के चार

भेद बताये गये हैं: 1-गणेला, 2-मात्रेला, 3-वणेला, 4-देशैला। एला प्रबन्ध के भेद, प्रभेदों को मिलाकर कुल 356 प्रकार होते हैं। एला प्रबन्ध की महिमा ब्रह्मा के समान है, जो श्रोता और प्रयोत्ता दोनों को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि देने वाला है। अपने स्वरूप के कारण 'एला प्रबन्ध' अत्यन्त दुष्कर और अत्यन्त कष्टसाध्य बन गया है।

(2) आली अथवा आलीसंश्रय प्रबन्ध चौबीस प्रकार के थे-

(1) वर्ण (2) वर्णस्वर (3) गद्य (4) कैवाड़ (5) अंकचारिणी (6) कन्द (7) तुरगलीला (8) गजलीला (9) द्वीपदी (10) चक्रवाल (11) क्रोंचपद (12) स्वरार्थ (13) ध्वनिकुट्टिनी (14) आर्या (15) गाथा (16) द्विपथक (17) कलहंस (18) तोटक (19) घट (20) वृत्त (21) वृत्तका (22) रागकदम्बक (23) पंचतालेश्वर (24) तालार्णव।

(3) विप्रकीर्ण प्रबन्ध ये 36 प्रकार के थे-

(1) श्रीरंग (2) श्रीविलास (3) पंचभाङ्ग (4) पंचानन (5) तिलक (6) त्रिपदी (7) चतुष्पदी (8) षटपदी (9) वस्तु (10) विजय (11) त्रिपथ (12) चतुर्मुख (13) सिंहलील (14) हंसलील (15) दण्डक (16) झम्पट (17) कन्दुक (18) त्रिभाङ्ग. (19) हरविलास (20) सुदर्शन (21) स्वराङ्क. (22) श्रीवर्धन (23) हर्षवर्धन (24) वदन (25) चच्चरी (26) चर्या (27) षद्वड़ी (28) राहड़ी (29) वीरश्री (30) मंगलाचार (31) धवल (32) मंगल (33) ओवी (34) लोली (35) ढोल्लरी (36) दन्ती।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रबन्ध ऐसे थे जो उपरोक्त किसी भी भाग के नियमों के अनुकूल न होने से उनके अन्तर्गत् नहीं आ सकते हैं वो निम्नलिखित हैं- 1-वीरश्रृंगार, 2-चतुरंग, 3-शरभलीला, 4-सूर्यप्रकाश, 5-चन्द्रप्रकाश, 6-रणरंग, 7-नंदन, 8-नवरत्न।

प्रबन्ध का एक उदाहरण 'गीत गोविन्द' ग्रन्थ के रूप में -

प्रबन्ध के इतिहास में 'गीत गोविन्द' का विशेष महत्व है। कुम्भा ने प्रबन्धों में गीत गोविन्द के महत्व के लिये उसका अलग वर्ग बनाकर उसकी गेय परम्परा को लक्षण बद्ध किया है।

12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ जयदेव ने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ प्रबन्ध गायन शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। 'गीतगोविन्द' में राधाकृष्ण विषयक प्रबन्ध गीत है, जिन्हें आज भी अनेक गायक ताल स्वरों में बाँध कर गाते हैं। अनेक वैष्णव मन्दिरों में आज भी उनके गीत, राग एवं ताल के साथ गाते हैं। दक्षिण भारत के कुछ मन्दिरों में तो नृत्य के साथ इनकी अष्टपदियाँ अभिनीत की जाती है। रंगमंच पर आज भी ताल व लय के साथ इनका भाव प्रदर्शन होता है।

गीत गोविन्द में 12 सर्ग और 20 गीत हैं। हर गीत में 8-8 पद हैं। इसलिये इसे अष्टपदी भी कहा गया है। इसमें कृष्ण-राधा और सखियों की उक्तियाँ हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में कथा प्रवाह है। अत्यन्त कर्णप्रिय एवं ललित पदों का विन्यास और अनुप्रास अलंकार की छटा व नाद सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह ग्रन्थ श्रृंगार रस प्रधान है। इसके गीत गेय हैं व भाव रस लालित्य उच्चकोटि का है इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है-

"ललित लवंग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे।

मधुकर निकर करम्बित कोकिल कुंजित कुंज कुठीरे।

बिहरनि हरिरिहिं सरस बसन्तें।

नृत्यति युवतिजनेन सयं सखि विरहिजनस्य - दुरन्ते।।"

यदि इन श्लोकों की स्वरलिपियाँ होतीं तो आज उनके मौलिक स्वरूप का पता लगाया जा सकता था।

यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होने के कारण साधारण जनता में इन गीतों का प्रचार न हो सका। फिर भी जयेदेव की पदावलियाँ हृदय को मुग्ध कर देने वाली हैं। इसी विशेषता पर मुग्ध होकर Edwin Arnold ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'The Indian song of songs' किया जिसका अर्थ हैं गीतों का गीत। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त लैटिन, जर्मन, अंग्रेजी भाषाओं में भी इस ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है। श्री रानाडे ने इसके ग्रन्थ के बारे में कहा है-

"Gita Govind is a series of songs descriptive of the amours of krishna and belongs of the number of India's lyrical songsters connected with the Bhakti revival The Gita Govind is a charming lyrical composition, and has been translated under the name of "The Indian song of songs". In these songs Radha pours forth her yearning, her sorrow and her joy and Krishna assure her of his love"

गीत गोविन्द के पद राजस्थान में भी अवश्य गाये जाते थे। कृष्ण भक्त मीरा ने भी इसी ग्रन्थ की पदावलियों को अपना आदर्श बनाया था। कुम्भा ने इस पर टीका भी लिखी है। 15वीं शताब्दी में पंजाब में जयदेव कृत गीत गोविन्द का अत्यधिक प्रचलन रहा। इनके गीतों को पंजाबियों ने गा-गा कर प्रचार-प्रसार किया व नृत्य भी किया।

परवर्ती प्रबन्धो पर दो रूपों में 'गीत गोविन्द' का प्रभाव पड़ा: 1-ध्रुवपद ों और वैष्णव पद साहित्य में पद शैली के रूप में। 2-गीत गोविन्द के आधार पर निर्मित "गीत गिरीश", "संगीत गंगाधरम्", "कृष्ण लीला तंरगिणी" आदि प्रबन्ध रचनाओं के रूप में।

प्रबन्ध के विशेष तत्व –

प्रबन्ध में जिन विशेष तत्वों का समावेश रहता है, वे निम्नलिखित हैं-

(1) रसों से सम्बद्ध,

(2) आध्यात्म से सम्बद्ध,

(3) विशेष धातुओं से सम्बद्ध,

(4) भाषाओं से सम्बद्ध,

(5) छन्दों पर आधारित,

(6) अक्षरों की आवृत्ति से युक्त,

(7) नाट्य के तत्वों से युक्त,

(8) शैली की विशेषता से युक्त।

दक्षिण में तो 17 वीं शताब्दी तक प्रबन्धों का प्रचलन था। किन्तु बाद में उनकी जगह भजन व कीर्तन ने ले ली।

प्राचीन काल के उपरांत मध्ययुग के ग्रन्थों में प्रबन्ध के स्वरूप में परिवर्तन आया और नये प्रबन्धों की रचना हुई। 'संगीत पारिजात', 'संगीत दामोदर', 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका', 'संगीत सूर्योदय' आदि ग्रन्थों में प्रबन्धों के प्राचीन लक्षणों के साथ कुछ नवीनता भी दिखाई देती है। परन्तु विशेष परिवर्तन नहीं दिखता। प्राचीन प्रबन्धों की भाषा व सामान्य संचार की भाषा दोनों ही संस्कृत थी। किन्तु मध्यकाल में जब देश की बागडोर मुगलों के हाथ में गई तो उनके दरबारों में संस्कृत के लिये स्थान नहीं था। अत: अन्य भाषाओं में बंदिशें बनने लगीं इस प्रकार 'रूपकालप्ति' का स्थान फ़ारसी शब्द 'ख्याल' ने ले लिया।

इस प्रकार उत्तरी संगीत में भी प्रचलित ध्रुवपद के स्थायी, अन्तरे, संचारी और आभोग प्रबन्ध के अवयवों के साथ की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप ध्रुवपद के स्थायी अन्तरों को प्रबन्ध के ध्रुव और अन्तरे के समान तथा ध्रुवपद के संचारी और आभोग को प्रबन्ध के दो आभोगों के समान माना जा सकता है। अत: बंदिशों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनका प्राचीन प्रबन्धों से अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध है। आधुनिक गीतों के स्थायी व अन्तरे का प्रबन्ध के दो भागों के साथ सम्बन्ध है। स्थायी को ध्रुव के समान माना जा सकता है क्योंकि प्रत्येक बंदिश में स्थायी हमेशा कायम रहती है। अन्तरे को धातु के समान माना जा सकता है।

अब मैं उदाहरण के लिये प्रबन्ध की स्वरलिपि प्रस्तुत कर रही हूँ-

प्रबन्ध

राग मालव

हिमरुचिधाम धवलविधुलेखातिलकित मौलिमधीर गजमुखषमुखबाल क्रीड़ा।

स स नि ग	स ग स ग	म प नि ग	स ग ग र
हि म 0 0	रु चि 0 0	धा 0 म 0	ध व ल 0
अ	नि	वि	प्र
स ग म प	सा नि प म	म ग ग स	रे स ग म
वि धु 0 0	ले 0 0 0	खा 0 0 0	ति ल कि त
अ	नि	वि	प्र

प ग ग म	ग म ग स	ग स रे स	स ग ग रे
मौ 0 0 0	लि म धी 0	र 0 0 0	ग ज मु ख
अ	नि	वि	प्र
म ग म ग	सा नि प सा	स ग ग म	स रे स स
ष 0 ष्मु ख	बा 0 0 0 नि	ल 0 0 0	क्री 0 ड़ा 0
अ	नि	वि	प्र

....

पंचम अध्याय

ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव, विकास व परम्परा

(स) ध्रुवपद की परिभाषा, ध्रुवपद की बानियाँ, ध्रुवपद के अंग, ध्रुवपद के विषय व स्रोत

(रे) भक्तिकालीन व रीतिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन

(ग) ब्रजभाषा के ध्रुवपदकार व ध्रुवपदकारों के आश्रयदाता

(म) कुछ ध्रुवपद स्वरलिपि सहित

ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव, विकास व परम्परा

आरम्भ में देवालयों में स्तुतियों तथा कीर्तनों का गायन संस्कृत भाषा में होता था। देशी, प्राकृत भाषाओं के प्रचार के साथ-साथ भक्ति गायन उन भाषाओं में भी होने लगा और इन भक्तिगीतों को 'ध्रुवपद' कहा गया। यह ध्रुवपद गीत सुनियमित, सुसम्बद्ध, स्वरावलियों तथा लयकारी में होते थे, जैसा कि गीत के 'ध्रुवपद' नामकरण से ही स्पष्ट है। इस गीत के पद ध्रुव, अचल या निश्चित थे। गायन में उनकी स्वररचना तथा लय आदि में परिवर्तन असम्भव था। इन ध्रुवपदों द्वारा ईश्वरोपासना की जाती थी, जबकि ये ध्रुवपद कलात्मक थे। इन ध्रुवपदों की कलात्मकता की वृद्धि राजदरबारों में हुई। जहाँ लौकिक विषयों पर इनकी रचना हुई। ठाकुर जयदेव के मतानुसार-

"Dhrupada is an evolved form of Prabandh style. In it, the musical idea stretches its wings in the sthayi soars up in the antara further goes a capering in the sanchari and finally, with a broad sweep of notes in the abhoga, furls down its wings "

डॉ0 सुमति मुटाटकर के अनुसार, प्राचीन भारत में संगीत का मन्दिरों से बहुत अधिक सम्बन्ध था। जनसाधारण ने ध्रुवपदों की धार्मिकता व भावमय रूप के कारण बहुत सराहा व अपनाया। प्रबन्ध जो संस्कृत में थे, वो केवल कुछ ही लोगों की समझ मे आते थे परन्तु देशी भाषाओं की बन्दिशें होने से संगीत की धारा जन-साधारण में पहुँच गई। संगीत को व्यक्त करने का माध्यम दो भाषायें बनीं, उत्तर में 'ब्रजभाषा' और दक्षिण में 'तेलगु भाषा।' उत्तर में प्रबन्ध ने ही ध्रुवपद को जन्म दिया। अपनी देशी भाषा के

कारण ध्रुवपद ने अधिक से अधिक जनसाधारण के बीच में अपना स्थाान बनाया। आरम्भ में ध्रुवपद संस्कृत के साथ अन्य भाषाओं में भी रचे जाते थे और उनमें साहित्य को बहुत महत्व दिया जाता था।[1]

1486ई0 से 1516ई0 तक का समय ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को माना जाता है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर राजा मानसिंह को ही ध्रुवपद शैली का जन्मदाता माना जाता है। जबकि कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इसके पहले ही ध्रुवपद का आविर्भाव हो चुका था मानसिंह तोमर ने तो केवल इस शैली को नया रूप दिया। इस प्रकार ध्रुवपद की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत निम्नलिखित हैं-

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार,ध्रुवपद के आविष्कारक राजा मानसिंह नहीं थे बल्कि उनके पहले ध्रुवपद का आविष्कार 14वीं शताब्दी में हो चुका था। ध्रुवपद शैली प्रबन्ध से ही आविष्कृत थी, क्योंकि ध्रुव का अर्थ है, स्थिर, व्यवस्थित तथा निश्चित। ध्रुवपद का भी अर्थ है, वो गीत जिसमें पद या शब्द भलीभाँति एक विशेष रूप में स्थित हो। प्रबन्ध 13वीं शताब्दी तक बहुत प्रचलित रहा। 14वीं शताब्दी में ध्रुवपद आरम्भ हो गया और 15वीं से 18वीं शताब्दी तक ये बहुत प्रचार में रहा। धीरे-धीरे प्राचीन प्रबन्ध लगभग समाप्त हो गया और केवल वैष्णव मन्दिरों तक उसका प्रचार रह गया।

श्री चैतन्य देसाई के मतानुसार, भरत कृत "नाट्यशास्त्र" में बताये गये ध्रुवा गीत ही मध्य युग में 'ध्रुवपद' तथा आधुनिक युग

---

1. डॉ0 सुमति मुटाटकर - पृ0 61

में 'ध्रुपद' नाम से प्रचलित हुये।[1] डॉ0 एस.एन. रातंजनकर भी ध्रुवपद को मन्दिरों और देवालयों के गीतों से ही उद्घृत मानते हैं। उनके अनुसार,बहुत से देवस्थानों, में सूर्योदय, संध्या समय व रात्रि के समय पूजा अर्चना गायन, वादन व नृत्य के माध्यम से होती थी। आरम्भ में ये गीतों की भाषा संस्कृत थी किन्तु बाद में देशी भाषा में भी गीत रचे गये। पं0 रातंजनकर जी के अनुसार,इन्हीं गीतों को राजगायकों ने कलात्मक शैली में राजसभा में गाना शुरू किया। देवालयों में गाये ध्रुवपदों का उद्देश्य 'देवता की भक्तियुक्त आराधना' था जबकि राजसभाओं में लौकिक ध्रुवपद गायन का उद्देश्य गायन पटुता था।[2]

स्वामी प्रज्ञनानन्द के अनुसार, प्रद्रहवीं शताब्दी अर्थात् राजा मानसिंह के समय में ध्रुवपद का आविष्कार नहीं हुआ वरन् उसे एक नया रूप दिया गया था जिसमें हिन्दू व मुस्लिम संगीतज्ञों ने राजा मानसिंह का बहुत साथ दिया।[3] श्री श्रीपद बन्दोपाध्याय के अनुसार, ध्रुवपद का उद्गम प्राचीन गायन शैलियों जैसे- छन्द, प्रबन्ध, जाति गायन तथा रागजाति से हुआ है क्योंकि उसमें राग गायन की सम्पूर्ण आवश्यक लक्षण या विशेषताएँ विद्यमान थीं।[4]

इसके अतिरिक्त भावभट्ट 17वीं शताब्दी में ध्रुवपद के भागों को उद्ग्राह, ध्रुव, अन्तरा, आभोग कहते हैं, जो कि प्रबन्ध के भागों के नाम थे जिन्हें 'धातु' कहते थे। अत: भावभट्ट के अनुसार,यह प्रमाणित है कि ध्रुवपद का प्रादुर्भाव प्रबन्ध से हुआ।

डॉ0 सुमति मुटाटकर ने कहा कि ध्रुवपद राग ताल आदि शास्त्रीय संगीत मन्दिरों तथा देवालयों में ही विकसित हुआ परन्तु

---

1 . Chaitanya Desai- Indian Music, Ancient Mediaeval and Modern Journal of Indian Musicological Society, Vol IV No 3, July-September 1973 Page-37

2 डॉ0 एस.एन रातंजनकर-'ध्रुवपद गायकी की समस्याएं' लक्ष्य संगीत, जून 1956, पृ0 17

3 Swami Prajnananda- A Historical Study of Indian Music P 164

4 Shripadbandopadhyaya- The Evolution of songs and Lives of great Musicians P 19

मुसलमानों के शासन के समय हमारे गायकों को राजदरबारों में स्थान मिला। फलस्वरूप संगीत में आध्यात्मिकता का ह्रास हुआ, संगीत राजदरबार की एक वस्तु बन गई।[1]

इन सब विचारकों से अलग, कुछ लोग ध्रुवपद का उद्गम ग्वालियर व उसके आस पास के देशी लोकगीतों से मानते हैं। उनके अनुसार, ध्रुवपद और देशी लोकगीतों की प्रकृति में समानता थी और उनकी प्रस्तुति भी केवल तानों को छोड़कर एक समान थी।[2]

इस प्रकार ध्रुवपद के उद्गम के विषय में हमें अनेक मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं। प्राचीन समय में ध्रुवपद जैसा गाया जाता था और आज जैसा गाते हैं उनमें अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। जैसा कि आचार्य बृहस्पति जी ने कहा है प्राचीन ध्रुवपदों में देवताओं और महापुरुषों की स्तुतियाँ थीं। कुछ में नायिका के श्रृंगारिक चित्रण थे। ये प्रबन्ध लोकभाषा में थे जिनमें जटिलता का अभाव था। आचार्य वृहस्पति जी के अनुसार, अबुल फजल ने ध्रुवपद का जो लक्षण दिया है, उसके अनुसार, ध्रुवपद पद्धति में ताल व छन्द का सामंजस्य नहीं था। कवित्त और सवैया छन्द बारह मात्रे के तालों में आबद्ध थे न कि चौताल से। उनमें अन्त्यानुप्रास व चार चरण तो थे परन्तु पद्य के प्रधान लक्षण विराम गति और परिणाम का अभाव था।

ध्रुवपदों में व्यवहृत भारतीय राग तथा उनमें अलंकार सम्बन्धी जटिलता के अभाव के कारण ही ध्रुवपदों को जनसाधारण में मान्यता मिली।[3] 11वीं से 13वीं शताब्दी तक मुसलमानी आक्रमणों व उनके शासन के कारण ध्रुवपद का वास्तविक स्वरूप बदल चुका

---

1. डॉ0 सुमति मुटाटकर- 'सगीत के चार चरण', लक्ष्य संगीत जुन 1956 पृ017
2. Swami Parjnanananda- A Historical Study of Indian Music P 163
3. आचार्य बृहस्पति एव सुमित्राआनन्द पाल सिंह- सगीत चिन्तामणि पृ0 52

था। 15वीं शताब्दी में मानसिंह तँवर नामक राजा ने ध्रुवपद को पुनः प्रचार में लाने का प्रयास किया और सफल हुये।

ध्रुवपद की साहित्यिक बन्दिश स्वभाविक रूप से सुन्दर, प्रभाव, पूर्ण, ईश्वर तथा विशिष्ट देवी देवताओं की स्तुति व आराधना युक्त बन्दिश के रूप में थी परन्तु बाद में ध्रुवपद ऋतु व प्रकृति के वर्णन से युक्त राजाओं व सम्राटों आदि की प्रशंसा से युक्त बन्दिश बनने लगी।

ध्रुवपद की परिभाषा :-

ध्रुवपद की परिभाषा भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों ने अपने-अपने मतों के अनुसार, दी है जो निम्नलिखित है -

"रागदर्पण" में राजा मानसिंह तोमर को ध्रुवपद का आविष्कारक कहा गया है। "रागदर्पण" मानसिंह कृत "मानकुतुहल" का फ़ारसी अनुवाद ग्रन्थ है। इसके अनुसार,ध्रुवपद की परिभाषा निम्नलिखित है-

इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं...... इसकी भाषा देशी होती है.. ... समस्त रसों में इसे बाँधा जाता है। इस परिभाषा के अनुसार,ध्रुवपद में छन्द का होना अनिवार्य नहीं है। अबुल फजल ने "आइने अकबरी" में ध्रुवपद के बारे में यह कहा है, कि ध्रुवपद तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित पद है। उन पंक्तियों की लम्बाई कुछ भी हो सकती है, जो अपने पौरुष अथवा गुणों के कारण प्रसिद्ध होते हैं। ध्रुवपद आगरा, ग्वालियर, बैरी तथा आसपास के प्रदेशों में प्रचलित गीत है। अबुल फजल कृष्ण की स्तुति वाले गीतों को "विष्णुपद" कहते हैं। उनके अनुसार, मथुरा में गाये जाने वाले वे गीत विष्णुपद हैं जो चार या छः पंक्तियों से निर्मित खण्डों से बने होते हैं। ध्रुवपद गाने वाले कलावन्त हैं "The

Karawunt (Kalawant) chiefly sing the Dhroopad"[1] शिवाजी के पिता शाहजी के आश्रित पण्डित वेद ने "संगीत मकरन्द" में ध्रुवपद की परिभाषा इस प्रकार दी है कि- ध्रुवपद में उद्ग्राह, ध्रुवक, आभोग में तीन धातु होते हैं जो प्राय: मध्यदेशीय भाषा में निबद्ध होते हैं। पण्डित वेद के अनुसार, ध्रुवपदनृत्त की परिभाषा इस प्रकार है–

"गीयमाने ध्रुवपदे गीति भाव मनोहरे।
नर्तन तनुयात् पात्रं कान्ताहास्यादि दृष्टिजम्।।
नानागतिलसद् भावमुखरागादिसंयुंतम्।
सुकुमारांग विन्यासं दन्तोद्योतिलहावकम्।।
खंडमानेन रचितं मध्य-मध्ये च कम्पनम्।
यत्रं नृत्यंभ वेदेवं ध्रुवपदाख्यं तदाभवेत्।।
प्रायशो मध्यदेशीय भाषया यत्र धातव:।
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगास्त्रय एते भवन्ति ते।।
उदग्राहरहितं केचित्परे त्वाभोग वर्जितम्।
उद्ग्राहा भोगरहितभन्तर्थ परे जगु:।।"

अर्थात् जब भावों से मनोहर ध्रुवपद नामक गीत गाया जा रहा हो तब पात्र को ऐसा नर्तन करना चाहिये जिससे प्रियतमा के हास्य, कटाक्ष आदि का प्रदर्शन हो, विविध गतियों या चेष्टाओं द्वारा भावों की अभिव्यक्ति हो, मुखराग इत्यादि से युक्त जिसमें सुकुमार अंग विन्यास हो, दंतप्रभा से जिससे हावों (नायिका की स्वाभाविक चेष्टाओं) की अभिव्यक्ति हो, जिसकी रचना (ध्रुवपद) खंडो के मान से की गई हो जिसके बीच-बीच में कम्पन हो, ऐसा नृत्य ध्रुवपद नृत्य कहलाता है, जिसमें उद्ग्राह, ध्रुवक और आभोग नामक धातुयें

---

1 A I N Glad P.734

मध्यदेशीय से युक्त होती हैं और कुछ लोग उसे उद्ग्राह रहित, कुछ आभोग रहित और कुछ उद्ग्राह और आभोग से रहित अर्थात् ध्रुवकमात्र कहते हैं, जो अन्वर्थ (अर्थ के अनुकूल) है।

कुछ लोगों के अनुसार, उद्ग्राह रहित ध्रुवपद, कुछ के अनुसार,आभोग आभोग रहित तथा कुछ के अनुसार, ध्रुव नामक भाग ही ध्रुवपद है।

संगीत सम्राट तानसेन के ध्रुवपदों से भी ध्रुवपद की परिभाषा का परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि तानसेन ने ध्रुवपद की स्वतन्त्र परिभाषा नहीं दी है। उनके रचित ध्रुवपदों के अनुसार,ध्रुवपद की परिभाषा इस प्रकार है- ध्रुवपद की चार तुकें होनी चाहिये। ध्रुवपद को शुद्ध अक्षरों से युक्त अच्छे गुरुओं के शिष्यों द्वारा विरचित तथा नवरसों में से किसी भी एक रस से युक्त होना चाहिये। राग और रस में सामंजस्य उनकी प्रकृति की दृष्टि से भी उचित है। यहाँ बताया गया है कि 'राग' और 'रस' ध्रुवपद के प्राण हैं। निपुण व्यक्ति की रचना ही ध्रुवपद हो सकती है। यहाँ पर अक्षरों की चर्चा भी हुई है।

भावभट्ट ने 18वीं शताब्दी में "अनूप संगीत रत्नाकर" में ध्रुवपद की परिभाषा इस प्रकार दी है- "ध्रुवपद की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय हो सकती है। इसमें दो या चार वाक्य होते हैं, जिनमें नर नारी की कथा होती है। श्रृंगार रस, भाव आदि होते हैं। यह रागालाप और पद से युक्त होता है। इसका प्रत्येक पाद, पादान्त अनुप्रास या यमक से युक्त होता है। इस प्रकार जहाँ चार पादों का अस्तित्व हो, जिसमें उद्ग्राह, ध्रुवक और आभोग नामक तीन धातु हो, वह ध्रुवपद कहलाता है।"[1]

---

[1] भावभट्ट कृत "अनूप सगीत रत्नाकर" में ध्रुवपद क लक्षण -
गीर्वाणमध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन नरनारि कथाश्रयम्।।
श्रृंगाररसभावबाद्य रागालापपदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्त पादान्तयुगकम् च वा।।

अबुल फज़ल ने स्त्रियों द्वारा ध्रुवपद गान की चर्चा की है। दफ़जन नामक स्त्रियाँ ध्रुवपद भी गाती थीं। भरत ने तो गाना स्त्रियों के लिये स्वभाविक माना है। पुरुषों का प्रधान कार्य पाठ्य है। यदि स्त्रियों में पाठ्य व पुरुषों के गान में मधुरता हो तो अलंकार उनकी अतिरिक्त विशेषता है स्वभाव नहीं।

19वीं शताब्दी में भातखण्डे जी के अनुसार,ध्रुवपद की आधुनिक परिभाषा इस प्रकार है, कि उसके स्थायी अन्तरा, संचारी, आभोग ये चार भाग होते हैं और कुछ ध्रुवपदों में केवल दो भाग स्थायी, अन्तरा ही होते हैं। भाषा उच्च श्रेणी की होती है, वीर, श्रृंगार और शान्त रस की प्रधानता होती है। यह चौताल, सूलफाक, झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र इत्यादि तालों के साथ गाया जाता है। भातखण्ड जी के अनुसार, ध्रुवपद मर्दाना और जोरदार गायकी है। अबुल फज़ल के अनुसार,ध्रुवपद तीन या चार पंक्तियो से निर्मित पद है। उन पंक्तियों की लम्बाई कुछ भी हो सकती है। इन ध्रुवपदों का विषय प्रधानतया उन व्यक्तियों की प्रशंसा होती है जो अपने पौरुष अथवा गुणों के कारण प्रसिद्ध होते हैं। ध्रुवपद आगरा, ग्वालियर, और आस-पास के प्रदेशों में प्रचलित गीत हैं।

मुहम्मद करम इमाम जो वाजिद अली शाह के आश्रित थे उनके अनुसार, "ध्रुवपद में चार पाँच चरण होते हैं और दो भी होते हैं। चरण का अर्थ 'तुक' है। स्थायी, अन्तरा, भोग और आभोग ये चारों तुकों के नाम हैं। 'तुक' को 'खण्ड' भी कहा जाता है।"

ध्रुवपद के उद्‌गम से सम्बन्धित प्राप्त मतों के प्रकाश में प्राचीन काल के गीतियों से भी ध्रुवपद का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। विशिष्ट परम्परा के गायकों के समूह की गायन शैली स्थूल रूप से एक ही रहती है। किसी गायक समूह में गमक का

अधिक प्रयोग होता है तो किसी में वक्रता का अथवा किसी समूह में सीधा ही गाया जाता है। यही भेद गीतियों में परिलाक्षित होता है। उस समय गीतियों का प्रचलन हो चुका था, अतः उसका कुछ अशं संगीतज्ञों में विद्यमान था जब उन्हीं गायकों ने ध्रुवपद गाया तो ध्रुवपद गायकी में उसी गायकी का अंश आना स्वभाविक था। ऐसे ध्रुवपद गायक व गायकी या गायक समूह को एक विशिष्ट बानी का नाम दे दिया गया। इन बानियों के नाम किसी गायक के निवास स्थान के नाम पर या किसी गायक के नाम पर रख दिये गये।

ध्रुवपदों की बानियाँ :-

ध्रुवपदों की बानियाँ अकबर के युग के बाद आयी। भातखण्डे 'बानी' का अर्थ स्वराश्रित गान शैली या गीति मानते हैं। तानसेन के ध्रुवपदों में शुद्ध बानी (शुद्ध वाणी) का अर्थ गीति नहीं अपितु किसी विशेष जाति या प्रदेश की भाषा को वाणी कहा गया है। अतः यहाँ बानी किसी गान शैली या गीति को नहीं वरन् प्रदेश की भाषा को कहा गया है। मुहम्मद करम इमाम ने चार बानियों का वर्णन किया है। और बानियों को जाति या प्रदेश से ही सम्बन्धित बताया है। अतः गौरारी, खण्डारी, डागरी, नौहारी बानी प्रदेश से ही सम्बन्धित है।

स्वामी प्रज्ञनानन्द के अनुसार, अकबर के समय में प्रबन्ध गीतों को गाने के चार अंग थे, जो देशी गायन अथवा देशी साहित्य पर आधारित थे ये चार ढंग जिन्हें बानियों के नाम से जानते थे, इस प्रकार थे- गौड़हार, खंडार, डागुर, नौहार। स्वामी प्रज्ञनानन्द ने कुमार बी0एन. चौधरी के विचारों का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार,गौड़हार बानी शास्त्रों में वर्णित शुद्धा गीति से मिलती थी, जिसमें मीड़ सीधे स्वरों में राग के अनुकूल किया जाता था। डागुर

बानी भिन्ना से मिलती थी। भिन्ना गीति में मीड़ का प्रयोग वक्र रूप में मधुर व विलक्षण गमकों के साथ होता था। खंडार बानी बेसरा गीति के समान थी जिसमें तेज गमकों का प्रयोग होता था। नौहार बानी में गमकों का प्रयोग उछाल के रूप में किया जाता था। ध्रुवपद की चार बानियाँ इस प्रकार हैं-

(1) **गौरारी बानी** – गौरारी शब्द ग्वालियर का अपभ्रंश है। यह ग्वालियर में बोली जाने वाली भाषा का घोतक है। फकीरुलाह ने इसी भाषा को श्रेष्ठ कहकर इसका क्षेत्र निश्चित किया है। यही भाषा ध्रुवपदकारों की शुद्ध बानी हो।

(2) **खण्डारी बानी** – खण्डार नामक एक स्थान था। सम्भव है इस स्थान के निवासियों की भाषा ही खण्डारी बानी है।

(3) **डागरी बानी** – डागरी प्रदेश की चर्चा मुहम्मद करम इमाम ने की है। उनके अनुसार, यह दिल्ली के पास स्थित है। यहीं के निवासियों की भाषा डाँगरी हो सकती है। इसके अतिरिक्त डागर एक जाति भी है।

(4) **नौहारी बानी** – मुहम्मद करम इमाम ने 'नौहा' नामक प्रदेश के व्यक्ति को 'नौहार' कहा है। इन्हीं की भाषा नौहारी होना सम्भावित है।

ब्रजभाषा ध्रुवपद प्रबन्धों के चार धातु :-

चौदहवीं शताब्दी में गोपाल ने गान का आधार स्थाय, आलाप, गीत और प्रबन्धों को मानकर इनका नाम 'चतुर्दण्डी' रखा था। अर्थात् गान रूपी वितान को आधार मानकर ताने रहने वाले

चार आधार-दण्ड स्थायी आलाप गीत व प्रबन्ध हैं। इन्हीं पर आधुनिक प्रबन्धों की धातुयें स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग आधारित हैं।

ध्रुवपद प्रबन्धों के छः अंग :-

(1) स्वर – स्वर ध्रुवपद का एक अंग है। यह अंग स्वर संज्ञाओं का ज्ञान है।

(2) विरुद – यह भी ध्रुवपद का एक अंग है इसमें मन्दिर, नाट्यशालाओं, राज्यसभाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा है।

(3) पद – पद का अर्थ सार्थक वाक्य है। विभिन्न रसों में प्रयोज्य काव्य ही पद है।

(4) तेनक – यह एक प्रकार का सस्वर जाप है। "ऊँ तत्सत्" में तत् शब्द से ब्रह्म का बोध होता है। इसकी तृतीया विभक्ति का रूप तेन ब्रह्म के कर्त्तव्य का ज्ञान कराता है। ध्रुवपद गायकों के आलाप में 'तननन' 'तननन' यह तेनक का रूप है।

(5) पाट – शिव ताण्डव में 'डमड्ड', मड्डमड्' इत्यादि ध्वनियाँ डमरू के पाटाक्षर हैं। अत: देवताओं को प्रसन्न करने के साथ-साथ शब्दों का लय के साथ अनुरंजन भी इसका प्रयोजन है।

(6) ताल – ताल में गीत, वाद्य तथा नृत्य प्रतिष्ठित होता है। यह ध्रुवपद का महत्वपूर्ण अंग है।

ध्रुवपदों के विषय व स्रोत :-

वाग्गेयकारों ने अनेक ध्रुवपदों की गेय रचना की। ये ध्रुवपद काल व परिस्थिति में भिन्न-भिन्न थे। ध्रुवपद का विकास मन्दिरों,

नाट्यशालाओं व आश्रयदाताओं के यहाँ हुआ। अत: किसी ध्रुवपद में ईश्वर की स्तुति, किसी में आश्रयदाता की प्रशंसा, किसी में गुरू की, तो किसी में नायक नायिका के प्रेम लीला या प्रकृति का वर्णन, किसी में वीर रस, किसी में श्रृंगार रस तो किसी में शान्त रस का वर्णन है। अत: हमें अनेकों ध्रुवपद प्राप्त होते हैं, जिसके विषय भिन्न थे, वे निम्नलिखित हैं -

स्तुति –

इस विषय पर रचित ध्रुवपद राजाओं के मन्दिरों में अथवा उनकी दैनिक विधि में पूजन के समय गाने के लिये होता था। हिन्दू राजाओं के आश्रित मुसलमान ध्रुवपदकारों ने विष्णु, शंकर, गणेश इत्यादि देवताओं की स्तुति में और हिन्दू ध्रुवपदकारों ने अल्लाह, पीर, पैगम्बरों इत्यादि की प्रशंसा में ध्रुवपदों की रचना की जो उनकी आजीविका का साधन था। इब्राहिम का विश्वास था कि सरस्वती व गणेश की उपासना से कण्ठ मधुर होता है और सरस्वती के प्रसाद के बिना संगीत नहीं आता। इब्राहिम ने अपनी पुस्तक 'किताबे नवरस' का मंगलाचरण सरस्वती की प्रार्थना से किया है जो निम्नलिखित है-

"नवरस स्वर जुग जग जोति आर्णी सर्व गुनी।

यो सत् सरसुती मातां इबराहिम प्रसाद भई दूनी।।"

अलख जैसे विषय पर भी ध्रुवपद प्राप्त होते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी में और उससे पूर्व अलख, अनाहत नाद, जोगी और चौरासी सिद्धों की चर्चा लोक में भलीभाँति हो चुकी थी। भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा से सम्बन्ध रखने वाले ध्रुवपद मिलते हैं। बैजू, तानसेन, हरिदास, मदनराय आदि ध्रुवपदकारों ने इस विषय पर अनेक ध्रुवपद रचे हैं।

इस्लाम प्रशंसा –

मानसिंह द्वारा निर्मित शैली में सूफी खानकाहो (मठों) में ध्रुवपद का काफी प्रचार हुआ। उस समय खुसरो के चलाये हुये रसूल व कलमा भी ध्रुवपद शैली से प्रभावित हुये, जिसमें इस्लाम की प्रशंसा थी।

वैराग्य –

सांसारिक मान सम्मान और धन सम्पत्ति से विमुख होकर अनेकों संगीतज्ञों ने वैराग्य से सम्बन्धित ध्रुवपदों की रचना की। राजदरबार में रहे तानसेन भी अन्ततोगत्वा प्रभु चरण में रत होने के लिये अपने मन को प्रेरित करते हैं। यही बात उनके रचित ध्रुवपद में परिलक्षित होती है-

"तू जपि जपि ले मन, राम नाम जामें होई काम बनवारी श्याम हरिनाराइन निरंजन। भक्त बछिल जगदीस गोसाई अनाथन नाथि श्रीपति सुदामा दालिद्र भंजन। दीनबन्धू दीनानाथ मनोहर कंसराई निकंदन। 'तानसेन' लघु विनती करत राधापति मन रंजन।"

गुरुमहिमा –

गुरुमहिमा का वर्णन भी ध्रुवपदकारों ने अपने रचित ध्रुवपदों में किया है वे गुरू के चरणों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का दाता मानते हैं।

कृष्ण सम्बन्धी रचनायें –

इन रचनाओं में ध्रुवपदकारों ने कृष्ण की छवि, मुरली, गोपियाँ, वृषभान नन्दनी, तथा वृन्दावन में होने वाली लीलाओं का वर्णन किया है। ब्रज के ध्रुवपदों में रास को बहुत महत्व दिया गया है। तानसेन ने कृष्ण छवि पर मोहित गोपियों के मध्य विराजित

'लाल' ललिमा का वर्णन किया है, तो कहीं शरद ऋतु में कृष्ण की वंशी और कुलवधुओं पर उसके प्रभाव का वर्णन तो कहीं गोरस बेचने के बहाने कृष्ण को ढूंढती हुई उत्सुक व व्याकुल गोपी की छवि व चेष्टाओं का वर्णन किया है।

होरी –

हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही ध्रुवपदकारों ने होरी को मुख्य विषय के रूप में प्रयोग किया है। धमार ताल में गाये जाने वाले गीतों को होरी कहा गया है। यह अंग ध्रुवपद गायकों का अनिवार्य व ललित अंग था। तानसेन, सदारंग, अदारंग, चंचलदास, नूररंग, सबरंग, अदारस, इच्छाबरस, गुलाब, एवं प्रेमदास आदि सभी ध्रुवपदकारों ने होली का वर्णन किया है। उदाहरण स्वरूप मनरंग द्वारा प्रस्तुत एक होरी निम्नलिखित है-

"कुछ ऐसो मन्त्र पढ़ि रंग छिरकौ री होरी के दिनन में,
इन मनमोहन बनवारी।
सकल त्रीअनि में कोने सिबाई हो,
न जाने ऐसी कौन है नारि वारी।
मोहि जानि वृषभान दुलारी मनहर लीनो नंद के बिहारी,
जौं हौं ऐसी जानती 'मनरंग' सैहैरन गारी दे भई मतवारी बजाई तारी।"

ऋतु वर्णन –

ध्रुवपदकारों और गायकों की परम्परा में ऋतु वर्णन विशिष्ट महत्व रखता है। इनके ध्रुवपदों में कहीं प्रकृति का कहीं उद्दीपन का तो कहीं आलम्बन के रूप का वर्णन मिलता है। तानसेन ने अपने ध्रुवपद में, कृष्ण में घन का आरोप करके रस वर्षा में बूंदों, मुरली

ध्वनि में गर्जन, मुस्कान में बिजली, दन्त कान्ति में वक पंक्ति इत्यादि का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

"कान्ह ओलरि आयो है,
बरसि बरसि रिमझिम रस-बूंदिनि।
मुरली की गरजन तपनि तडत मुसिक्यानि,
दसन ओप बगपांति, ग्रीमं डुलनि पौहौंप गूंधन।
चहूँ ओर धुरवा से घरें,
तामें मोर चंद्रका इंद्र भयो रस गूंधन।
'तानसेनि', प्रभू की अधिक झकोंरनि,
भीजि गयी बृजबनिता सहित भूषन फूदन।"

संगीत के सिद्धान्त के ध्रुवपद –

जिन ध्रुवपदों में संगीत के रहस्यगर्भ सूत्रों की रचना होती है, ध्रुवपद परम्परा में वे 'सिद्धान्त के ध्रुवपद' कहलताते हैं। इन ध्रुवपदों में मूर्च्छना सिद्धान्त इत्यादि का वर्णन रहता है। अन्य अनेक ध्रुवपद ऐसे हैं जिनमें सांगीतिज्ञ परिभाषाओं का भी वर्णन मिलता है। तानसेन के 'नाद सागर', 'नांद समुद्र', 'नाद नगर', 'नाद गढं' 'चंचलसस', का 'नाद समुद्र', 'सुरज्ञान खाँ' का 'नांददल', 'हरिदास डागुर का नाद गढ़ में उनकी दृष्टि के साहित्य तथा संगीत दोनों पक्ष उभर कर आते हैं।

नायिकाओं के नख-शिख वर्णन, श्रृंगार, नेत्र वर्णन तथा नायक के रूप वर्णन, दम्पति-केलि का वर्णन, नायिका भेद, आश्रयदाताओं की प्रशंसा का वर्णन अनेकों अन्य ध्रुवपदों में प्राप्त होता है।

नख-शिख व श्रृंगार विषय के अन्तर्गत् ध्रुवपदों ने नायिकाओं की छवि का चित्रण किया है जिसमें नायिकाओं ने अपने अंगों में

आभूषण धारण किया हुआ है। यही सब विषय उस समय के कवियों के भी प्रिय विषय रहे और कवि तथा ध्रुवपदकार दोनों का परस्पर सम्पर्क होता रहता था, क्योंकि अनेक कवि और गायक एक ही आश्रयदाताओं के आश्रय में रहते थे। अत: इनके विषय भी एक थे। नायिकाओं का नेत्र वर्णन भी कवि तथा ध्रुवपदकार दोनों का ही प्रिय विषय रहा है। ध्रुवपदकारों ने नेत्रों का जो अनोखा, सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है वह किसी भी कवि की रचना से कम नहीं है। रात्रि में नायक के साथ जागी हुई नायिका के नेत्रों का वर्णन 'अकबर' की छाप से अंकित एक ध्रुवपद में तानसेन ने किया है। रात्रि में जागे हुये नयनों पर तानसेन की एक सुन्दर रचना इस प्रकार है-

"ऐसे नैनां अरुन बरन ते रे रो पीअ संग जागे रंग रस पागे।
सेत सेत तारे कमल दल लोचन निरखि आनन कुल त्यागे।।
पलक सषुरिआं सी मुदत चितवत ही मनो वानं से लागे।
पौहोप सरोवरि पानप पूरे तानसेनि प्रभू अनुरागे।।"

रुपवान पुरुषों के रूप की प्रशंसा में भी मुस्लिम दरबारों में ध्रुवपद लिखे व लिखाये गये अमीर खुसरो ने भी उन मर्दों (किशोर लड़कों) के हाव-भाव, कटाक्ष और रूप की प्रशंसा की है जिनके कपोलों पर रोएं तक न जमे थे और जो युवतियों की भाँति सुन्दर थे। दम्पतिकेलि का वर्णन ध्रुवपदकारों ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है। एकमात्र भक्त-ध्रुवपद गायक स्वामी हरिदास जी की लीला सम्बन्धी रचनाओं के एकमात्र संग्रह का नाम ही 'केलिमाल' है।

नायिका भेद का वर्णन रीतिकालीन कवियों ने किया है। इसका प्रभाव ध्रुवपदकारों पर भी पड़ा। उन्होंने सुन्दरियों के मनोरम चित्र का अंकन अपने ध्रुवपदों में किया। मानसिंह तोमर के युग से

रीतिकाल के अन्त तक नायिका भेद की परम्परा का निर्वाह ध्रुवपदकारों ने किया और गेय साहित्य को समृद्ध किया।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा भी ध्रुवपदों के मुख्य विषय रहे। एक बार में एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें देने वाले राजा रामचन्द्र को तानसेन ने ग्राहक व स्वयं को 'व्यापारी' कहा है। अकबर, तानसेन के शब्दों में 'पारखी' और वह स्वयं 'जौहरी' हैं। जगन्नाथ कविराय को चाँदी से तुलवाकर सम्मान बढ़ाने वाला शाहजहाँ ध्रुवपदों में प्रशंसा का पात्र हुआ है। औरंगजेब की भी प्रशंसा ध्रुवपदों में मिलती है। अकबर, जहाँगीर शाहजहाँ, औरंगजेब के पराक्रम और प्रताप का वर्णन ध्रुवपदकारों ने पूर्णरूपेण किया है। किन्तु उनके बाद के मुगल शासक उतने पराक्रमी न थे अतः उस काल के ध्रुवपदकारों ने अपने आश्रयदाताओं के प्रताप की जो प्रशंसा की है वह आंशिक सत्य या परम्परा का निर्वाह मात्र है।

भक्तिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन :-

ऐसे कलाकार सौभाग्यशाली होते हुये भी गिने चुने थे, जिन्हें अकबर के दरबार में मान सम्मान, अर्थ, ख्याति आदि सब प्राप्त थे। बैजू और गोपाल जैसे कलाकारों को जिन राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था वे स्वयं संघर्षों में फंसे थे। अतः इन राजनैतिक उतार चढ़ाव व अस्थिरता के समय ध्रुवपदकारों को दरबार छोड़ कर भटकने के लिये विवश होना पड़ा। परिणामस्वरूप वे जनता के सम्पर्क में आये। बैजू और तानसेन जैसे ध्रुवपदकारों की रचना में विषय सम्बन्धी विविधता का एक यह भी कारण था। धार्मिक पर्वों, उत्सवों अथवा कीर्तनों के अनुकूल उन्हें ध्रुवपदों की रचना करनी पड़ी, जो कि आश्रयदाताओं के प्रताप प्रशंसा से सर्वथा भिन्न थे।

ध्रुवपदकारों की रचनाओं मे भक्ति सम्बन्धी ध्रुवपद भी हैं और कई ध्रुवपद स्वान्त: सुखाय के लिये भी लिखे गये हैं। भक्त ध्रुवपदकार में स्वामी हरिदास जी दरबारों की परिधि से अलग रहकर अपने अराध्य को रिझाने के लिये ही रचना की जिनसे रस की धारायें प्रवाहित होती हैं। उनके पदों में बाल-सुलभ भोलापन और एकान्त अनुभूतियों का अत्यन्त मनोरम और हृदयस्पर्शी चित्रण है।

ध्रुवपदकारों की उपलब्ध कृतियों के आधार पर साहित्यिक मूल्यांकन निम्नलिखित है।

(1) **बैजू**–

बैजू की चर्चा मानसिंह तोमर के काल से बहादुर शाह गुजराती तक के काल में मिलती है। एक ध्रुवपद में इन्होंने स्वयं को आदिकवि कहा है। इनकी अनेक रचनायें आज भी गायक लोग गाते हैं। "रागकल्पद्रुम" में इनके ध्रुवपद विद्यमान हैं। 'राग कल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण का सम्पादन, जिसे पण्डितों ने किया है वे संगीत व उसके इतिहास से परिचित थे। अत: उन्होंने 'रागकल्पद्रुम' में कुछ ऐसी रचनायें भी बैजूकृत मान ली हैं जो बैजूकृत नहीं हैं। बैजू के रचना के विषय गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, राम, कृष्ण, सूर्य शंकर, हरिहर, दुर्गा, सर्वदेव की स्तुति, गुरू महिमा, हरि स्मरण, नाम महिमा, ब्रह्म की व्यापकता, प्रबोध, नाद साधन, संगीत, नायिका-भेद, जन्मोत्सव की बधाइयाँ, वंशी और रास है। वैजू को युगप्रवर्तक ध्रुवपदकार की संज्ञा दी गयी है। इन्हीं के दिखाये मार्ग पर चलकर तानसेन तथा अन्य ध्रुवपदकारों ने अनेक ध्रुवपदों की रचना की व संसार में प्रतिष्ठा के पात्र बने।

बैजू ने अपने ध्रुवपद में विष्णु व शिव की एकता का प्रतिपादन किया है। बैजू ने, अपने नाभि से ब्रह्मा को प्रकट करने

वाले विष्णु स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का भी प्रतिपादन किया है, जिसका वर्णन हमें उनके द्वारा रचित ध्रुवपद में मिलता है-

"निरंजन निराकार परब्रह्म परमेश्वर एक ही अनेक होय व्याप्यौ विस्वंभर।

अलख ज्योति अविनासी जोतिरूप जगतास, जगन्नाथ जगतपति जगजीवन जगधर।

वाही में सब जीव जंतु सुर नर मुनि गुनी ज्ञानी, नाभि कमल तै ब्रह्मा प्रकटायौ और सतरूपा मन्वंतर।

कहै 'बैजू' वही ब्रह्मा वही विराट रूप वही आपु अवतार भये चौबीस वपुधर।"[1]

बैजू की पद्मिनी सुन्दर, नवेली, और प्रवीण होने के साथ अत्यन्त कोमल है। रूप वर्णन के क्षेत्र में ध्रुवपद-साहित्य के आदिकवि बैजू ने इनका वर्णन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। उन्होंने निम्न उपमानों से पद्मिनी को सजाया है-

"सुन्दर अति नवीन, प्रवीन, महाचतुर, मृगनैनी, मनहरनी, चपंकबरनी नार।

केहरि कटि, कदली जघां, नाभि सरोज, श्रीफल, उरोज, चन्द्रबरनी, सुक नासिका, भौंह धुनष काम ढार।।

अंग-अंग सुगंध पद्मिनी, भंवर गुंजत सुवास, आवत क्रोध नहिं, सांत सरूप कृसता ही दबी जात बारन के भार।

धन-धन ताकौ भाग, तोसी तिया जा घर बैजू प्रभू रस बस कर लीने, काम जाल डार।।"

बैजू ने पति की प्रतीक्षा में निमग्न विरहणी का अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। 'शंका', 'उत्सुकता', 'वितर्क इत्यादि संचारी

---

1. "बैजू और गोपाल" नामक ग्रन्थ में पृ0 51 पर

भावों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में निम्न छन्द में प्रस्तुत किया है। नायिका को न लेटे चैन है, न बैठे ही। श्रृंगार करने पर भी वह विरहणी जैसी है। मन में उमंग है और अंग-अंग को अंगड़ाई लेकर मरोड़ रही है। भाव, अनुभाव और संचारी भाव इस रचना में सजीव हो उठे हैं-

"कर मैं गुलफ धरें तिय दुचित अनमनी, करके सिंगार विरहिन है बैठी री।

पिय-पिय, रट लागी, मग जोहत, मोहत रंग, उमंग भरी, आलस अंग अंग मरोरत है ऐंठी री।

नख-शिख2 लौं आभूषण भूषन, जगमग रहे, पिय आवत की उद्दाह, नांहिन पत कल नैंक लेटी री।

'बैजू' प्रभू मनमानी आय गये वाही छिन, धन-धन भाग सुहाग नारि अंग अंग भैंटी री।।"[1]

बैजू ने नायक-नायिका के स्वप्न मिलन से प्राप्त होने वाले सुख का अत्यन्त सुन्दर वर्णन अपने ध्रुवपद में किया है। यही स्वप्न मिलन व्यक्ति को अपने प्रियतम से साक्षात् मिलन की तीव्र उत्सुकता को जागृत कर देता है। संचारी भाव 'स्वप्न' के साथ अन्य संचारी भाव के द्वारा विप्रलभ श्रृंगार का सुन्दर वर्णन बैजू के इस छन्द में हुआ है जिसमें नायिका स्वप्न मिलन के सुख का अनुभव करने के साथ-साथ विरह की तीव्रता से अनमनी हो रही है-

"आज सुपने में सांवरी सलोनी सूरत देखी, सैंनन करी भो सौं बात।
तबतैं मैं बहुत सुख पायौ, जागत भई परमात।
मधुर वचन बोल मदन मंत्र पढ़ि डारौ, उन बिन छिन छिन कछु न सुहात।

---

[1] "बैजू और गोपाल" - पृ0 68

'बैजू' ब्रज की नारी, जंत्र मंत्र लिख सारी, कल न परत गात, सब दिन-रात।"

बैजू की भाषा में संस्कृत शब्दों का तो प्रयोग हुआ है, किन्तु उनका रूप तद्भव होने के कारण वे भाषा में घुलमिल गये। उनमें व्यर्थ शब्दों का प्रयोग नही है। सादृश्यमूलक अलंकारो का प्रयोग उनकी कविता में स्वत: ही हो गया है। माधुर्य और प्रसाद तो उनके काव्य में सहज रूप से प्रकट होते हैं और उनके ध्रवपदों के प्रत्येक पद में अनुभूति के दर्शन होते हैं।

मानसिंह तोमर के काल में ही बैजू की कविता मुखरित हुई और भलि-भाँति विकसित हुई। बैजू के काव्य का ही अनुसरण परवर्ती ध्रुवपदकारों ने किया।

(2) **बक्शू**–

संगीताकाश में बैजू एक नक्षत्र की भाँति शोभायमान हैं। संगीतज्ञों में इनकी ख्याति अत्यधिक है। इन्हें सुन्दर ध्रुवपदों का रचयिता कहा जाता है। ये मानसिंह तोमर के शिष्य थे। शाहजहाँ के काल तक इनकी रचनायें सहस्रों कण्ठों में गुंजित होती थीं। शाहजहाँ द्वारा संग्रहित पुस्तक में एक सहस्र ध्रुवपद बक्शू के थे। इनके कुछ ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम' में हैं। 'रागकल्पद्रुम' के द्वितीय भाग पृ0 223 पर गणेशस्तुति विषयक इनकी निम्नांकित रचना दी हुई है-

"पूजौ रे गणेश को गुनी।
रिद्धि सिद्धि के दाता विघ्न हरण दुनि।।
जिन ध्यायौ तिन पायौ मन इच्छा भनि।
बक्शू के प्रभू को घ्यावत, सुर-नर-मुनि।।"

इस पद में 'रागकल्पद्रुम' के पण्डितों ने कृपा करके 'रिधि-सिधि' के स्थान पर 'रिद्धि-सिद्धि' और 'विघनहरन' के स्थान पर 'विघ्नहरण' करके मूल पाठ का 'सम्पादन' कर दिया है। इसके अतिरिक्त जहाँ 'दो' के अर्थ में 'बक्शों' क्रिया का प्रयोग किया गया है ऐसी रचनाओं को भी बक्शू के नाम से लेखक सूची में गिना दी है।

श्री स्वामी हरिदास–

वृन्दावन बानी स्वामी हरिदासजी एक विशिष्ट सखी भाव की उपासना के प्रवर्त्तक हैं। ये भक्तिरस से सराबोर रहते थे इनकी भक्ति कृष्ण व राधा के प्रति अलौकिक थी। उनकी 'केलि' भी अलौकिक तथा उनका नित्य निकुंज-विहार भी अलौकिक एवं नित्य है। स्वामी हरिदास जी स्वयं में सखी भाव का आरोप करके अपने कुपास्य 'युगल' की लीलाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं। वे कहते हैं–

"माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम धन दामिनी जैसे।

प्रथमहुँ हुर्ता अबहू आगे हूँ रहिहैं न टरिहैं तैसें।

अंग-अंग की उजराई सुखराई चतुराई सुन्दरता ऐसें।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कुंजविहारी सम वैसें-वैसें।"

केलि सम्बन्धी पदों में हरिदास जी ने पने श्याम-श्यामा के क्रीड़ा-व्यापारों का बहुत मधुर व स्वाभाविक वर्णन अपने ध्रवुपदों में किया है वह स्वत: प्रवाहित अमृत स्रोत के समान है। उस क्रीड़ा व्यापार का मधुर दृश्य हमें हरिदास जी के निन्म पदों में प्राप्त होता है–

"प्यारी जू जैसे तेरी आंखिन में हौ अपनौपौ देखत हौ,

ऐसें तुम देखत हो किधौं नाहीं।

हौं तोसों कहौं त्योर आंखि मूंदि रहौं,

तौ लाल निकास कहाँ जाहीं।।

मोको निकसबें की ठौर बतावौ,

साँची कहौ बलि जाँव लगौ पाहीं।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,

तुम देख्यौ चाहत और सुख लागत काहीं।"[1]

ऐसी रचनाओं को केवल अलंकारिकों की दृष्टि से देखकर यहाँ 'स्वभावोक्ति' मात्र बताना इस ध्रुवपद का अपमान करना है तथा विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के द्वारा ऐसी रचनओं का मूल्यांकन असम्भव है। यह तो सहृदय-जन संवेद्य है।

हरिदास जी के शब्दों में बाह्य प्रकृति में स्वयं श्याम-श्यामा की केलि में सहयोग देना आरम्भ कर दिया। हरिदास जी के पदों में प्रकृति व केलि का सुन्दर सांमजस्य देखने को मिलता है। निम्न पद में कोई सखि राधे से कहती है-

"राधे चलि री हरि बोलत,

कोकिला अलापत, सुर देत पंछी राग बन्यौ।

जहाँ मोर कांछ बांधे निर्त करत, मेघ पखावज बजावत, बंधानग्रन्यौ।

प्रकृति की कोऊ नहीं यार्तें।

सुरति के अनुमान गहि हौं आई मैं जन्यौ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा

कुंजविहारी की अटपटी बानि और कहत कछु और भन्यौ।।"

1.सगीत, हरिदास-अंक पृ0 71

ऐसी ही पंक्तियाँ साहित्य शास्त्र को नये विषय देती हैं। प्रकृति का कवि के शब्दों में अलौकिक एवं परम रहस्यमय रूप साहित्यशास्त्र में गिनायी हुई विधाओं के अन्तर्गत् नहीं आता। गिने-बंधे प्रकारों में ऐसी रचनाओं का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और इनमें आलम्बन, उद्दीपन गिनाया जाना असम्भव है। सब कुछ कहने के पश्चात् भी उस स्थिति की अवर्णनीयता की ओर संकेत करती हुई कहती है कि 'मैं कहना चाहती थी कुछ, कह गई कुछ' यहाँ भी अलंकारिक विश्लेषण असम्भव प्रतीत होता है।

केलि सम्बन्धी ध्रुवपदों के अतिरिक्त स्वामीजी के ध्रुवपद सिद्धान्त सम्बन्धी हैं। उसमें जीव की विवशता, ईश कृपा का महत्व, प्रबोध विनय इत्यादि भाव है। कुछ ध्रुवपद उनके मुसलमानों तथा फ़ारसी पण्डितों के सम्पर्क में आने के कारण सधुक्कड़ी प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

तानसेन –

अपने समय के व परवर्ती ध्रुवपदकारों में तानसेन सर्वश्रेष्ठ हैं। यही बैजू के योग्य उत्तराधिकारी भी हैं। तानसेन अकबर के नवरत्नों में से एक थे। इनकी रचनाओं के विषय देवस्तुति, विनय प्रबोध, पीरों की स्तुति प्रताप, कृष्णलीला गोपी-प्रेम, नायिका भेद अनाहत नाद, अलख, ऋतु वर्णन ऐतेहासिक घटनायें तथा संगीत हैं।

"मिश्रबन्धु विनोद" में तानसेन कृत तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है वे हैं- "संगीतसार", "रागमाला", "श्रीगणेशस्तोत्र"। इनमें प्रथम दो उपलब्ध हैं जिनका विषय संगीतशास्त्र हैं। श्रीगणेशस्तोत्र उपलब्ध नहीं हैं। जहाँगीर के अनुसार, तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की थी। इनमें से अधिकांश की खोज अब तक नहीं हुई है। डॉ0 सरयूप्रसाद अग्रवाल ने तानसेन कृत 182 ध्रुवपद संग्रहीत किये हैं। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'कवि तानसेन

और उनका काव्य' में 249 ध्रुवपद संकलित 'किये हैं। श्री प्रभुदयाल मीतल ने 'संगीत सम्राट तानसेन' में 288 ध्रुवपद तानसेन कृत समझकर संकलित किये हैं। एक अन्य संग्रह 'हिन्दी के संगीतज्ञ कवि और उनकी रचनाओं' में 246 ध्रुवपद तानसेन कृत कहकर संकलित किये गये हैं। इन चारों संग्रहों का आधार प्रधानतया 'रागकल्पद्रुम' है जिसका दूसरा संस्करण भ्रष्ट कर दिया गया है।

तानसेन ने स्वान्त:सुखाय ध्रुवपद भी लिखे हैं। जिनमें जीवन की स्वच्छ अनुभूति, समर्थ कवि की सूक्ष्म दृष्टि और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता के साथ-साथ कल्पना की भरपूर उड़ान हमें प्राप्त होती है।

नयन वर्णन विषय के अन्तर्गत् तानसेन ने नायिका के नयनों और उसके भावों में सहज सुन्दर एवं मोहक उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। उनके ध्रुवपद में नायिका के मद भरे नयन झूम झूम आते हैं। छूटी हुई अलकें श्याम घन जैसी प्रतीत होती हैं और झपक झपककर उधड़ जाने वाले नयन तारे के समान प्रतीत होते हैं। अरुण वर्ण नैन, उनमें लाल-लाल डोरे और साथ ही उन नयनों में मद की लहर देखकर तानसेन इस छवि पर वारि तरंगो को न्योछावर कर रहे हैं।

ये नयन अंजन के बिना ही काले हैं। जो इन्हें देखता वह सदा छका ही रहता है। ध्रुवपद इस प्रकार है-

"झूमि-झूमि आवत नैना भारे तिहारे।

विथुरीं अलकैं श्याम घन सीं लागत झपकि-झपकि उघरि जात, मेरैं जान तारे।

अरुण वरन् नैना, तामैं लाल लाल डोरे तापर यह मौज वारि वारि डारे। तानसैनि कौ प्रभू संदाई छके रहत, कोकिला की धुनि मोहि बिनै अंजन कारे।।"

यह पद वस्तु व्यंजना का सुन्दर उदाहरण है। नयनों का विशेषण 'भारे' और 'झूमि-झूमि आवत' इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि इस सौभाग्यशाली स्वाधीनपतिका को उसके पति ने रात भर सोने नहीं दिया है। बिखरी अलकों को श्याम घटा तो और भी कवियों ने कहा है किन्तु उनमें छिपते नेत्रों में तारों की उत्प्रेक्षा तो केवल तानसेनजी की ही विशिष्टता कही जा सकती है। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का ही परिचायक है। नयन अरुण रंग उनमें लाल लाल डोरे तो सामान्य बात है किन्तु 'मौज' शब्द का साभिप्राय प्रयोग तरंग से साम्य स्थापित करने के लिये ही है। संयोग श्रृंगार के केवल एक अनुभाव नयनों के भारी होने व झूमने के आधार पर तानसेन ने अत्यन्त मोहक चित्र उपरोक्त ध्रुवपद में प्रस्तुत किया है।

तानसेन एक अन्य ध्रुवपद में मानिनी की तिरछी चितवन का वर्णन करते हुये तानसेन हैं-

"त्रिवेणी उलटि बहीं मानी तिरछी चितवन त्रीआ पीआ तन देषौं।
त्रिवेणी गंगा सलिता को संग लीयें सागर सों कहु अनयन देषौं।।

कैधौं, कहू पतितन घेरी कैधौं कहू पाप मोछ कैधौं वौहौराइवे के ठनगून देषौ।

तानसेनि कौ प्रभु मोहिनी सी पढ़ि डारत कैघौं कहू जाने संकर मुनि देषौ।।"

उक्त पद में आँखों को त्रिवेणी कहना कोई विशेष बात नहीं किन्तु स्वकीया मानिनी की तिरछी चितवन के रूप में उस त्रिवेणी को उल्टी बहा देना एक अनूठी उत्प्रेक्षा है। नायिका जो कि स्वकीया है पतिव्रता है, उसके पति को सागर बताकर त्रिवेणी के अवरोध में जिस प्रकार औचित्य दिखाया है वह प्रशंसनीय है। यद्यपि त्रिवेणी सागरोन्मुखी है किन्तु यदि पतित उसे घेर ले तो उसे एक क्षण के

लिये ठहरना होगा। यदि कुछ पापी मुक्त करने से रह गये हों तो उनके लिये पीछे लौटना होगा। संदेहालंकार के द्वारा त्रिवेणी और नायिका के व्यापारों में सादृश्य प्रतिष्ठित करके तानसेन ने पतिव्रता की मर्यादा को सुरक्षित रखा है।

इन्हीं उत्कृष्ट उक्तियों पर राजा रामचन्द्र बघेला ने उन्हें एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें दी थीं जो उचित प्रतीत होता है।

अकबर के युद्ध अभियान में साथ रहे तानसेन ने अपने ध्रुवपद में वर्षा ॠतु में आकुल बिरहिणी के मुख से मेघों और कामदेव की सेनाओं की साम्यता का वर्णन भी किया है।

उपर्युक्त क्षेत्र से हटकर तानसेन ने स्वान्तःसुखाय जो रचनायें की हैं वे भी उनकी काव्य कुशलता का परिचायक हैं। निम्नांकित ध्रुवपद में कृष्ण के विरह में आकुल गौओं का स्वाभाविक वर्णन इस प्रकार है-

"कान तेरैं बिन देषै गईयां काजर पीअरी धौरी धूमरी दूबरी।
और ग्वाल पैहैंचानत नाही, अधरनि दसनि तिरन चरत जह षाप लीयौ है कूबरी।
ऐकनि तजे षान ऐकनि तजे प्रांन ऐक रही सूषि सूषि री।
तानसैंनि को प्रभू वेगि आंमन कीजै कब दैहौ हेरी ऊबरी।"

तानसेन की शैली आडंबरहीन व मनोरम है। प्रस्तुत उदाहरणों में प्रसादगुणयुक्त भाषा का दर्शन होता है। विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है किन्तु इस्लाम, पीर इत्यादि विषयों के ध्रुवपदों में अरबी व फारसी शब्दों का अपभ्रंश रूप भलि-भाँति परिलक्षित होता है। राजाओं के पराक्रम व प्रशंसा वाले ध्रुवपदो में ओज गुण के दर्शन होते है। तानसेन ने अपने ध्रुवपदों में दशहरा और ईद जैसे त्योहारों का भी वर्णन किया है। अकबर के

ब्रजमण्डल आगमन अथवा इलाहाबाद से सम्बन्धित भी कुछ ध्रुवपद इन्होंने लिखे हैं। इनकी रचनाओं से उस समय के श्रृंगार की शैली का पता चलता है।

तानतरंग –

इनकी रचना का विषय कृष्णलीला एवं संगीत है अपने पिता तानसेन का वास्तविक उत्तराधिकारी इन्हें कहा जा सकता है। ध्रुवपद शैली की दृष्टि से इनकी रचनायें प्रौढ़ कही जा सकती हैं, किन्तु अभी ये अधिक परिमाण में प्राप्त नही हुई हैं। भाषा सरल व प्रावाहपूर्ण है। वर्ण विषय को मूर्त रूप देने में ये अत्यन्त कुशल हैं। इनके एक ध्रुवपद में कोई ग्वालिन प्रतिदिन दान माँगने वाले कृष्ण पर अत्यन्त स्वाभाविक रूप से झुंझला रही है। यह झुंझलाहट व 'खीज' वस्तुतः 'रीझ' का एक बड़ा ही सुन्दर रूप प्रकट करती है। यह छेड़-छाड़ उसे अत्यन्त प्रिय है यह उसका सौभाग्य है। रचना इस प्रकार है-

"सूघेई मागि लैहो दानं।
हम पर जाति को रहौ न नातौ,
बातें काहे कों बनावत राषौ जू अपनो ग्यान।
ऐसी छल बल की बतीआ काहे को करत हौ जू,
जैसी न देषी सुनी कहूं कांन।
'तान तरंग' प्रभू अपने ही गो को करत,
मानता न काहूं की आंन।।"

भाषा अत्यन्त सरल, प्रसादगुणयुक्त और मुहावरेदार है।

विलास खाँ –

तानसेन के इस प्रसिद्ध उत्तराधिकारी ध्रुवपदकार की रचनाओं का विषय भी कृष्णलीला व संगीत है। प्राप्त रचनाओं के आधार

पर ये अच्छे ध्रुवपदकार सिद्ध होते हैं। एक ध्रुवपद में इन्होंने अज्ञानियों को प्रेरणा दी है कि यदि राग, रंग, अक्षर और तान सीखना है तो तानसेन जैसे ज्ञानी गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। संगीतजीवी कलाकार साधु (फकीरों) गायकों को प्रमाणित गायक नहीं मानते, इसका भी इस पद के तृतीय चरण में संकेत है।

कौन भ्रम भूल्यो रे मन अज्ञानी,

सीखत न राग रंग तान अक्षर सुधबानी।

और स्वारथ सों जनम गंवाये,

विद्या बात अधिक सयानी।

जे साधु गुणी भए तिन कौन गुन की मत ठानी।

विलास के प्रभू को जो भलो चाहत

तो मिलाओ तानसेन गुरु ज्ञारी।

भक्तिकाल में छब्बीस अन्य ध्रुवपदकारों का भी पता चलता है।

रीतिकालीन ध्रुवपदों का मूल्यांकन :-

भक्तिकाल की समाप्ति के साथ-साथ ध्रुवपद का स्वर्णयुग भी समाप्त हो गया और रीतिकाल का आरम्भ हुआ। जो ध्रुवपदकार शाहजहाँ के काल में वैभव व सम्मान का उपयोग कर रहे थे उन्हें औरंगजेब के शासनकाल के अदिम दस वर्षों के पश्चात्, आजीविका के लिये छोटे मोटे गढ़पतियों और जमीनदारों का मुँह देखना पड़ा। औरंगजेब की मृत्य के पश्चात् मुगल साम्राज्य और उसके उत्तराधिकारियों का प्रताप क्षीण होता गया। बहादुरशाह, जहाँदारशाह, फर्रूखसिया सभी अस्थिर रहे इनके दरबारों में कलाकारों को अपने पूर्वजों जैसी निश्चिन्तता एवं वातावरण न मिला। मोहम्मदशाह ने

उन्नीस वर्ष राज्य किया। इनके दरबार में सदारंग, अदारंग जैसे ध्रुवपदकार हुये। परन्तु उस समय वेश्याओं का प्रभाव बढ़ गया था। अहमदशाह, आलमगीर (द्वितीय) व शाहआलम के समय ध्रुवपदकारों की स्थिति क्षीण होती गयी।

नवाब वाजिद अलीशाह के मुसाहब मुहम्मद करम इमाम ने सांगीतिक दृष्टि से उस काल का जो चित्रण किया है, वह ध्रुवपद के दयनीय स्थिति की कहानी कहता है। मुहम्मद करम इमाम के शब्दों में- 'इस युग में ख्याल ध्रुवपद, होरी इत्यादि का गाना अत्यन्त अल्प मात्रा में अवशिष्ट रह गया है और वह भी जैसा होना चाहिये वैसा नहीं। अमीरों और रईसों में आजकल ठुमरियाँ पसन्द की जाती हैं। और वे लोग उनके खब्त में फँसे हुये हैं, 'मनुष्य लुप्त हो गये और ईश्वर की सृष्टि गधों की गिरफ्त में आ गई।'

कुछ ध्रुवपदकार जैसे- चेतनसिंह राजबहादुर, प्रेमदास, गुलाब इत्यादि इस युग में ऐसे ध्रुवपदकार हुये हैं जिन पर हम कुछ अंशों में गर्व कर सकते हैं।

खुशहाल खाँ कलावन्त –

ये उन ध्रुवपदकारों में हैं, जिन्होंने भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि देखी है। तानसेन के दौहित्र लाल खाँ के पुत्र होने के कारण ये मुगल शासक शाहजहाँ और औरंगजेब के दरबार में उच्च पद पर आसीन् थे। तानसेन और उनके वशंज अपनी परम्परा के अनुसार, अपने आश्रयदाताओं के नाम से अंकित ध्रुवपदों की रचना किया करते थे। शाहजहाँ व औरंगजेब की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद इन्हीं की रचनायें हैं। आदिम तेरह वर्षों तक इन्हें औरंगजेब का आश्रय प्राप्त रहा। इनकी रचना के विषय अभिषेक, वर्षगाँठ जैसे उत्सव, नौरोज और बसन्त जैसे त्योहार पराक्रम, प्रताप, प्रशंसा, और

नायिका भेद रहे। शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित मानिनी का एक चित्र इस प्रकार है -

"बैठी री कर पै कपोल धरे रीजीयें दुचिती,

अनमनी आज पिया सों कछु अनमनी

रूठी सी रूठी से आंननि विलषी सी मनु भारे तामस कीये,

मानत न काउ को कहौ सकल त्रीअनि में तूहि मन मानी।

साहिजहाँ पीअ तेरै रस बस भए वे बना तू बनी।।"

प्रस्तुत रचना में थोड़े से शब्दों के द्वारा मानिनी के बाह्य व अन्तर दोनों का चित्रण किया गया है। एक ओर 'बैठी री कर पै कपोल धरे' व 'रूठी सी आंनानि विलषी सी' के द्वारा नायिका के बाह्य मूर्त रूप का वर्णन है। वहीं दुचिती, 'अनमनी', 'मनु मांरे', 'तापस कीये', के द्वारा मानिनी के अन्तर का वर्णन है।

साथ ही "मानत न काऊ को कहौ" कहकर रूपगर्विता तथा 'तेरे रस बस भए' वे बना तू बनी कहकर उसे स्वाधीन पतिका के रूप में चित्रित किया गया है। भाषा विशुद्ध, सरल, प्रवाहमयता और प्रसादगुणयुक्त है।

इनका एक अन्य ध्रुवपद औरंगजेब की मुद्रा से अंकित है। उसमें अनुपम चौपड़ की प्रस्तुति की गयी है -

"तैं तौ आयु ही मैं बनाई अनूपम चौपरि ऐ।

रूप जोबन गुन वानिक विसाति माघ वसीकान।

घर कीनौं फुनि दीनौं त्रविधि कटाछि पांसे करि।

वौ सुम दाँव षतन तोही कौं फुरेरी औरनि के,

चौक चाक वांधि वांधि चतुर वतीआं कीनी जाही ते पूजी सार

सौतनि सों वाजू पीअ जीति लीनि

साहि औरंगजेब रीझि रूचि सौ कंठ लगाई भुज कर।"

रचना में सांगरूपक अलंकार है, जो कई स्थानों पर श्लेष से अनुप्राणित है। 'नौं', 'दाँव', 'चौक-चाक', 'पूजी-सार' इत्यादि अभंग श्लेष की सृष्टि कर रहा है। उक्ति में सरलता और प्रवाह है।

सदारंग –

ये मुहम्मदशाह के दरबार में रहे। इनकी रचनाओं का विषय संगीत, नायिका भेद, और होली है। मुहम्मदशाह की मुद्रा से अंकित रचनायें भी इन्हीं की कही जाती हैं। इनके निम्नांकित ध्रुवपद में इन्होंने नवोढ़ा स्वकीया का चित्र अंकित किया है —

"कोउ तो मोहि बताओ री पीअ सो मान करिवे कौ ढवा।

पैं अैसे कीजे जामैं नैंक मलीन न होवे और अपनी हूँ बात रहौ सब।

उनिकी कहा कहौ वे तो निपट प्रवीन रसिक लाल,

देखि रहे अनेग जोषिनि की फरकनि तिनि सों छिपि सकै कब।

यह भूल मो मन आई गई तातें सदारंग पीअ सों,

रिस हूँ में व रूसीअै कबहूँ अब जब तब।"

यहाँ पर सदारंग ने नवोढ़ा के हृदय का वास्तविक चित्रण किया है। जो मान तो करना चाहती है पर उसकी रीत नहीं जानती है। वह अपनी बात भी रखना चाहती है और साथ ही मन भी मैला न हो, प्रियतम की भूलों को क्षमा करती है। वह अपने प्राणधन से कोप की अवस्था में भी रूठना नहीं चाहती। भाषा सीधी-सादी, मुहावरेदार है। जो कि नवोढ़ा के हृदय का चित्र हमारे

सामने प्रस्तुत करती है। इन्होंने अलंकारों का ज्यादा प्रयोग नहीं किया है।

अदारंग –

ये भी मुहम्मदशाह के आश्रय में रहे। इनकी रचना का विषय पीरो की प्रशंसा, नायिका भेद, संगीत, और होली वर्णन है। अपने ध्रुवपदों में इन्होंने मुहम्मदशाह और आलमगीर द्वितीय की स्तुति की है। तानसेन परम्परा का प्रभाव व विशिष्टता इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। होली विषयक इनकी एक रचना इस प्रकार है –

"अरगजा गुलाल ले केसरि रंग पिचकारी भरि भरि छोड़त।

अतर गुलाब और चोवा चंदन पीअ मुष मींजत वनि वनि

वनिता सो तब वेहू लात मिलि भऐ गुपित गांठ टकटोरत।

लाज सकुच छड़ि दीनी लोगनि की जब ऐक ऐक कीं जो बस करि रस में वोरत।

कहा कहौं समयौ अति सुंदर सदारंगीले ऐ नोंला सी तिनकों भुज भेंटत कुचहि मरोरत।

महा कौ मतवारौ अदारंग करि दौर गरवहीआं डरत मसकोरत।

ऐ सषी री याह वौहौत दिननि कौ विछुरौ मिलौ यावे फागु प्रीति वाहन जुरत।"

कवि गोपाल अपचल, मियाँ ज्ञानी, कृष्णानन्द रागसागर अदारंस, अदिराहन, तानबरस नूररंग, प्रेमरंग वाणीविलास, सबरंग, इत्यादि अनेक रीतिकालीन समर्थ ध्रुवपदकार हुये हैं जिनमें से कुछ के केवल रचनायें प्राप्त होती हैं परिचय नहीं।

विक्टोरिया का शासन प्रारम्भ होने पर इन ध्रुवपदकारों को देशी नरेशों का आश्रय लेना पड़ा। और इन देशी नरेशों पर पाश्चात्य सभ्यता का जैसे-जैसे प्रभाव बढ़ता गयी वैसे-वैसे संगीत राजदरबारों से दूर होता गया। इस युग में तो ध्रुवपद गायक हुये पर कोई उल्लेखनीय ध्रुवपदकार नहीं हुये। रामपुर जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर में तो ध्रुवपद की लकीर ही पीटी जाती रही। अनेक ध्रुवपदकार प्राचीन रचनाओं का अर्थ न समझने के कारण भ्रष्ट रूप से चिल्लाते रहे। उनका झुकाव तो केवल सांगीतिज्ञ चमत्कारों की ओर था, न कि उनके शुद्धता की ओर। ये वाक्य के अर्थ की पूर्व अपेक्षा करते रहे। लम्बादेर को लम्बूधरों कहना, हर विनायक को हर विन नायक कहना उनकी कपाल क्रिया का ही परिणाम है।

वर्तमान समय में गीतकारों की कमी नहीं है अपितु गेय तत्व मर्मज्ञ वाग्गेयकारों का सर्वथा अभाव हो गया है जो साहित्यिक व सांगीतिक दोनों पक्षों से अवगत हो और वाग्येकार की कसौटी पर खरे उतरे।

ब्रजभाषा के ध्रुवपदकार –

गोपाल नायक (प्रथम) –

बारहवीं शती ई0 के बाद के संगीज्ञों में इनका नाम उत्तर तथा दक्षिण दोनों में अत्यन्त आदरपूर्वक लिया जाता है। अनुश्रुतियों के अनुसार,ये दक्षिण के रहने वाले थे, परन्तु इसका कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

गोपाल के साथ 'नायक' शब्द जुड़ा है जो उनकी विशिष्टता का घोतक होगा। क्योंकि 'रागदर्पण' के अनुसार,"नायक वे लोग थे जो इल्म को अमल में लाते थे।" नायक शब्द का प्रयोग छोटे राजा के अर्थ में होता है। ये राजा संगीत के माने विद्वाने भी होते

आये हैं। ताली-कोटा युद्ध में विजयनगर साम्राज्य बिखर जाने पर विभिन्न इकाइयों के प्रतिनिधि स्वयं राजा बन बैठे। उनको नायक राजा कहा जाता था। अतः सम्भव है कि गोपाल छोटे-मोटे नरेश हों, क्योंकि 'रागदर्पणकार' में कहा है, कि गोपाल नायक के साथ उनके सोलह सौ शिष्य रहते थे, जो उनकी पालकी उठाते थे अतः ये स्थिति साधारण संगीतज्ञ के लिये सम्भव नहीं जान पड़ती।

विजयनगर के यादव-वंशीय नरेश इम्मडिदेव (राज्यकाल सन् 1446 से 1465 ई0) के आश्रित कल्लिनाथ ने "संगीतरत्नाकर" की टीका में गोपाल नायक का नाम आदर के साथ लिया है और उन्हें 'प्रबन्धकार' के रूप में बताया है।[1] अर्थात् पंद्रहवीं शताब्दी में गोपाल नायक का नाम देश में प्रसिद्ध हो चुका था। सत्रहवीं शती ई0 में दक्षिण के संगीत ग्रन्थकार व्यंकठमुखी में भी 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में गोपाल नायक का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ने संगीत का कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा था जो इस समय अप्राप्य है। "रागदर्पण" (1662) में फकीरूल्लाह ने गोपाल नायक को अलाउद्दीन खिलजी के काल में, अखिल भारतीय ख्याति लब्ध संगीतज्ञ बताया है। उनके सोलह सौ शिष्य थे जो अपने कन्धों पर उनकी पालकी उठाते थे। सम्राट अलाउद्दीन द्वारा निमन्त्रित किये जाने पर उनकी में छः विभिन्न गोष्ठियों में गोपाल नायक ने अपने विभिन्न रागों को प्रस्तुत किया। उस समय खुसरो उनके तख्त के नीचे छिपे रहते थे। सातवें दिन प्रकट होकर गोपाल से अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करने को कहा और दावा किया कि गोपाल के समस्त रागों का आविष्कार मैं पहले कर चुका हूँ।

---

1. स0र0 'प्रबन्धाध्याय' - पृ0 283

इस तथ्य को पूर्णतया सत्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि अलाउद्दीन की मृत्यु सन् 1316ई0 में हुई, जबकि 'रागदर्पण' की रचना 345 वर्ष बाद हुई। ये हो सकता है कि रागदर्पण रचना काल में खुसरो-गोपाल मिलन की किवदन्ती अवश्य प्रचलित रही होगी। अलाउद्दीन की प्रशंसा में गोपाल नायक का निम्नांकित पद प्राप्त होता है -

"धकदलन रे प्रबल्ल नाद सिंघ नाद बल अपबल वक्कवर।
कुडांन धीर अडांन मिलवत चपल चाप अपचल अक्कअर।
गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर।
साहिनिसाहि अल्लावर्दी तपै डिलीनरेस जाके वसुधा सुचित तुअ तक्कघर।"

अर्थात् अपने प्रबल गर्जन से सहसा दलन करने वाला, सिंह के समान नाद और बल से युक्त, अपने बल के कारण बाँकुरो में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली (शत्रुओं) को वह उनकी छावनियों से मिला देता है (भगा देता है) उसका धनुष चपल रहता है और वह महान, अचपल (स्थिर) रहता है। विद्या में श्रेष्ठ नायक गोपाल (उसकी प्रशंसा में) गीत गाता है। दिल्ली नरेश शहंशाह अलाउद्दीन प्रतापयुक्त हो रहा है। पृथ्वी जिसके अधिकार में है इस तथ्य को तू भली भाँति देखकर हृदय में धारण कर ले।

'तपै', 'मिलवत', 'गावत', 'जाके', ब्रजभाषा के शब्द हैं। वक्कवर, अक्कअर, तक्क आदि चारणों की अपनी शैली है। अल्लावदी अलाउद्दीन का अपभंश है।

"रागदर्पणकार" इस कथन की पुष्टि करता है, कि गोपाल नायक अलाउद्दीन के सम्पर्क में आये, पर कब आये? कब तक रहे? उनका दरबार में क्या स्थान था इसकी जानकारी नहीं प्राप्त होती। व्यकंठमुखी का कथन है कि गोपाल नायक अपने विषय में कहते हैं

कि 'श्रुतियाँ', (संगीत-प्रयोज्य स्वरों के भाग-विशेष) मै ही जानता हूँ। अतः इस कथन से यह ज्ञात होता है कि गान को 'आलाप', 'ठाय', 'गीत', और 'प्रबन्ध', में गोपाल नायक ने वर्गीकृत किया था। ये चारों 'चतुर्दण्डी' कहलाये।

बैजू –

बैजू की गणना मध्यकालीन संगीतज्ञों में की जाती है ये 'मानसिंह तोमर' (राज्य काल सन् 1486-1516 ई0) के दरबारी गायक थे। मानसिंह तोमर के कृतित्व में इनका महान योगदान रहा। मौलाना अर्शी ने इन्हें मानसिंह तोमर का दरबारी गायक बताया है। किन्तु मानसिंह द्वारा रचित 'मानकुतूहल' में सहयोगी गुणियों में इनका नाम नहीं है, अतः हो सकता है कि ग्रन्थ की रचना से पूर्व किसी कारण से बैजू ने मानसिंह का दरबार छोड़ दिया हो। इसके अतिरिक्त अबुल फजल ने भी मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् ग्वालियर, गुजरात पहुँचने वाले कलाकारों में इनका नाम नहीं लिया है, जबकि मौलाना अर्शी कहते हैं, कि इन्होंने यह अपने अहद (युग) के कलावन्तों के सरदार माने जाते थे और बैजू बावरा के नाम से विख्यात थे। गुजरात के इतिहास में 'मिराति सिकन्दरी' में कहा है कि बैजू गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के आश्रित थे। कहा जाता है कि इसने लोहारों की भट्टी झोंक-झोंक कर गुजर की और फन सीखते रहे ताआं (यहाँ तक) कि माहिर मूसीकार (निपुण संगीतज्ञ) बन गये।

मानसिंह तोमर की मृत्यु (1516ई0) के पश्चात् जब बैजू गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के आश्रय में थे मुगल बादशाह हुमायुँ ने गुजरात के माँडौ शहर पर विजय (सन् 1535ई0) प्राप्त कर ली उसी समय हुमायुँ की बैजू से साक्षात्कार हुआ। हुमायुँ ने उन्हें अपना विशिष्ट सभासद बनाया व अनेकों पुरस्कार दिये। कुछ

समय पश्चात् बैजू पुनः बहादुरशाह के पास चले गये। बहादुरशाह के दरबार में गोपाल (द्वितीय) भी थे जो बैजू के शिष्य थे। बैजू के अनेक ध्रुवपद गोपाल को सम्बोधित करते हुये हैं। 'मिरात सिकन्दरी' के अनुसार,,, गोपाल बहादुरशाह गुजराती के युग में सम्मान पूर्वक रहे। यह बैजू के सेवक और शिष्य रहे। ऐसे अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते हैं जिसमें बैजू ने गोपाल नायक की भर्त्सना की थी और उसे अभिमान रहित होने के लिये कहा था। एक किवदन्ती के अनुसार, बैजू का जन्म गुजरात के अन्तर्गत् चाँपानेर में हुआ था।

बैजू और गोपाल नायक के प्रतियोगिता की तथा बैजू के सांगीतिज्ञ चमत्कार की अनेक किवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। उन किवदन्तियों के आधार पर हमें निम्नांकित ध्रुवपद प्राप्त होता है -

"विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल।
रंगमहल में दोउ जुरि बैठे रीझि मृगन दइ भाल।
सात गुपत सात प्रगट चौदह डाँडो बाँधि आये नाइक गोपाल।
बैजू के गाये तें भूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूड़े ताल।"

कहा जाता है कि गोपाल ने गाकर हिरनी को बुलाकर उनके गले में मालाएं पहना दीं। हिरन चले गये बैजू ने गाकर उन हिरनों को पुनः बुलाया मृगों ने रीझकर मालायें दे दीं। तब बैजू ने गाकर पाषाण पिघला दिया और अपने मजीरे उसमें गाड़ दिये जो पत्थर में जमकर रह गये। यह चमत्कार देखकर गोपाल (नायक) ने बैजू को अपना गुरु मान लिया।

बक्शू –

पाश्चात्वर्ती लोगों ने बक्शू को सदा नायक कहकर इन्हें सम्मान प्रदान किया है। इनके जन्मस्थान, पितृ-परम्परा, इत्यादि के

विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। मुहम्मद करम इमाम ने इन्हें 'ढारी' लिखा है। अबुल फजल के अनुसार,'ढारी' पंजाबी गीत गाने वले होते थे जो साथ में ढढ (एक अवनद्ध वाद्य) और किंगारा वाद्य बजाते थे। 'ढारी' लोग युद्धक्षेत्र में कड़खा भी गाते थे, जिसका प्रयोजन सेना को उत्साहित करना था। सम्भव है, बक्शू के पूर्वज ध्रुवपद गायक न हों और यह कला उन्होंने ग्वालियर में सीखी हो। बक्शू की जाति के विषय में अबुल फजल ने कुछ नहीं कहा है। ये मानसिंह तोमर के शिष्य थे और उनके कृतित्व में इनका पूर्ण सहयोग रहा। "मानकुतूहल" की रचना में जिन कलाकारों ने सहयोग किया उनमें इनका नाम प्रमुख रहा। "रागदर्पण", "मानसिंह और मानकौतुहल" में वर्णित है कि मानसिंह तोमर की मृत्यु के पश्चात् ये उनके पुत्र के पास रहे और जब ग्वालियर पर लोदी पठानों का अधिकार हो गया तो ये कांलिंजर के राजा कीरत के पास चले गये। गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने इनका यश सुनकर इन्हें राजा कीरत से मांग लिया। गुजरात दरबार में अपनी प्रतिभा द्वारा इन्होंने मानसिंह द्वारा आविष्कृत गान शैली को सर्वप्रिय बना दिया। यह शैली जनता के प्रत्येक वर्ग को आती थी।

बक्शू ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचनायें की थीं। इनके कुछ ध्रुवपद "रागकल्पद्रुम" में है। शाहजहाँ ने इनके ध्रुवपदों का संग्रह कराया जिसमें एक सहस्र ध्रुवपद थे। इनका तार स्वर अत्यन्त शक्तिशाली था। आलाप की एक विशिष्ट शैली पर इनका अधिकार था। इन्होंने ध्रुवपद की उत्कृष्टता को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। इनके गाने में सभी को प्रभावित कर देने की क्षमता थी चाहे वह नर हो अथवा पशु। 'तोड़ी' और 'देशकार' रागों के मिश्रण से इन्होंने एक राग का आविष्कार किया और बहादुरशाह के नाम पर उस राग का नाम 'बहादुरतोड़ी' रखाँ 'कान्हड़ा' और 'श्याम' के

मिश्रण से 'नायकी कान्हड़ा' का निर्माण किया। कल्याण में थोड़ा परिवर्तन कर 'नायकी कल्याण' की रचना की। बक्शू के पुत्र का नाम हुसेनी था। जो गुजरात के सुल्तान अहमद सानी के वजीर दरिया खाँ (1538-1554ई0) के आश्रय में रहे। हुसेनी अपने युग के बड़े गायक माने जाते थे।

तानसेन –

मुगल सम्राट अकबर के दरबारी गायक व नवरत्नों में से एक तानसेन को संगीत जगत में 'संगीत सम्राट' के नाम से जानते हैं। इनका जन्म ग्वालियर के निकट बेहट नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम मकरन्द था। इनके गुरु 'स्वामी हरिदास जी' थे।

तानसेन कृत ध्रुवपदों की संख्या जहाँगीर के अनुसार, सहस्रों हैं।[1] तानसेन के ध्रुवपदों में देवस्तुति, प्रताप वर्णन, कृष्ण भक्ति, ऋतु वर्णन, पर्वोत्सव, नायिका भेद, निराकार की भक्ति इत्यादि अनेक विषयों का निर्वाह हुआ है। तानसेन के कुछ ध्रुवपद उन पर दीन-ए-इलाही का प्रभाव सिद्ध करते हैं जैसे- एक ध्रुवपद 'घर घर कौन डोलता फिरे। घट (हृदय) से ज्ञान बोल रहा है अथवा अल्लाह ही गतिशील है। शाह अकबर ने मक्खन छीन लिया। अब मेरे यहाँ कौन छाछ बिलोता फिरे?'

मिश्रबन्धुओं ने "रागमाला", "संगीत सार" एवं "गणेशस्तोत्र" नामक तीन रचनाअें को तानसेन कृत बताया है। गणेशस्तोत्र उपलब्ध नहीं है। डॉ0 सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' में एक सौ बयासी (182) ध्रुवपद दिये हैं। अनेक ध्रुवपदों में पीर-पैगम्बरों का वर्णन है। ज्ञान भक्ति के ध्रुवपदों में ब्रह्म की

---

1. अकबर नाम: श्वं 2, पाद टिप्पणी पृ0 279

व्यापकता का वर्णन है। राजप्रशंसा के अन्तर्गत् राजा रामचन्द्र बघेला व सम्राट अकबर की प्रशंसा का वर्णन है। संगीत विषयक ध्रुवपदों में संगीत के विविध अंगों के नामों के बारे में और उससे सम्बन्धित अनेक रूपकों का कथन है। एक ध्रुवपद में संगीत की चार बानियों का वर्णन है। कृष्ण-लीला से सम्बन्धित ध्रुवपदों में कृष्ण की बाल और निकुंज लीलाओं के वर्णन के साथ वेणु वादन और होली का रसपूर्ण वर्णन है। नायिका-भेद सम्बन्धी ध्रुवपदों में नायिकाओं के रूप सौन्दर्य और विविध चेष्टाओं का वर्णन है।

तानसेन द्वारा रचित अनेकों ध्रुवपद या तो लिखित रूप में हैं या मौखिक रूप से घरानेदार गायकों को कंठस्थ है। 'राग कल्पद्रुम' में लिखित ध्रुवपदों का सबसे बड़ा संकलन है। 'नाद विनोद' तथा अन्य संगीत ग्रन्थों में भी तानसेन के ध्रुवपद मिलते हैं। इनके लगभग 300 ध्रुवपद प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु सभी की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं है। तानसेन के ध्रुवपद स्फुट रचनाओं के रूप में हैं जो अपने गायन के लिये इन्होंने रचे थे।

तानसेन के चार पुत्रों की चर्चा है। अबुल फजल ने तानतरंग खाँ की गणना अकबर के प्रधान संगीतज्ञों में की है।[1] विलास खाँ की चर्चा बादशाहनामः में हुई है।[2] 'रागदर्पण' में भी विलास खाँ की तथा सूरतसेन व हमीरसेन की चर्चा है। तानसेन क पौत्र सोहिलसेन तथा प्रपौत्र सुधीरसेन की चर्चा भी रागदर्पण में हुई हे।[3]

तानसेन के शिष्यों में तानतरंग, सूरतसेन, विलास खाँ के अतिरिक्त मियाँचन्द, बख्त खाँ कलावन्त गुजराती का नाम उल्लेखनीय है।

---

1 Aine Akbari Bloch P 681-282
2 Aine Akbari . Bloch P 680, footnote (refrence to Badshahnama)
3. रागदर्पण, रामपुर प्रति नवां तथा दसवां भाग।

बाबा रामदास –

तानसेन के पश्चात् इनका नाम अकबरी दरबार के सर्वश्रेष्ठ गुणियों में था। बदायूँनी के अनुसार, ये अकबरी दरबार के अवशिष्ट गुणियों में में सर्वश्रेष्ठ थे। ये इस्लामशाह अदली के आश्रय में रहे और बदायूँनी के अनुसार, उनके शिष्य भी रहे। इनके पुत्र सूरदास अकबरी दरबार में थे। ये 'रामदासी मलार' के आविष्कारक कहे जाते हैं।[1] अतः इनका ध्रुवपदकार होना असन्दिग्ध है।

सुरज्ञान खाँ –

अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में इनका चतुर्थ स्थान रखा है। सुरज्ञान खाँ या सुरजान खाँ इनकी पदवी थी। सुरजान से सुजान खाँ हो गया। कहा जाता है कि इन्होंने किसी बादशाह को दीपक राग गाकर सुनाया था। इनकी कुछ रचनायें प्राप्त हैं।

रूपमती –

यह मालवा की प्रसिद्ध नगर सुन्दरी थीं। बाजबहादुर की प्रसिद्ध प्रेयसी थीं। "रामगकल्पद्रुम" पर रूपमती से सम्बन्धित ध्रुवपद मिलते हैं।[2]

धौंधू –

फकीरूल्लाह ने अकबरी युग के साक्षर कलाकारों में धौंधी नामक कलाकार की चर्चा की है। 'दौ सौ वैष्णवन की वार्ता' में भी धौंधी की चर्चा है। बल्लभ सम्प्रदाय में 'धौंधी' के पद मिलते हैं। अतः 'धौंधू' व 'धौंधी' का एक व्यक्ति होना सम्भव है।

---

1. पं० भातखण्डे - सगीत-शास्त्र, चौथा भाग, पृ० 402
2. 'रामगकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० 174 एवं 183

ज्ञानगुरू –

(गुरुज्ञान) "रागकल्पद्रुम" के प्रथम भाग में पृ0 132 व 351 पर इसके दो ध्रुवपद प्राप्त होते हैं। हरिदास डागुर के एक ध्रुवपद में 'ज्ञानगुरू ऐसे कहे' कहकर उनकी चर्चा की गई है।

हरिदास डागुर –

संगीत जगत में इनका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। जगन्नाथ कविराय ने इनकी गणना तानसेन तथा धोंधू के बाद की है। कुछ लोग स्वामी हरिदास तथा हरिदास डागुर को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परन्तु वृन्दावनवासी स्वामी हरिदास जी और हरिदास डागुर की भिन्नता सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है। इनका एक ध्रुवपद इस प्रकार है–

"कै लियो नादगढ़ महा आतंग आरोही अवरोही अस्ताई संचाई महाविकट निपट अति। छः राग गुरज भये तीस भार जाके कोट इकईस मूर्च्छना बाइस सुरति के कंगूरा तीखे नीके लागत। सप्तसुर सप्तपुर औडव खाडव किवार तीनि ग्राम परकोट ओला गोला बनि। धुरपत की चारों तुके चतुर दिसां को चिनोती दिये अैसों वांको कीनों नो रंग जल भरि राषौ कठं गुनिनि करि रिसाल लागत। हरिदास डागुर ज्ञानगुरू ऐसे कहैं लरि लरि पचि पचि अटूट टूरन जात मेरे जानं वे रीझे प्राननि।"

तानतरंग खाँ –

ये तानसेन के पुत्र थे। अबुल फजल के अनुसार,ये अकबरी दरबार में थे। परिशिष्ट अ में इनकी ध्रुवपद रचनायें (सं0 75-76) संकलित है।

विलास खाँ –

ये तानसेन के द्वितीय पुत्र थे। जहाँगीर ने 'गुनसमुन्दर खाँ' की उपाधि इन्हें दी थी। 'रागकल्पद्रुम' प्रथम भाग पृ0 107, 121, 127, व 129 में इनकी रचनायें संगृहीत हैं। 'रागमाला' के पृ0 42, 9, 65 अ पर इनकी रचनायें हैं।

स्वामी हरिदास –

आपका जन्म सन् 1480ई0 में माना जाता है। कुछ विद्वान इन्हें श्री आसधीरजी का पुत्र, सारस्वत ब्राह्मण एवं हरिदास पुर में उनका जन्म मानते हैं। जिसका प्रमाण हरिदास जी के समकालीन भक्त कवि व्यास जी, विहारिणिदासजी, नाभा जी, लालस्वामी, परवर्ती विद्वानों में वृन्दावनदासजी, ईश्वर सिंह जी ने स्पष्ट रूप से दिया है। स्वामी हरिदास दीक्षा गुरू श्री आसधीरजी ही माने जाते हैं। स्वामीजी के सिद्धान्त और उपासना प्रणाली के आधार पर हम कह सकते हैं, कि वे स्वतन्त्र पथ के अनुगामी थे। उन्होंने 'सखी सम्प्रदाय' का प्रवर्त्तन किया था। भक्त कवियों में श्री स्वामी हरिदास जी को ध्रुवपदकार कहा जाता है। शिल्प की दृष्टि से इनकी रचनायें विष्णुपद की शैली में आती हैं।

इनके अतिरिक्त व्यासजी, चंचलदास, मदनराय ढारी, चरजू, लाल, गंग, सूरदास, आनन्दप्रभु, इन्द्रजीतसिंह धीरज, जगन्नाथ कविराय, शेख बहाउद्दीन, शेख पीर मुहम्मद जैसे प्रसिद्ध ध्रुवपदकार हुये।

रीतिकालीन ध्रुवपदकार :–

सन् 1658ई0 में औरंगजेब मुगल सम्राट बना। अपने शासन के 11वें वर्ष में उसने कवियों और गायक-वादकों को दरबार से हटा दिया। निरन्तर युद्धों के कारण मुगल राजकोष नष्ट हो गया, आर्थिक

ढाँचा बिगढ़ गया परिणामस्वरूप इस बिगड़ी परिस्थिति का शिकार सांस्कृतिक व सामाजिक स्थिति भी बनी।

औरंगजेब के विभिन्न शहजादे और सामन्त किसी न किसी रूप में गायकों वादकों और ध्रुवपदकारों को आश्रय देते चले आ रहे थे। किन्तु कलाकारों की प्रतिभा कुछ कुण्ठित सी हो गयी थी। ऐसी अवांछनीय एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में ध्रुवपद परम्परा समाप्त नहीं हुई और सदारंग जैसे ध्रुवपदकार उत्पन्न हुये, जो आने वाली पीढ़ियों के लिये सिद्ध हुये। रीतिकालीन ध्रुवपदकार निम्नलिखित हैं -

किशन खाँ कलावन्त –

ये भी शाहजहाँ के दरबार में थे बाद में सुल्तान शुजा ने इन्हें शाहजहाँ से मांग लिया था। इनकी रचनायें अप्राप्य हैं। इनकी मृत्यु बंगाल में हुई थी।

मियाँ डालू ढारी –

इन्होंने अनेक ध्रुवपदों की रचना की। 'डारू' नाम से एक ध्रुवपद "रागकल्पद्रुम" प्रथम भाग पृ0 192 पर है जो शैली और वर्ण विषय के आधार पर इनका ही माना जा सकता है।

सुधीरसेन –

ये सोहिलसेन के पुत्र और मियाँ तानसेन की प्रपौत्र थे। इनकी रचनायें भी अच्छी होती थीं। इस समय इनकी रचनायें प्राप्त नहीं हैं।

नायक पूरन –

इनका एक ध्रुवपद जिसमें औरंगजेब की प्रशंसा की है रागकल्पद्रुम में पृ0 50, 109 पर है और एक अन्य ध्रुवपद (तत्रैव पृ0 290) में सरस्वती की स्तुति है।

बिसराम खाँ –

ये विलास खाँ के दौहित्र और लाल खाँ कलावन्त के पुत्र थे। ये शाहजहाँ के दरबार में थे, जहाँ इन्हें बहुत प्रसिद्धि मिली[1] ये औरंगजेब के भी आश्रित थे।[2] इनकी मृत्यु सन् 1671ई0 में हुई।

भूपत –

ये बिसराम खाँ के पुत्र थे। रमपुरा नरेश छत्रसिंह की प्रशंसा में इनके ध्रुवपद प्राप्त होते हैं।

सदारंग –

इनका नाम नेमत खाँ था। सदारंग इनका उपनाम था। संगीत जगत में इनके नाम को बहुत प्रसिद्धि मिली। ये ध्रुवपदकार एवं गायक होने के साथ ही वीणावादक भी थे। मुअज्जमशाह (बहादुरशाह) के आश्रय में रहने के पश्चात् जहाँदारशाह के दरबार में इनका विशिष्ट स्थान था। इसके पश्चात् ये मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में रहे इनका बहुत सम्मान हुआ। इनके द्वारा रचित अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते है।[1] इन्होंने ख्यालों और तरानों की भी रचना की जो अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। मुहम्मदशाह के राज्यकाल में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने तत्तारी कव्वाल, बंगाली नटवा और देवदत्त कवीश्वर तथा अन्य संगीत मर्मज्ञों से संगीत की शिक्षा ली थी।

अदारंग –

इनका असली नाम फिरोज खाँ था।[2] अदारंग इनका उपनाम था। ये सदारंग के शिष्य व जमाता थे। ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ

---

1. आजकल, म्यू0 न0 पृ0 108

2.आजकल, म्यू0 न0 पृ0 108, मिराति आफताबनुम, 390 ब।

1. परिशिष्ट आ 111, 119

2. मिराति आफताबनुम पृ0 392,आजलक म्यू0 नं0 पृ0 108

गायक उच्चकोटि के वीणावादक थे। ध्रुवपद, ख्याल तथा तराना इन सभी की रचना करने में ये सिद्धहस्त थे।[3] मुहम्मदशाह रंगीले की प्रशंसा में इनकी अनेक रचनायें प्राप्त होती हैं। आलमगीर सानी की प्रशंसा में भी इनके ध्रुवपद प्राप्त होते हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि अदारंग इनके युग (1759ई0) तक जीवित रहे। जबकि मुहम्मदशाह ने 1748ई0 तक राज्य किया।

मनरंग –

ये सदारंग के पुत्र थे तथा प्रसिद्ध ध्रुवपदकार थे। इन्होंने ध्रुवपद होरी तथा ख्याल की रचना की। 'रागमाला' मे इनका एक ध्रुवपद प्राप्त होता है जिसमें 'मुहम्मदशाह' का वर्णन है जो इस प्रकार है:-

> *"ताहि बदौ रीझि रिझाई पिअ कौं मेरे जान गाई बजाई ग्यान करि और सुरतार।*
>
> *फुनि नृप धाई राग धाई परकीरन जे मनरंग' ऐसी कौन विद्या और जानते सब अंग अंग प्रकार। जा भुअलोक की कहा कहौ जे इन्द्रलोक कहिअत सुनिअत नारद तुम्बर कमलासी पातुर एहो नाही तुअ सम हिय जिय सोच करौ विचार। सर्व कला सम्पूरन साहि जलाल मोहम्मद एक रचौ मद संसार।"*[1]

परिशिष्ट आ में मनरंग की रचानाएँ ध्रुवपद-सं0 128-129 में संकलित है।

इंछाबरस –

इंछाबरस मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में थे। इनकी अनेक रचनायें प्राप्त होती है जो "रागकल्पद्रुम" में संकलित है। इनकी

---

[3]. उपरिवत्

[1] 'रागमाला' - पृ0 123 आ

कुछ रचनाओं में मुहम्मदशाह की प्रशंसा है। इनकी एक रचना में अमीर खाँ की प्रशंसा का वर्णन है।

उपरोक्त रीतिकालीन ध्रुवपदकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य ध्रुवपदकार भी हैं जिनके नाम इस प्रकार है-

सवाद खाँ ढारी, खुशहाल खाँ कलावन्त, किशनसेन, नायक अफजल, मुबारक, कसबकुव्वतधारी गुलाम मुहीउद्दीन, प्रेमदास, पूजा, रहीमदाद ढारी, मधुनायक, मुहम्मद बाकी, रसबीन खाँ, मिसरी खाँ ढारी, सालिम खाँ डागुर, प्रेमदास चेतसिंह, राजबहादुर, शेखमीर, कृष्णानन्द रागसागर, देवीदत्त, शम्भु, गुलाब, आलम मियाँ ज्ञानी, अपचल, कवि गोपाल इनमें से अनेक ध्रुवपदकारों की रचनायें अप्राप्य है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ध्रुवपदकार हैं जिनकी रचनायें तो रागमाला "रागकल्पद्रुम", "रागदर्पण" ग्रन्थो में उपलब्ध हैं, किन्तु इनका परिचय प्राप्त नहीं होता कि कौन किस काल में थे तथा किसके आश्रय में थे। ऐसे ध्रुवपदकार निर्मलिखित हैं:-

खेमरसिक, अदारस, नूररंग, प्रेमरंग, इश्करंग, आदिनराइन, मुरसद, महानादसेन, तानवर, तानवरस, जुगराजदास, राबरंग, रसरंग, लक्ष्मणदास, रामराय, वंशीधर।

भातखण्डे जी के अनुसार, रामपुर की ओर तानसेनी शिष्य परम्परा तथा पूर्व की ओर सभी स्थानों की ध्रुवपद परम्परा में ताल की खट-खट बिल्कुल नहीं है। पहले राग का सारा आलाप (नोमतोम) करने के बाद उसी राग का ध्रुवपद 'तालीमे बरहुक्म' (शिक्षानुसार) शुद्ध मुद्रा एवं शुद्ध वाणी रख कर गाना ही वहाँ की प्रथा है। वर्तमान समय में गायक तथा पखावजी की संगति का ध्रुवपद सुनने की बजाय प्राय: उनकी विसंगति या प्रतियोगिता का

ध्रुवपद सुनाई देता है। परिणाम में 'कौन हारा कौन जीता' ही होता है। संगीतानंद शून्य हो जाता है।[1]

सन् 1923ई0 में भातखण्डे जी ने कहा था- 'ध्रुवपद के दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि प्रकार हो सकते हैं। रामपुर की तानसेन परम्परा के ध्रुवपद गायकों के अनुसार,प्राचीन काल में दुगुन, चौगुन, बोलतान इत्यादि प्रकार ध्रुवपद में निषिद्ध थे। ये प्रकार केवल धमार गीत पर चलते थे। परन्तु आजकल प्रचार में दुगुन चौगुन और बोलतान ये प्रकार भी ध्रुवपद में पाये जाते हैं।'

ध्रुवपद ताल प्रधान गायकी है। जब इस गायकी में गायक जोर' आजमाई करते हैं तब गायक का श्वास, अंग, स्वर इत्यादि के सन्तुलन पर अधिकार नहीं रहता, अंग प्रत्यंग को लय की कुश्ती से झिंझोड़ डालने के कारण संगीत भूमिका में भूकम्प आ जाता है, जो माधुर्य और रस का विनाश कर देता है। भातखण्डे जी के अनुसार,'ताल प्रधान गान तभी मनोरंजक हो सकेगा जब गायक तथा ताल वादक दोनों पारस्परिक सम्पर्क में रहने वाले तथा सहयोग के द्वारा कार्य करने वाले हों। इसके साथ ही साथ योग्य स्वर स्थान तथा कंठमाधुर्य भी गाने में आवश्यक है।'

ध्रुवपदकारों के आश्रयदाता :–

भक्तिकालीन आश्रयदाता –

अलाउद्दीन –

अलाउद्दीन सन् 1296ई0 में अपने श्वसुर व चाचा जलालुद्दीन की हत्या करके दिल्ली के राज सिंहासन पर बैठा। महान संगीतज्ञ अमीर खुसरो इन्हीं के दरबार में थे जो जलालुद्दीन के समय से थे।

---

1. क्रमिक पुस्तक मलिका भाग 6 पृ0 46 में

अलाउद्दीन ने इन्हें 'खुसरू ए शाइराँ' की उपाधि दी थी। खुसरो कृत 'तारीखे अलोई' में अलाउद्दीन के समय का इतिहास है, खुसरो ने 'मिफ्तातुल फुतुह' में अलाउद्दीन के विजय का वर्णन किया है। निजामुद्दीन चिश्ती की अलाउद्दीन पर विशेष कृपा थी। इसीलिये समस्त भारत में अलाउद्दीन के काल में चिश्ती सम्प्रदाय के सूफियो के विचार व कव्वालियों का भरपूर प्रचार हुआ। गुजरात व देवगिरी पर अलाउद्दीन की विजय के कारण अनेकों संगीतज्ञों को दिल्ली आना पड़ा। दक्षिण में विजित होने पर वहाँ से भी अनेकों विद्वानों व कलाकारों की दिल्ली लाया गया। इस प्रकार अलाउद्दीन के काल में दिल्ली विद्याओं का केन्द्र बना। इतिहासकार बरनी ने कहा है, कि अलाउद्दीन के युग में इतने विद्वान, कलाकार और गणमान्य व्यक्ति एकत्र हो गये थे कि राजधानी उनसे भरी पड़ी थी परन्तु अलाउद्दीन ने उन प्रतिष्ठित लोगों के सम्मान की ओर उचित ध्यान न दिया।

2 जनवरी सन् 1316ई0 को अलाउद्दीन की मृत्यु हुई। इन्हीं के राज्यकाल में अमीर खुसरो के अतिरिक्त गोपाल नायक जैसे संगीतज्ञ भी थे। गोपाल नायक ने अपने ध्रुवपद में अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन किया है:-

"धकदलन रे प्रबल्ल नाद सिंध नाद बल अपबल वक्कवर।
कुडांन धीर आडांन मिलवत चपल चाप अपचल अक्कअर
गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर।
साहिनिसाहि अल्लावदी तपै डिलीनरेस जाके वसुधा सुचित तुअ तक्कधर।"

अर्थात् अपने प्रबल गर्जना से सहसा दलन करने वाला, सिंह के समान नाद और बल से युक्त, अपने बल के कारण बाँकुरो में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली को (शत्रुओं) वह उनकी छावनियों से मिला देता

है, अर्थात् भगा देता है। उसका धुनष चपल रहता है। और वह महान स्थिर रहता है। विद्या में श्रेष्ठ नायक गोपाल (उसकी प्रशंसा में) गीत गाता है। दिल्ली नरेश शहंशाह अलाउद्दीन पृथ्वी जिसके अधिकार में है, प्रतापयुक्त हो रहा है इस तथ्य को तू हृदय में धारण कर ले। अलाउद्दीन की उदारता के सम्बन्ध में भी 'राग कल्पद्रुम' में तथ्य प्राप्त होता है-शाह अलाउद्दीन 'मौज दरिया', रौशन जमीर, रसूल आलम हैं। मैं गरीब और तू गरीबनवाज हो, नेमत हो।[1]

मानसिंह तोमर –

महाराज मानसिंह महान वीर अप्रतिय कलामर्मज्ञ और गुणियों के आश्रयदाता थे। संगीत में उनका महान योगदान है। ये महान संगीत प्रवर्त्तक थे। अनेक गुणी लोगों को इन्होंने राज्याश्रय प्रदान किया। इन्होंने स्वयं स्तुति प्रधान गीतों की रचना की व बक्शू जैसे गुणियों को शिक्षा भी दी। दाम्पत्य जीवन व नायिका भेद सम्बन्धी रचनाकारों को नये आयाम दिये, जिसने पूर्ववर्ती ध्रुवपदकारों का मार्गप्रशस्त किया। मानसिंह की प्रेरणा से ही नवीन रागों का उद्भव हुआ। मानसिंह ने 'मानकुतूहल' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिससे छः राग उनके विभेद, राग-ऋतु का सम्बन्ध, स्वरों की उत्पत्ति, गीत भेद, विभिन्न वाद्य यन्त्रों तथा नायक नायिकाओं के प्रकार, गायक के गुण दोष, कण्ठ स्वरों की विशेषतायें, इत्यादि का वर्णन है। सन् 1662 ई0 में कश्मीर के फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के नाम से 'मानकुतूहल' का अनुवाद किया। रागदर्पण में मानसिंह को ध्रुवपद का आविष्कारक का गया है। सर्वप्रथम ग्वालियर की भाषा में कवितायें लिखीं। कृष्ण से सम्बन्धित पदों को 'विष्णुपद' कहा। धार्मिक विभूतियों की प्रशंसा से युक्त पदों को 'स्तुति' तथा प्रेय

---

1. 'राग कल्पद्रुम', भाग 1 पृ0 61 में वर्णित

के चित्रण से युक्त रचनाओं को 'ध्रुवपद' कहा। अबुल फजल के अनुसार, राजा मानसिंह के शासनकाल में तीन संगीतज्ञ नायक बक्शू, मंझू, और मन्नू थे। बादशाहनामः के अनुसार,बैजू भी मानसिंह के दरबारी गायक थे। गोपाल द्वितीय जो कि बक्शू के शिष्य थे, उनका एक ध्रुवपद प्राप्त होता है जिसमें राजा मानसिंह को सम्बोधित किया गया है:-

"प्रथम मनि ओअंकार, दवनि मनि महादेव,
ग्यान मनि गोरिष, वेदमनि ब्रह्मा।
विद्यामनि सरस्वती, नदीनमनि गंगा
भक्तिमनि नारद, निर्तमनि रंभा।
बृछमान कल्पबृछ, गजमनि औरापति,
षर्ग मनि कलवार, राग मनि इंद्रा।
मनत गोपाल सुनौ हो राजा मान द्यौस,
मनि सूरज रैनि मनि चंदा।"

राजा रामचन्द बघेला –

राजाराम चन्द्र बघेला भट्टाप्रान्त के भू-स्वामी और हिन्दुस्तान के बड़े राजाओं में से थे। संगीत सम्राट तानसेन इन्हीं के दरबार में थे। तानसेन की प्रशंसा सुनकर मुगल सम्राट अकबर ने सातवें वर्ष सन् 1562ई0 में जलाल खाँ को भेजकर तानसेन के बुलाया। राजा रामचन्द्र ने उसका विद्रोह अपनी शक्ति से बाहर समझ कर पूरे साज सामान के साथ बादशाह को भेंट आदि देकर तानसेन को विदा किया। बादशाह ने पहले दिन ही तानसेन को दो करोड़ पुरस्कार में दिये। उसके पश्चात् तानसेन अकबर के दरबार में ही

रहने लगे उनकी अनेक रचनायें अकबर के नाम से आजतक प्रचलित हैं।

सन् 1585ई0 मे राजारामचन्द्र का स्वर्गवास हो गया। वे अत्यन्त उदार थे। मुल्ला अबुल कादिर के अनुसार, इन्होंने एक बार तानसेन को एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें पुरस्कार में दी। अनेकों ध्रुवपद, राजा रामचन्द्र के प्रताप, दरबार, दानशीलता, विद्वता, पराक्रम संगीतज्ञता, उत्सव प्रियता, बहुपत्नीकत्व इत्यादि विष्यों से सम्बन्धित मिलते हैं। उनके पराक्रम पर ध्रुवपद इस प्रकार है-

"यदि राजा रामचन्द्र भी दोनों पर दया न करके यवनों की परवाह करे तो कोलाहल में मग्न दरिद्र व्यक्तियों के मन का हरण कौन करे। यदि कुछ व्यक्ति छत्रपति नरेश हो भी गये तो क्या हुआ? राजा रामचन्द्र का प्रसाद पाये बिना विपत्ति सागर से कौन उतारे? और कौन उतरे? जो बलि, वेन और सत्य हरिश्चन्द्र हो गये हैं उनकी कीर्ति का उद्वार कौन करे? वीरभान का पुत्र दुःख द्वन्द के फन्दों को काटने वाला है। तानसेन विनती करते हुए डरता है। राजा राम दान में तभी कृपणता कर सकता है जब सूर्य अपनी दिशा से उतरकर पश्चिम में उगने लगे।"

प्रताप –

"वीरभानु के पुत्र बघेले वीर राजा रामचन्द्र के प्रस्थान करते समय शेष कलमलाता है। वह शक्तिमान, तपोबल, एवं खण्डबल से युक्त है, पराये दुख को दूर करने वाला है। तानसेन की प्रार्थना है कि वह सप्तद्वीपों के समान अचल रहे।"

उत्सवप्रियता –

"अच्छी घड़ी में अच्छा दिन अच्छा मुहुर्त पाकर, अच्छे गुणियों ने बसन्त की स्थापना की है। मालिन ने गुलाल के रंग का लाल

फूल प्रात: काल ही दिया, सोनजूही दी, पंचम का आलाप हुआ। वैसे ही रंगो के वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं। विद्यार्थियों का गान श्रवणों में व्याप्त हो गया, प्रतापी राजा रामचन्द्र जब रीझे, तब उन्होंने समस्त याचकों को भलिभाँति के दान दिये।"

संगीतज्ञता –

तानसेन कहते हैं, कि मैंने धर्म-कर्म नियुक्त आलाप का बाजार लगाया है। मैं गुणों में पूर्ण हूँ और व्यापार करने बैठा हूँ। आकार की डण्डी बनाकर 'ग्राम' की डोरियों से जोत स्थिर की है। ताल की पट्टी लेकर चटपट पीछे डाल दी है। अक्षर अर्थमूलक है, अच्छे ध्रुवपद तौल रहा हूँ जिनकी तुर्कें भारी हैं। इस गुण का ग्राहक रामचन्द्र हैं और मैं व्यापारी हूँ।

अकबर –

मुगल सम्राट अकबर का जन्म सन् 1542ई0 में 23 नवम्बर को अमरकोट में हुआ था। सन् 1556 ई0 में 14 फरवरी को 14वें वर्ष अकबर बैरम खाँ के नेतृत्व में गद्दी पर बैठे। बैरम खाँ संगीत के बड़े प्रेमी थे, जिसका प्रभाव अकबर पर भी पड़ा। अकबर का भी संगीत के प्रति आनुवंशिक प्रेम था। नवम्बर 1562ई0 में तानसेन अकबरी दरबार में बुला लिये गये। अबुल फजल के अनुसार, अकबर ने इस विशिष्ट विषय की ओर पूर्ण ध्यान दिया और उसकी समस्त प्रतिभा का उपयोग इस दिशा में हुआ। पर्शियन नग्मे तथा भारतीय रागों व दोनों की सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्षों की जानकारी अकबर को थी। अकबर संगीत शास्त्र की रचना के भी प्रेरक थे। इसके प्रमाण में शाहजहाँ व औरंगजेब के काल के कश्मीर के गवर्नर फकीरूल्लाह का कथन उपलब्ध है। फकीरूल्लाह के अनुसार,अकबर कालीन कलाकारों की सहमति से 'रागसागर' नामक

ग्रन्थ की रचना हुई थी।[1] इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें रागध्यानाध्याय है जिसमें 96 रागों का ध्यान दिया है। प्रो० रामकृष्ण कवि को 'रागसागर' नामक एक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है सम्भव है ये वही हों। उनके अनुसार, इसमें तीन अध्याय हैं। स्मिथ के अनुसार, 'अकबर गीत एवं संगीत में विशेष रस लेते थे और ऐसा प्रतीत होता है कि इन कलाओं की परिभाषाओं का उन्हें भली-भाँति ज्ञान था। ग्वालियर निवासी लालकलावन्त संगीत विद्या में अकबर के शिष्य थे जो आगे चलकर मर्मज्ञ संगीतविद् बने। अकबर के दरबार में प्रमुख कलाकार कौन-कौन थे? इस बारे में अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में प्रमुख कलाकारों के नाम बताये हैं जो इस प्रकार हैं - मियाँ तानसेन, बाबा रामदास, बाजबहादुर, मुहम्मद खाँ ढारी, सुबहान खाँ, विचित्र खाँ, सुरग्यान खाँ, वीरमण्डल खाँ, सरोद खाँ, दाउद ढारी, तानतरंग खाँ, मियाँ लाल खाँ, वीणा वादक शिहाय (शहाब) व पुरबीन (प्रवीण) खाँ, रामदास के पुत्र सूरदास गायक, चाँद खाँ गायक, एकतन्त्री वाद्य के आविष्कारक कासिम कोहबर, 'करना' नामक वाद्य के वादक शेख दावन ढारी, 'धिचक' नायक वाद्य के वादक मीर सौपिद अली, 'नै' नामक वाद्य के वादक उस्ताद दोस्त कुबुज वादक ताराबेग, 'चिचक' वादक बहराम कुली, 'कानून' वादक मीर अब्दुल्ला, तम्बूरा वादक उस्ता मुहम्मद हुसेन।

अबुल फजल के अनुसार, ये उस युग के मूर्धन्य कलाकार थे। इन्हें वह थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा तक नहीं बताता। फकीरूल्लाह के अनुसार, अकबर के युग में गवैये अक्सर 'अताई' थे। (इल्म का व्यवहार मात्र जानने वालो को अताई कहते हैं) ये अताई मौखिक परम्परा से संगीत की व्यवाहारिक शिक्षा प्राप्त किये थे। साहित्यकारों और पण्डितों के सम्पर्क से उन्हें उस भाषा पर अच्छा अधिकार था।

---

1. रागदर्पण के नवम् परिच्छेद के अन्त में।

साथ ही अकबरी दरबार में पलने बढ़ने के कारण ये संगीतज्ञ निरक्षर होते हुये भी अशिक्षित नहीं थे।

ध्रुवपदों में अकबर –

अकबर से सम्बन्धित ध्रुवपदों में उनकी प्रशंसा, प्रताप, पराक्रम, मंगलकामना, गुणमर्मज्ञता, गोरक्षण, उत्सवप्रियता, संगीत में शोघ, दीन-ए-इलाही के प्रवर्त्तक, कामशास्त्र मर्मज्ञ, बहुनायकत्व का वर्णन है।

प्रशंसा –

"धनि धनि धरनि घरैं साहि अकबर जाकि जगत में चली धुआई उदीआचल अस्ताचल। धनि धनि तुअ रसनौ तूअ करतार, राज साज दियौ है तषत बषत अदल नर नरिंद जाकी सेवा करत जेउ मरे ते तजि गये हैं माल। तानसैनि को प्रभु राजत सदा डिनमनि मद्य मंडिल गढ़ गोपाचल।"

संगीत में शोध –

"जिनकी बुद्धि के आगे और की बुद्धि नहीं दिखायी देती, मैं उनकी स्तुति कैसे करूँ। मेरे एक ही जिह्वा है, निराले ढंग से 'संगीत रत्नाकर' के भेद पढ़ते हैं। प्यारे शाह अकबर चिरंजीवी रहो। शाह अकबर सप्त अध्यायों के ब्योरे पृथक-पृथक करके दिखा देता है जगद्गुरु जलालुद्दीन दूध का दूध, पानी का पानी कर देता है।"

प्रताप –

"छत्रपति अकबर महाज्ञानी हैं, समस्त गुणिओं, आओ, छन्द गाओ। हिन्द के भाग से हुमायुँ का पुत्र अकबर प्रचण्ड अश्वदल सजाकर तख्त पर बैठा है।"

पराक्रम मंगलकामना –

"चक्रवर्ती जलालुद्दीन नरेश तू धन्य है। तूने सब देशों को अपने अधीन कर लिया है। तू अपने खड्ग के बल से प्रबल है। तू सब भाँति से पृथ्वीपालक है और कोई प्रमाण (अधिकारी) नहीं है। जहाँ तहाँ समस्त राजाओं पर, उदयाचल तक तेरा ही निश्चय (चलता है)। अपने समान एक तू ही है। तू आत्मबल से मुक्त महासुभट है। निश्चयपूर्वक तुझमें अली का निवास है। विधाता ने तेरे समान किसी अन्य की रचना नहीं की, किससे तेरी उपमा दूँ। हे शहंशाह अकबर जब तक ध्रुव धरणी और सूर्य हैं, जब तक गंगा और यमुना में जल, तब कर चिरंजीवी रहो।"

गोरक्षण–"जग पर विश्वम्भर धर्म कर रहा है...... तू स्वयं जगबन्द है शाहअकबर परमपुत्र, पुरुषोत्तम है...... गौओं की रक्षा तूने कृपालु होकर की है। सृष्टि में पूर्ण ब्रह्म ने अवतार लिया है।"

कामशास्त्र मर्मज्ञ –

"सोई करीऔ जो जीअ धारीऔ सुषु पावत अकबरसाहि अन्तर जामी कामी कामिनिवारम निस्तारन जौवन भीअ के सुमिरथ इतनी विनती सुनि लीजौ कानन परवान जानोगी लछिन दछिन प्रीति की जौ इस समझत हौ तुम ही रिरथ।"

उत्सवप्रियता(बसन्त) –

"ऋतुओं का राजा बसन्त आया, चारों दिशाओं में प्रकट हुआ, सबमे आनन्द माना। अरगजा और अबीर से लाल (अकबर) को ढके रहते हैं। प्रसन्न होकर मृग सुगन्ध प्राप्त करते हैं ......इस प्रकार शाह अकबर ने धमार खेली।"

प्रयाग में धर्म की नीवं रखना –

तानसेन कहते हैं कि समस्त जीवों को धारण करने वाले, कण-कण भूमि का भरण करने वाले, छत्रपति शाह अकबर ने धर्म की नीवं रखी और शुभ ग्रहों में 'इलाहाबाद' में छत्तीस कुलों बसाई।

अब्दुर्रहीम खानखाना –

ये अकबर के संरक्षक बैरम खाँ के पुत्र थे अकबर के प्रयत्नों से इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। इन्हें संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, हिन्दी का बहुत अच्छा ज्ञान था, ये कवि भी थे। ये गुण ग्राहक थे तथा प्रसिद्ध व उदार आश्रयदाता थे। मआसिरे रहीमी के अनुसार, इनके आश्रय में मोहम्मद मोमिन, तबरेज निवासी हाजी इस्माइल के पुत्र आगा मुहम्मद नैई, तबरेज़ निवासी मौलाना अस्वती, हाफिज नाजरा, उस्ताद मिर्जा अली, नीशापुर निवासी मौलाना शरीर नामक कलाकार थे।

वीरभद –

ये राजा रामचन्द्र बघेला के पुत्र थे। सन् 1569ई0 में रामचन्द्र ने इन्हें अकबरी दरबार में भेजा था। रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् अकबर ने इन्हें राजा की पदवी देकर देश भेज दिया। 1593 में इनकी मृत्यु हो गई। इन्होंने भी गुणियों को अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया था। इनकी प्रशंसा में एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम' के प्रथमभाग पृ0 127 पर संग्रहित है।

जहाँगीर –

जहाँगीर के बारे में विस्तारपूर्ण वर्णन "जहाँगीर नामा" में प्राप्त होता है। जहाँगीर के दरबार के प्रसिद्ध गायक विलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रम दाद, मक्खू, परवेज दाद और हमजान थे। जहाँगीर

ने शौकी नामक कलाकार को आनन्द खाँ की पदवी दी थी। जहाँगीर स्वयं कहते हैं कि एक वाद्ययन्त्र का वादक शौकी अपने समय का वैचित्र्य है। हिन्दी व पारसी गीतों को वह इस प्रकार गाता है कि हृदयों के मालिन्य दूर हो जाते हैं। हमने उसे आनन्द खाँ की पदवी दी।

'नै' नामक सुषिर वाद्य के वादक उस्ताद मुहम्मद को रूपयों से तौलने की आज्ञा दी तथा हौदे सहित हाथी भेंट किया। इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय के संगीतगुरू बख्तर खाँ को भी बहुत सम्मानित किया। जहाँगीर को कव्वाली सुनने का भी बहुत शौक था।

जहाँगीर से सम्बन्धित ध्रुवपद –

प्रशंसा –

"बषत अरुन वषत ली चली तेरे नाम की फरै सुर नर मुनि गुनि गंद्रप किनिर जहाँगीर। जे अग्यान ते भये सुग्यान ध्यान कल्कलयान करत है हों आगर सागर ते कै हैं चलि धाईतेर।"

प्रताप –

"दिल्ली दलन भारत अचल चलत भूअ कौपौ साहि जहाँगीर। जाकि अदलि दीन दुनी में प्रछत्ति (प्रत्यक्ष) जाहर महा पीरानिपीर।।"

संगीत मर्मज्ञता –

"अंग अंगन सयान भरत मघ विनांन करत सप्तधा वरन सदां समांन तांन वरन। ऐक पूरै गीत नादभेद उतिम् जेते सुर साधे अराधै कंठ रूप अनूप वरन। सुर ग्यान गुन निधान पर परमान ग्याननि सुढावनिसुदान जाते भयौ चित मानों रस सौं उधारन कौ भायौ गुन अभरन। जैहैं विधि विदाई कीनी साहि जहाँगीर जाते बौहौरि त्रीअनि री मन उधारन।।"

सेहरा –

"साहि अकबर सदां इल्हौ कौ सेषूज् श्री दूल्हौ दुलहिनि सप्त चरंजेवी होइ जौलौं चंद्र धरन धूअ तारौ। अनेगनग्नरगन जटत (अनेगन नगन जटित) सेहरौ मुकुट बांधै सीस और विचित्र मालिनि गूंधि लाई चौसरहार बेला चमेली के राजत हार।... परत पगनि जलालुद्दीन चक्रवर्ती कीजै पठयौ ऐरापति प्यारौ और सब देवनि मिलि कहौ जह देवलोक या छवि पर वारौं।"

नायिका छवि –

"सोहत कां ननि वीरै देषि वेंदी की झलक। ता मघ जरनगात अति ही विराजत रीतिनि ढिग मुकताहल लागे मेरे जान क्रत कौ चंद्रमा नीरै। तैसी अधर पांननि की लाली और तैसी है वदन जोति दोई पर हीरै। यह छवि देषि रीझे साहि जहाँगीर मानौ पदमिनी निकसी जात ससि चीरै।।"

भरतसाह बुन्देला –

यह राजा मधुकर के पुत्र व रामचन्द्र के पौत्र थे। 1612ई0 में गद्दी पर बैठे इन्हें योग्य मनसब और 'राजा' की पदवी मिली। इनकी मृत्यु 1634ई0 में हुई। एक ध्रुवपद में इनका व इनके पत्नी का वर्णन मिलता है।

शाहजहाँ –

शाहजहाँ को संगीत से अत्यन्त प्रेम था। शाहजहाँ प्रतिदिन अन्तःपुर में साढ़े आठ बजे से दस बजे तक गायिकाओं के संगीत का आनन्द लेते थे।[1] लाल खाँ, खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ, रंग खाँ, किशन खाँ, जगन्नाथ कविराय जैसे कलावन्त इनके आश्रय में

---

1. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 278-279

थे। लाल खाँ व खुशहाल खाँ को 'गुनसमुन्दर' की उपाधि शाहजहाँ ने दी थी। शाहजहाँ की प्रशंसा में जगन्नाथ कविराय के ध्रुवपद प्राप्त होते हैं।

शाहजहाँ से सम्बन्धित ध्रुवपद –

संगीतज्ञता –

"अथतार सुर सधिं जोई गुनि सोई सुध मुद्रा बानी गावै। गति मति विलमती करि दिखावै। सप्त सुर तीनि ग्राम इकईस मूरछिना बाइस सुर ताके भेद पावै। सुरसुति होवैं प्रसन्य ताको सोई के श्रवननि को रिझावै।"

अर्थात् जो ताल और स्वर की साधना करता है, वही गुणी शुद्ध मुद्रा और वाणी से गान करता है। विभिन्न गतियों के बुद्धिशाली व्यक्ति विलम्बित करके दिखाता है। सप्त स्वर, तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना और बाइस श्रुति इनके भेद पाता है, जिस पर सरस्वती प्रसन्न होतीं हैं, शाहजहाँ के कानों को वही रिझा सकता है।

विलास –

"प्यारी, तुम जैसी सुघड़ नारी की समता भला कौन कर सकती है? रूप और गुण से ऐसी उज्जवल और कोई नहीं, अपने समान तू ही है। तेरा और तेरी छवि का वर्णन मुझसे नहीं किया जाता। हाव-भाव और कटाक्ष और गुणों के कारण तू तो चन्दा की चाँदनी है। प्रिय शाहजहाँ तुझी से हिलता मिलता है। समस्त सुन्दरियों में तू ही मनभावनी है।"

प्रताप –

"अरिनि दर दरेरि मारे भुजनि वर, आयु वरननि जित तित दुअनि दल मोरै। जब कोपि कर अमर छाड़ै गाजै तब धन निहांल सेस

कलमलात सौ कौनं जे जोधा जु तो सौं जंग जोरै। धनि धनि प्रताप पूरौ सूरौ सब ही अंगनि जैसौ कौन कौन ऐसौ गरव करत जोरै। धनि धनि साहिनजहाँ प्राथीपति जाके गुनिअनि देत लाष करोरै।"

सेहरा –

"सुभ दिन सुभ घरी सुभ महूरति सौने छत्र इम्रंत जौग साधै आराधै सुष संतोष भयों यों धारौ लगुन आनंद समधि निधि। पारवती पति महेस सतगुर गनेस वृंम्हा विस्न व्यास आस पुजवन कारन दरसन प्रभात कीनें कर जोर प्रेम डोरे कंकन बांधौ दौउ अनि और रंग रस पूरन होत षेम कुसल सुकल सिधि। अैराइसि तरवर निहारि आतसबाजी फुलझरी यों विराजे मेरै जांन वन घन में झींगन झमकत फुनि रांमन पर भारी न्यारी वनि बैठी मनों उदौत ते लछिमी प्रगटी वन घन के रूप चरन चार दिस दिसन सन वाजे प्रवानं निर्त निर्तकाली पूरन चार विधि विधि अजर अमर जो सिर पर छत्र धरैं सेहरा सोहै मोहै जगमग जोति कंसूमी सौंधै मनों पूरनमासी साहि जहांगीरनि दिन साहिजहाँ दिन दुलहिनी इल्हौ दुलदिनी सहित चरंजवी सुरनर मंगल गावै अति कटाधि वाजे वजावैं पावैं दान गज तुरणं पटवर अै सिधि।।"

नौरोज –

"छत्रपति कीनौं नौरोज रोज-रोज उठत कोठांनि ते गुनी पावत जाचिग भरे-भरे घर आंगन। आसमान मदन छत्र न होहिं मेरे जान झरोषा राषे जह देषिवे कौ है इंद्र वर गनौं। मषमल जखाफ कीषाप परे लीने ता मध जरे हीरा मुकताहल काम के मनी साहिब क्रानसानी। कौ दरसन देषैं अस्टसिधि रहोअत है अब कोउ न समान ग्यानी।"

समकालीन आश्रयदाता –

जहाँगीर के समकालीन आश्रयदाताओं में वीरसिंह देव के पुत्र पहाड़सिंह बुंदेला, राजा अनिरुद्ध गौड़, मूसवी खाँ तथा शाहजहाँ पुत्र

शुजा का नाम प्राप्त होता है। पहाड़ सिंह बुन्देला के मुद्रा में अंकित एक ध्रुवपद मिलता है। राजा अनिरुद्ध गौड़ की प्रशंसा में 'रागमाला' में एक गीत प्राप्त होता है। मुसवी खाँ के बारे में 'रागमाला' निम्न पक्तियाँ प्राप्त होती हैं-

"मूसेखान सुजान तू जानै मैं दीन दुनी।

कमलनेत्र सुधारिषौ करत बहु भांतिन गुनी।।"

शुजा संगीत का अत्यन्त प्रेमी था उसने अपने पिता से किशन खाँ कलावन्त, मिसरी खाँ ढारी तथा तानसेन के पोते सोहिलसेन को मांग लिया था।

रीतिकालीन आश्रयदाता –

औरंगजेब –

शाहजहाँ के पुत्र मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब का जन्म 24 अक्टूबर सन् 1618 ई0 को 'दोहद' (बम्बई सूबे के पंचमहल) में हुआ था। औरंगजेब का जीवन 18 वर्ष तक अन्तःपुर में बीता, जहाँ रमणियाँ मदिरा और नशे में चूर रहती थीं। सन् 1659ई0 की 13 मई को जब औरंगजेब गद्दी पर बैठा तो दस वर्ष तक उसने गाने बजाने का खूब आनन्द लिया। तानसेन के पुत्र विलास के दौहित्र खुशहाल खाँ व हयात सरसनैन गायक पर औरंगजेब की विशेष कृपा थी। किरवा नामक मृदंग वादक जिसकी उपाधि 'मृदंगराय' थी, उस पर भी विशेष कृपा थी। औरंगजेब ने गद्दी पर बैठने के ग्यारहवें वर्ष शाही दरबार में गवैयों को नाचने गाने से मना कर दिया।

मौलाना शिब्ली के अनुसार, आलमगीर निहायत रूखा-फीका आदमी था, इसको मेलों, बाजों, नाचरंग और गाने बजाने से नफरत थी वह समझता था कि इन चीजों से अख़लाक पर बुरा असर

पड़ता है। ...... आलमगीर ने सन् 1667-68ई0 में हुक्म दिया कि 'गवैये दरबार में आयें, लेकिन गाने न पायें।'

कलाप्रेमियों ने उसके इस व्यवहार से रूष्ट होकर उसकी खिल्ली उड़ाई। वह जब मस्जिद जा रहा था तब शुक्रवार के दिन करीब एक हजार गवैये अपने साथ सुरूचि पूर्ण ढंग से सजे हुये बीस जनाज़े लिये ज़ोर-ज़ोर से दु:खी होकर रोते चिल्लाते जा रहे थे। औरंगजेब ने उन्हें देखा और रोने का कारण जानने के लिये अपने आदमी भेजे। गवैयों ने जवाब में कहला भेजा कि अपने आज्ञा द्वारा आपने संगीत विद्या को मार डाला है, इसलिये अब उसे कब्र में दफनाने जा रहें हैं। बादशाह ने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह बहुत ही गहरा दफनाया जाये।"[1]

इसका एक कारण तो यह था, कि इस्लाम के नाम पर परस्पर द्वेष रखने वाले मुस्लिम सरदारों में एकता उत्पन्न करने के लिये और अपने को आदर्श मुसलमान घोषित करने के लिये औरंगजेब ने संगीत का विरोध किया था, जो उसकी एक कूटनीति चाल थी। दूसरा कारण उसकी आयु भी पचास वर्ष से अधिक थी।

दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध तो था किन्तु बेगम और शहजादियों के मन बहलाव के लिये महल में नृत्य व संगीत होने देता था। इसके लिये गायिकाओं और नर्तकियों को नियुक्त किया करता था।

संगीत पर इतने प्रतिबन्ध होने के बावजूद, औरंगजेब के काल में संगीत की काफी उन्नति हुई। अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। औरंगजेब के वेतनभोगी कर्मचारी मिरजा रोशन जमीर ने अहोबल के प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थ संगीत पारिजात का फ़ारसी अनुवाद किया था।

---

1. 'औरगजब' पुस्तक पृ0 133-134

इबाद मुहम्मद कामिलखानी ने सन् 1667ई0 में रिसाल-ए-कामिलखानी सन् 1668ई0 में 'आसामी सुर' और सन् 1669ई0 में रिसाल: दर अमले बैनोठाठ' रागिनी की रचना की। औरंगजेब के काल में ही सन् 1780ई0 में कूकूल्ताश की प्रार्थना पर मिर्जा मुहम्मद ने 'तुहफ़तुल हिन्द' की रचना शाहजादा मुहम्मद मुईजुद्दीन जहाँ दारशाह के लिये की, जिसमें एक अध्याय संगीत पर है।

ध्रुवपदों में औरंगजेब –

प्रताप –

"चकता चमक चहुँ चारौ में दलनि मलन आयौ दिल्ली नरेस।
उतर दषिन पूरब पछिम अकर करे रौ बैठो सिंघ नरेश।
तिहारे चढ़ै दलवा (द) ल उनि आए सप्तदीप नवषड तिहांरी पैर।
साहिजहाँ जू कौ साहि औरंगजेब धौंसा की धुकार कांपौ पातल कौ सैर।।"

अर्थात् चकता (चगताई बादशाह) की चमक चारों दिशाओं मे है। दिल्ली नरेश दलन मर्दन के लिये आया है। सिंह के समान नरेश, उत्तर दक्षिण पूर्व और पश्चिम में अड़कर और दृढ़ होकर बैठ गया है। सातों द्वीपों और नवों खण्डों में तेरी गति है। तेरे चढ़ने पर बहुत बड़ी सेना उमड़ आई। शाहजहाँ के पुत्र, शाह औरंगजेब, तेरे धौंसे की पुकार से पाताल का शेर (शेष) की काँप उठा।

सिंहासन, गान-वादन नृत्य, दानशीलता –

"अद्भुत कारीगर रचि पचि कै सुनषत बषत बली करन तषत अनुपम बनायौ। जा लागे रतन जनम गुन सब गुन कौ फुनि चिंतामनि करम

देव कौ ऐसे नग कौ कापै जाइ मोल गनाओ। गावत बजावत निर्तत जह कला जहाँ हीर चीर और बढ़ायौ नग कौ लीलक जर वषतर पतझर सव नेंह सो सुभ बनायौ। सुभ घरी सुभ मध्धि बैठो मधनाइक डिलीपति साहि कौ जेव दाता औरंगजेब इनि ने असीस दई उनी गुनी कौ दुष दालिद्र अन्हायौ।"

वर्षगांठ –

"व्यास सोधन दिन गिन ज्यांन नीके सगुन लगुन धारी। दीनि बरसगांठि साहि औरंगजेब की करत है कोटि कोटि बरसन की अविल धारी। भाए भए न नरिनि के आनंद जनम जीतव सुफल फली चर चरजीजौ सुभ घरी। नीर पीर आलमगीर की जगत विस्तारी।"

अर्थात् व्यास ने गिनकर दिन शोधा है, जिनमें अच्छे ज्ञान से शुभ लग्न रखा है। शाह औरंगजेब की 'बरसगांठ' दी कोटि-कोटि वर्षों के आयुर्बल का धारण करने वाला बनाया। नर-नारियों के मन भाये हुये, आनन्द हुआ। जन्म सफल हुआ, मनोरथ पूर्ण हुये। तुम चिरंजीवी रहो। यह शुभ घड़ी है। मीर (प्रधान) पीर आलमगीर का विस्तार जगत में हो।

बसन्त की मुबारकबाद –

"चिरंजीव रहौ सुख संचति संपति साहि कौ एक छत्र दिलीराज कर वर होई दुंहु पुर जस कीरति अधिकाई। रोमस (लोमश) कै सी जविल सोफल अनलेपन, लाप करोर वरस लौं जविल बाढ़े तिहांरी। और जो मन अछया होई तुम्हारी अब सोई करता करम केरे ऐसी सुफल होई हमारी। अनगिन आनंद बसंत मुबारस साहिनिसाहि औरंगजेब जू तुम ऐसैं ही अनगिन बरस लौं हम मंगलामुषीनि संग खेलौ धमारी।"

ध्रुवपदकारों के इन आश्रयदाताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य आश्रयदाताओं के नाम इस प्रकार हैं- कीरत सिंह, गैरत खाँ, आजम बहादुरशाह प्रथम, जहाँदारशाह, मुहम्मदशाह बेदारबख्त, शाहआलम अमीर खाँ, अहमदशाह, कमरूद्दीन खाँ बहादुर एतमादुद्दौला, चेतसिंह, माधवसिंह, आलमगीर सानी, राजा छत्रसिंह, महाराजा प्रतापसिंह, ब्रजनिधि, महाराजा जगतसिंह, रतनसिंह, चरखारी नरेश-विक्रमशाह।

उपरोक्त आश्रयदाताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे आश्रयदाता हैं जिनके नाम व ध्रुवपद तो उपलब्ध है किन्तु जिनके बारे में कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। ऐसे आश्रयदाताओं के नाम इस प्रकार हैं:- छत्रपति, चत्रसीचत्री राजाधिराज, नवलजसषा (नवलजस खाँ), चगता नवाब, वीरनसाह, नूर, करनसाह, चतुरसिंह राना, फकरखानि, उदयराज, वली मुहम्मद सुल्तान।

निष्कर्ष –

भारतीय संगीत में प्रचलित अनेक गायन शैलियों में ध्रुवपद सबसे प्राचीन गायन शैली है। यद्यपि ख्याल गायकी के अत्यधिक प्रचार से ध्रुवपद गायकी का गायन काफी कम हो गया है। किन्तु पंजाब में ध्रुवपद गायन शैली बहुत लोकप्रिय थी तब जबकि अन्य प्रदेशों में ख्याल शैली अपना पूर्ण प्रभुत्व जमा चुकी थी। ख्याल शैली के वेगपूर्ण व प्रभावपूर्ण आगमन से यद्यपि ध्रुवपद शैली लगभग समाप्त प्राय हो गयी किन्तु फिर भी आज पुराने संगीतज्ञों के पास ध्रुवपद अंग की रचनायें सुरक्षित हैं। जिन्हें 'रीत' और 'टकसाली' बन्दिश भी कहा जाता है। संगीत सम्मेलनों में ध्रुवपद का प्रचार कम हो जाने से धार्मिक संगीत भी इससे प्रभावित हुये बिना न रह सका। जबकि गुरुद्वारों में कीर्तन ध्रुवपद शैली पर आधारित रहा है। आज पंजाब में भी ध्रुवपद गायकों का अभाव है। एक तो पंजाबी भाषा में ध्रुवपदों की रचना नहीं हुई, यदि हुई

भी होगी तो या तो लुप्त हो गई या फिर ध्रुवपद की बंदिशें ख्याल गायन में प्रयुक्त हो गईं और ध्रुवपद का मूल स्वरूप नष्ट प्राय हो गया। पंजाब में ध्रुवपद गायन की लोकप्रियता के प्रमाण के रूप में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवतरित महान ध्रुवपद गायक एवं शब्द रचनाकार पं0 हरिवल्लभ रचित ध्रुवपद है जो स्थायी, अन्तरा संचारी आभोग इन चार खण्डों मे है।

वर्तमान समय में ध्रुवपद शैली ह्रास की ओर अग्रसर है। आज कल ध्रुवपद की दो प्रकार की रचनायें मिलती हैं। एक प्रकार वो जिसमें स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग होते हैं तथा दूसरे प्रकार की वो जिसमे स्थायी व अन्तरा ही होता है। पुरानी बंदिशों में स्थायी अन्तरा, संचारी, आभोग चारो होता था। आज जो ध्रुपद लोग गाते हैं, उनमें स्थायी व अन्तरा ही होता है। ध्रुवपद से ज्यादा ख्याल ने गायक तथा श्रोता दोनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। श्रोता ध्रुपद की ओर उतनी रूचि नहीं दिखाते हैं। पूरी तरह से तकनीकी व लयकारी पर आधारित होने के कारण, बोल बनाव इत्यादि के अभाव में साधारण श्रोताओं का ज्यादा देर मनोरंजन नहीं हो पाता। वे ऊबने लगते हैं। थोड़े समय में सारी कलाओं के प्रदर्शन के लिये ही स्थायी, अन्तरा वाले ध्रुपदों के गायन का प्रचलन सम्भवतः हुआ। इन्हीं ध्रुवपदों की परम्परा सी बनती जा रही है। विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में ध्रुपद को आवश्यक रूप से रखा गया है, क्योंकि अन्य गायन शैलियों को समान कहीं ध्रुपद भी लुप्त न हो जाये।

ध्रुवपद गायन की शैलियों को खंडारी, डागुरी, नौहारी और गोबरहारी वाणियों के नाम से जाना जाता है। यही ध्रुपद गायकों के घराने भी है। इन घरानों के कलाकार ध्रुपद तथा धमार दोनों में प्रवीण होते थे। आगे चलकर कालान्तर में यही ख्याल गायकी के

घराने प्रसिद्ध हो गये। क्योंकि ध्रुपद के स्थान पर ख्याल लोकप्रिय होने लगे। कहा जाता है कि अल्लादियाँ खाँ डागुर वाणी से और उस्ताद अब्दुल करीम खाँ गोबरहारी वाणी से सम्बन्धित थे। ध्रुवपद शैली में कलात्मकता व रंजकता दोनों के होने पर भी ध्रुवपद का प्रचार कम हो गया। इसके अनेक कारण है जिसमें से एक कारण तो यह कि ध्रुवपद शैली में उच्छृंखलता और विलासिता का अभाव था। नवाबों, राजाओं और बादशाहों की विलासी प्रवृत्ति व भावना को ध्रुवपद के द्वारा बढ़ावा नहीं मिलता था जो श्रृंगारिकता वे चाहते थे, वो ध्रुवपद में नहीं मिलती थी, इसीलिये उनकी कुप्रवृत्तियों को उद्दीप्त करने वाली जो नवीन प्रचलित शैलियाँ उस समय अपनाई गईं, उन्हें पूर्ण रूप से प्रोत्साहन मिला। राज दरबारों में रहने वाले कलाकार अपने राजाओं को खुश करने के लिये कला की साधना व शुद्धता पर ध्यान न देकर लोभवश वाहवाही व धन के लालच में दूसरी नवीन शैलियों का अनुसरण करने लगे। साधारण श्रोताओं में भी ये काफी प्रचलित हुये। सदारंग अदारंग ने भी अपनी रचनाओं में बादशाह का गुणगान किया है।

विदेशियों के सम्पर्क में आने के पश्चात् अनेकों हिन्दू कलाकारों ने बरबस अपना धर्म परिवर्तन कर लिया व अपनी भाषा संस्कृत तथा अपनी संस्कृति आदि से धीरे-धीरे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। परिणामस्वरूप उनकी भावी पीढ़ी परम्परागत शिक्षा से वंचित रह गई। इन अनपढ़ कलाकारों से परिश्रम करके याद करने के बाद भी अनेक गलतियाँ होने लगीं, कारण था गीत के अर्थ को पर्याप्त रूप से न समझ पाना। अतः ध्रुवपद शैली अत्यन्त कठिन प्रतीत हुई। इसी समय ख्याल का प्रचार हुआ, जो ध्रुवपद की अपेक्षा सरल थी। साहित्यिक भाषा की कमी थी। पूरा तीन-तीन चार-चार चरण की

जगह कुछ शब्दों के मुखड़ों को ही याद करने से काम चल जाता था। श्रोताओं का भी कम समय में अधिक मनोरंजन होता था।

पहले के विद्यार्थियों में ध्रुवपद के रियाज से ही आवाज में दृढ़ता स्थिरता, स्वरों का सौन्दर्य उत्पन्न होता था। किन्तु आज का विद्यार्थी कम समय व कम अभ्यास से ही जल्दी आवाज फिराने के फेर में रहता है। जल्दी से सब सीख कर जल्दी ही गायक बन कर नाम कमाना चाहता है, फिर चाहे उसकी आवाज में दृढ़ता, एकरूपता, स्थिरता और प्रभाव की भारी कमी ही क्यों न हो। ध्रुवपद के अभ्यास की कमी के कारण ही ध्रुवपद आलाप के सिद्धान्त, साधना और ढंग में विद्यार्थियों की अनेक कमियाँ उभरकर सामने आती है। अनेक गायक तो ध्रुवपद गीत की दुगुन, चौगुन छगुन इत्यादि कर लेने मात्र को ध्रुपद शैली की गायकी समझते हैं। कई लोग तो पुरानी और लुप्त होने वाली शैलियों पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझते, जबकि नये का निर्माण पुराने के ही आधार पर होता है। अतः प्राचीन विचारों व परम्पराओं पर विचार करना आवश्यक है उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। यही हमारे धरोहर हैं। आज के विद्यार्थियों में दृढ़ता, स्थिरता, राग, लय, ताल, स्वर, व प्रभाव की कमी को ध्रुवपद शिक्षा से पुनः संभाला जा सकता है। ध्रुवपद भारतीय संगीत की परम्परा, इतिहास तथा ज्ञान आदि का सुदृढ़ स्तम्भ है। अतः आज आवश्यकता है ध्रुवपद प्रचार की व उन सिद्धान्तों की जिसके आधार पर लुप्त प्रायः होते ध्रुवपद की काया का निर्माण करके प्राण डाले जा सकें। तभी सही अर्थों में भारतीय संगीत की रक्षा हो सकेगी।

अब मैं उदाहरण के लिये ध्रुवपद की कुछ स्वरलिपियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ-

ध्रुवपद

राग-मियाँ मल्हार

ताल-चौताल
(विलम्बित)

सा			नी	म		म		म			
रे	सा	-	सा	रे	प	प	ग	म	रे	-	सा
ज	ल	ऽ	ध	र	ऽ	आ	ऽ	ऽ	व	ऽ	त
०		३		४		x		०		२	

	सा					नि़					
रे	नि़	सा	सा	-	सा	सा	नि़ध़	नि़	सा	-	सा
ज	ल	ऽ	भ	ऽ	रे	का	ऽऽ	रे	का	ऽ	रे
०		३		४		x		०		२	

			प़	ध़					म	म	म
रे	नि़	सा	नि़	नि़	प़	सा	सा	सा	ग	ग	ग
धा	ऽ	ऽ	व	ऽ	न	ग	र	ज	ग	र	ज
०		३		४		x		०		२	

म	म		म			म	म				
ग	ग	ग	ग	म	प	प	ग	म	रे	-	सा
ब	र	स	ब	र	स	च	हूँ	ऽ	ओ	ऽ	र
०		३		४		x		०		२	

अन्तरा

प											
म	प	निध	निध	नि	नि	सां	-	नि	सा	सा	सा
द	सो	दिऽ	सऽ	त	र	फा	ऽ	न	त	र	फ
X		०		२		०		३		४	
सां									सा		
नि	सा	सा	रे	-	सा	सा	सा	सां	ध	नि	प
त	र	त	रा	ऽ	य	झ	र	झ	रा	ऽ	य
X		०		२		०		३		४	

				ध							
म	म	प	प	नि	ध	नि	सां	सा	रे	सा	सा
जि	त	ति	त	तें	ऽ	दा	दु	र	चा	त्र	क
X		०		२		०		३		४	

म	म				
प	ग	म	रे	-	सा
मो	ऽ	र	शो	ऽ	र
X		०		२	

संचारी

म	म	-	प	-	प	निध	निध	निध	निध	नि	प
धु	र	S	बा	S	धु	काS	SS	रS	देS	S	त
X		०		२		०		३		४	

			प			प		म	म		
प	म	प	सां	-	सां	नि	प	प	ग	म	म
त	र	त	रा	S	त	ध	र	ध	रा	S	त
X		०		२		०		३		४	

म	म	म	म			म	म			सा	
ग	ग	ग	ग	म	प	ग	ग	म	रे	रे	सा
को	S	य	ल	हू	S	कू	S	क	क	र	त
X		०		२		०		३		४	

			सा		सा	म	म				
सा	सा	सा	रे	रे	रे	ग	ग	म	रे	-	सा
बि	ज	लि	च	म	क	ठौ	S	र	ठौ	S	र
X		०		२		०		३		४	

आभोग

			ध						सा		
म	-	प	नि	ध	नि	सा	-	-	नि	सा	सा
पा	ऽ	ऽ	पी	ऽ	प	पी	ऽ	ऽ	हा	ऽ	र
x		०		२		०		३		४	

सा											
नि	सा	-	सानि	रें	सां	रे	सां	सां	निध	नि	प
पी	हु	ऽ	पीऽ	ऽ	हु	र	ट	त	नाऽ	ऽ	हि
x		०		२		०		३		४	

प		ध									
म	प	नि	ध	नि	सां	रे	नि	सा	नि	-	प
चि	ऽ	ता	ऽ	म	नि	अ	न	ग	र	ऽ	ग
x		०		२		०		३		४	

म	म				
प	ग	म	रे	-	सा
क	र	त	जो	ऽ	र
x		०		२	

"क्रमिक पुस्तक मालिका" - प० विष्णुनारायण भातखण्ड भाग-4, पृ0 596, 597 598

ध्रुवपद

राग-भवसाख

ताल-चौताल

स्थायी

सां	-	प	नि	प	-	ग	-	प	ध	नि	सा
दे	ऽ	रू	री	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ज	न	व	ऽ
x		०		२		०		३		४	
						म					
सा	-	ध	ध	नि	प	ग	-	प	म	-	म
ना	ऽ	ऽ	ग	ऽ	री	भे	ऽ	ष	ध	ऽ	नि
x		०		२		०		३		४	
म	म										
ग	ग	म	रे	-	सा	म	म	-	प	ग	-
ल	ली	ऽ	के	ऽ	छ	ल	न	ऽ	हि	त	ऽ
x		०		२		०		३		४	
नि	प	-	ग	-	प	ध	नि	रें	सा	ध	निसा
ल	ल	ऽ	न	ऽ	कै	से	ऽ	स	जे	ऽ	ऽ
x		०		२		०		३		४	

ग

	ग										
<u>नि</u>	<u>नि</u>	प	प	-	प	सा	सा	-	<u>नि</u>	सा	सा
प	ह	S	न	S	भू	ष	न	S	ब	स	न
x		०		२		०		३		४	
ध	ध	<u>नि</u>	<u>नि</u>	<u>रें</u>	सां	सा	सां	<u>ध</u>	<u>ध</u>	<u>नि</u>	प
दृ	ग	S	न	S	क	ज	रा	S	दि	S	यो
x		०		२		०		३		४	
म	म					म					
<u>ग</u>	<u>ग</u>	म	रे	-	सा	<u>ग</u>	-	<u>ग</u>	प	म	-
नि	र	S	ङ्गि	S	श्रृ	गा	S	र	सू	र	S
x		०		२		०		३		४	
			म								
<u>नि</u>	प	-	<u>ग</u>	<u>ग</u>	प	ध	<u>नि</u>	रे	सा	ध	<u>नि</u>सा
ब	भू	S	म	न	S	में	S	ल	जे	S	SS
x		०		२		०		३		४	

"अभिनव गीतांजलि" - पं० रामाश्रय झा 'रामरंग', भाग-2, पृ० 79, 80

स्वामी हरिदास जी की रचनायें

(1)

पायो मनोहर श्याम सुन्दर सुरति मुख मानो रली।
नव नेह अति रस रंग बाढ़यो दान दे उठि घर चली।।
कहत श्री हरिदास नागर कामिनी गुण सागरी।
जिन रसिक श्री हरिराय मोहे अधिक चातुर नागरी।।

(2)

बेनी गूंध कहा कोउ जाने मेरी सी तेरी सो राधे।
बिच बिच सेत पितरातें सोहत फूल को करि सके तिहारी सों राधे।।
बैठे रसिक संवारन बास कोमल कर ककई सों राधे।
हरिदास के स्वामी स्यामा नखसिख लों गुथन हीं सो राधे।।

(3)

कबहुँ कबहुँ मन इत उत जात यातें कौन है अधिक सुख।
बहु भांतिन तें घर आनि राखो नाहिं तो पावतो दुख।।
कोटि काम लावण्य बिहारी तामें मुंहचहा सब सुख लिये रहत रुख।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राणनि के आधारनि।।

"सगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनायें" - नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ0 52, 54 55

बैजू बावरा द्वारा रचित ध्रुवपद

(1)

काहे कूं भटकत फिरत रे मन जपो हरि नाम जासों काम।
तीरथ ब्रत नेम धर्म षट कर्म तज भए एक नाम।।
कलिकाल और नाहीं एक रह्यो हरि ब्योहार वही जप वही तप वही है धाम।
कहै बैजू बावरे सुन हो गुनी जन सांचो संसार मध एक ही है राम।।

(2)

प्रथम नाद मूल तें उचरे ताल बंधान सो गावै।
सप्त सुर तीन ग्राम इकइस मूर्च्छना बाइस सुरत उनचास कोट तान लावै।।
अंस ग्रह न्यास बिक्रत द्वादश भेद सों भरत संगीत हनुमत जतावै।
कहै बैजू बावरे सुन हो गोपाल नायक ऐसी विद्या सो को लरे पाहन पिघलावै।।

(3)

बंसीधर पिनाकधर गिरिवरधर गंगाधर चन्द्रमा लीलाधर हो हो हरिहर।
सुधाधर विषधर धरनीधर शेषधर चक्रधर त्रिशूलधर नरहरि शिवशंकर।।

रमाधर उभाधर मुकुटधर जटाधर भस्मधर कुंकमधर पीताम्बर धर व्याघ्रांबरधर।

नंदीधर गरुणधर कैलासधर बैकुंठधर कहै बैजू बावरे सुनहुगुनीजन निशिदिन

हरिहर ध्यान उर धर रे।।

"संगीत कवियों की हिंदी रचनायें" - 'नर्मदेश्वर चतुर्वेदी', पृ0 65, 74, 76

तानसेन द्वारा रचित ध्रुवपद

राग-भैरव

ताल - चौताल

प्रथम नाम गणेश कौ लेहुँ, जा सुमिरै होवै सर्व सिद्ध काज।

गौरीनंदन जगवंदन लंबोदर नाम जपत है,

सकल सृष्टि सुर-नर-गुनि शेष राज।।

विधन विनासन, सब दुख नासन, मंगलदायक दुढ़िराज।

'तानसेन' तेरी अस्तुति करै, सब देवन - सिरताज।।

रागिनी-तोड़ी

ताल - चौताल

प्रथत शब्द ओंकार, वर्ण प्रथम आकार,

जाति प्रथम ब्राह्मण प्रनाम करि लीजियै।

देव प्रथम नारायण, ज्ञानी प्रथम महादेव,

क्षमा प्रथम धरिनी, तेज प्रथम भानु लिखि लिजियै।

नदी प्रथम गंगा, पर्वत प्रथम सुमेरू

साज प्रथम बीना, भक्तन प्रथम नारद कहि दीजियै।

गीत प्रथम संगीत, नर में प्रथम स्वायंभु मनु, राजन प्रथम

राजा राम, तानन प्रथम 'तानसेन' उन्चास कूट रस पीजियै।।

रागिनी आसावरी

ताल - चौताल

माई री, महा कठिन भई मिलि बिछुरे की पीर।

घरी घरी पल छिन जुग से बीतन लागे,

नैनन भरि भरि आवत नीर।।

जब से स्यारों भयौ है न्यारौ, काल नाँ परति मेरी बीर।

'तानसेन' के प्रभु बेगि आवन कीजै जियरा धरत नाहीं धीर।।

....

"सगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनायें" - 'नर्मदेश्वर चतुर्वेदी', पृ० 122, 130

षष्टम अध्याय

धमार गायकी, एक रंगारंग परम्परा

(स) धमार का अर्थ

(रे) विभिन्न गायकों द्वारा गाये गये धमारों का उदाहरण

(ग) कुछ धमार स्वरलिपि सहित

धमार गायकी : एक रंगारंग परम्परा

धमार एक विशेष गायन शैली है। धमार को ध्रुवपद अंग की गायन शैली स्वीकार किया जाता है क्योंकि ध्रुवपद के समान धमार लयकारी प्रधान शैली में गाया जाता है। धमार शैली को ध्रुवपद गायक ही अधिकतर गाते हैं क्योंकि इसकी शैली ध्रुवपद के ही समान है। अतः हम कह सकते हैं कि ध्रुवपद गायन और धमार गायन में चोली दामन का साथ है। इसका एक कारण यह भी है कि ध्रुवपद में जो चार बानियां हैं उन्हीं बानियों का उल्लेख धमार में भी है। प्रसिद्ध विद्वान श्री बी0सी0 देवा के अनुसार,, कुछ शताब्दियों पूर्व चार वाणियां प्रचार में आईं। जो प्रबन्ध अथवा संगीतकार पर आधारित थीं। वे इस प्रकार हैं —

खण्डार वाणी

नौहार वाणी

गोबर वाणी

डागुर वाणी

इतिहास साक्षी है, कि औरंगजेब संगीत का महान मर्मज्ञ व कद्रदान था। उसके काल में संगीत ग्रन्थों का प्रणयन उसे समर्पित करने के लिये हुआ। अकबर तथा जहाँगीर व शाहजहाँ के समान औरंगजेब की प्रशंसा में भी ध्रुवपद व धमार की रचना हुई। अपने दरबार में संगीत का बहिष्कार औरंगजेब ने राजनीतिक कारणों से तब किया था। इसका प्रमाण संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'संगीत चिन्तामणि' से प्राप्त होता है, जिसमें औरंगजेब के संगीत प्रेम का भलिभाँति वर्णन किया गया है। इससे सिद्ध होता है

कि 'धमार' लोक-जीवन व वैष्णवों मन्दिरों के अतिरिक्त मुगल बादशाहों के दरबार व अन्त:पुर में भी गाये जाते थे। अकबर की राजधानी आगरा थी। तानसेन, उनके वंशजों और शिष्यों ने भी धमारों की रचना की, जो लोकगीत का एक विशेष प्रकार बनकर मुगल दरबार में प्रतिष्ठित हुआ।

धमार ताल में निबद्ध 'होरी' नामक गीत को धमार कहते हैं। धमार के गीतों में कृष्ण लीला का वर्णन होता है। धमाल, 'धमार', 'धमारी' इन तीनों रूपों का एक ही मूल है। संस्कृत धातु 'धम्' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, शब्द करना, जोर से फूँक मारना और बजाना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'धम इव ऋच्छति' (धम+कृ+अच्) से है जिसका अर्थ है गान का वह प्रकार, जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़काता हुआ सा चले।

धमार में कृष्ण के साथ गोपिकाओं, सखागण, नृत्य, गान, ढोल, डफ मजीरा, मृदंग, वंशी, अबीर गुलाल की बहार, रंग भरी पिचकारी आदि का वर्णन होता है, जो होरी का शाब्दिक चित्र प्रस्तुत कर देता है। जन साधारण में यह होली धमार नाम से प्रचलित है। धमार वृन्दावन क्षेत्र की देन है। यह विद्या वहीं लोकप्रिय हुई और धीरे-धीरे पूरे भारतवर्ष में फैल गई। धमार की भाषा भी ब्रज मिश्रित हिन्दी होती है। मंदिर में वैष्णव संतों द्वारा रचित पद 'धमार' कहलाते हैं जो धमार ताल में बद्ध होते हैं। इन धमारों की संगति के लिये पखावज का प्रयोग किया जाता है और कई कीर्तनकार एक साथ स्वयं झांस बजाकर 'धमार' गाते हैं। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फज़्ल ने "आईने अकबरी" में 'धमार' गाने वाले संगीतजीवी कीर्तनिया ब्राह्मणों की चर्चा की है। इनका प्रमुख वाद्य रबाब पखावज और झांस था।

मुगल दरबार में बीन का संगति के रूप में प्रमुख स्थान था, जो कि वीणा के स्थान पर आया था। दरबारों में धमारों की संगति 'बीन' और 'पखावज' से होती थी। धमार एक प्राचीन गायन विद्या है जो लोक संगीत में सामूहिक गान या जो टोलियों में गाया जाता था। होली खेलती हुई टोलियां धमार गाती थीं और उनकी संगति ढोल द्वारा होती थी। इसका विषय होली से सम्बन्धित होता था। कृष्ण और गोपियों के द्वारा होली खेलने का चित्रण धमार में उपस्थित होता था।

वैसे तो धमार ताल में निबद्ध 'होरी' नामक गीत को 'धमार' कहते हैं किन्तु संगीतज्ञों ने इन दोनों में थोड़ा अन्तर कर रखा है। उनके अनुसार,, धमार विधा केवल धमार ताल में गाई जाती है और ध्रुवपद शैली से गाई जाती है। जबकि 'होरी' धमार ताल की अपेक्षा दीपचन्दी, चाँचर, तीनताल में गाई जाती है और जो ठुमरी व ख्याल शैली से गाई जाती है। होरी कोटि में होली के प्रसंग युक्त गीत ही होते हैं।

'धमार' का पंजाब में भी प्रचार था। जो कि ध्रुवपद की अपेक्षा कम मात्रा में था किन्तु पंजाबी भाषा में धमार की रचनायें प्राप्त नहीं होती हैं। धमार का प्रभाव सिक्ख कीर्तन पर भी पड़ा। सिक्ख गुरुओं की अलौकिक वाणी की रचनायें धमार ताल में पाई जाती हैं। कीर्तनकार रबाबी तथा सिक्ख रागियों ने धमार में शब्द रीतें निबद्ध की। किन्तु धमार ताल में आधारित कीर्तन अप्रचलित ही रहा है। पंजाब के धमार ताल के बोलों में अन्तर है तथा मात्रायें व विभाग प्रचलित धमार के ही समान हैं पंजाब के धमार ताल जिसमें तबले के बोल हैं इस प्रकार है-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
ता	धि	Sक्ड़	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	धागे	ति	Sक्ड़	तिं	तिं	ता

14

तिरकिट

यद्यपि इस ताल में गाने का प्रचार समाप्त हो चुका है।

पंजाब में हरियाणा के तथा तलवण्डी घराने के संगीतकार ध्रुवपद धमार के ही विशेषज्ञ थे। तलवण्डी के मौला बख्श और हरियाणा के पं0 गुज्जर राम रागी ध्रुवपद धमार गाने में प्रसिद्ध थे। मियाँ अहमद जान फिल्लौर वाले ने धमार गायन में विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

दरबार में धमार काफी प्रचलित था। दरबारी गायक नायक की जगह अपने आश्रयदाता के नाम डाल दिया करते थे। जहाँगीर के अनुसार, तानसेन अपनी रचनाओं में अकबर का नाम डाल दिया करते थे। यमन राग में एक धमार में मानिनी नायिका और दूती का वर्णन इस प्रकार है, दूती कहती है-

"होरी खेलई बनैगी, रुसैं अब न बनेगी।

मेरो कहो तू मानि नवैली, जब व रंग में सनैगी।।

कई बैरि आई-गई तू, नाहीं मानत ऊँची करि ठोड़ी भौंहे तनैगी।

साहि जलालदीन फगुआ दीजै, आपुतें आप मनैगी।।"

अर्थात्- 'अब तो होली खेले ही बनेगी। रूठने से कुछ नहीं होगा। नवेली तू मेरा कहना मान ले, तभी उस रंग में ओत्-प्रोत् होगी। मैं कई बार आई गई, परंतु तू ठोड़ी ऊँची कर-करके भौहें तानती ही

रहेगी। शाह जलालुद्दीन (अकबर) आप 'फगुआ' दीजिये। अपने आप मान जायेगी'

मुहम्मदशाह रंगीले के दरबारी कलाकार नेमत खाँ सदारंग ने भी अनेक धमारों की रचना की। इन्होंने अपनी रचनाओं में मुहम्मद शाह को नायक बनाया है। इनके धमारों के विषय भिन्न-भिन्न हैं जैसे- फागुन, ब्रज, और कृष्ण, होली में वर्षा, होली में वियोगिनी की दशा इत्यादि विषयों पर आपने धमारों की रचना की है। इनके कुछ धमार इस प्रकार हैं-

होली में वर्षा का आरोप -

"फागुन मास में जह प्रगट दिखाई।

पिचकारी अरु भोडर चपला, अबीर, गुलाल घटा छाई।।

करि सिंगार हार-भोती-माल, बग-पंगति छवि छाई।

सदारंगीले छबीले मुहम्मदसा उमंगो झर लाई।"

ब्रज और कृष्ण का वर्णन -

"ए हो खिलार, नए हौ रसिया अनौखे, नई भई ठकुराई।

भलौ बुरौ पहचान नाही, एकहि बेर चले इतराई।।

नाउँ न जानौ गाँउ न बूझौ, ऐसी ब्रज में धूम मचाई।

रसिक छैल रसभीने गिरिधर 'सदारंग' सुखदाई।।"

फागुन–

"अब तौ महम्मदसाहि पिय घर आए।

चहल पहल फागुन की दैखौ, जित तित 'सदारंग' बरसाए।।

चैन सों गाओ आओ रहसि रहसि कहि लाखनि लाखनि पाए।

इक होरी दूजे न्हाए रंग सों, यह सुख गिने न जात गिनाए।।"

सदारंग के पश्चात् उनके भतीजे और दामाद फिरोज खाँ अदारंग रामपुर राजवंश के संस्थापक नवाब अलीमुहम्मद खाँ के पुत्र नवाब मुहम्मद सादुल्ला खाँ के आश्रय में रहे जहाँ इन्होंने धमार रचना की।

अदारंग द्वारा रचित धमार –

"एरी नैंक सुध हमसों बोलि नारि।

होरी मैं गुमान काम नहिं आवै, तू तो मुगध गँवारि।।

कहूँ रंग, कहूँ अबीर गुलाल, कुहूँ कुमकुमा कहूँ पिचकारी।

ऐसी हौं फगुआ माँगियै मुखते, 'अदारंग' अँचरा डारि।।"

सदारंग के पुत्र मनरंग ने भी धमारों की रचना की थी। ये जयपुर दरबार में थे। इनका रचित ध्रुवपद इस प्रकार है –

"कछु ऐसो मंत्र पढ़ि रंग छिरकौरी होरी के दिननि मैं इनि मनमोहन बनवारी। सकल त्रिअनि मैं कौने सिखाई हौं न जानौं, ऐसी कौन है नारी बारी।।

मोहि जानि वृषभान-दुलारी, मन हरि लीनो नन्द के बिहारी।

मनरंग सहस गारी दै भई मतवारी, बजाय तारी।।"

इसके अतिरिक्त नूररंग तथा सबरंग ने भी धमारों की रचना की जिनके उदाहरण इस प्रकार हैं –

नूर खाँ द्वारा रचित धमार 'होरी' –

"कटि लचकावत भौंहे मटकावत

ऐसौ दीठ निलज या दैया

जहँ पावत, तहँ पकरि रंग में,

बोरत है हलधर को भैया।।

'नूररंग' कहें या कौ तकत है

जैसो हौइगौ ब्रज को बसैया।।"

सबरंग द्वारा रचित धमार -

"लाल लै गुलाल सखि, मेरौ मुख गहि मींड़ौं,

गूँज मुरकी नथ की इनि बरजोरी।

कंचुकी दरकी मोरी अंक भरि लीनि,

यह गति कीनी है मोरी।

लाल लँगर लँगराई करत है,

गोरी दिनन की थोरी।

जाही नगर में अब सबरंग सों,

खेली है मनभाई होरी।।"

धमार की गायकी में अच्छा गायक मात्रा प्रस्तार का आश्रय लेकर लय के विविध प्रकार प्रस्तुत करता है। पखावज वादक इस क्रिया में उनका साथ देते हैं।

आजकल ख्याल की लोकप्रियता के कारण अब कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में सारा पाठ्यक्रम ख्याल पर ही आधारित होता है। शैली का मात्र परिचय देने के लिये ध्रुवपद व धमार सिखाये जाते हैं व परीक्षाओं में पूछे भी जाते हैं। अत: धमार गायन, परीक्षा कक्ष में ही सीमाबद्ध हो कर रह गया है। पुरानी पीढ़ी के गायक ख्याल गायन से पूर्व धमार गाया करते थे जिन में उस्ताद नत्थन खाँ, उस्ताद विलायत हुसैन खाँ, फैयाज खाँ, श्रीमति सुमति मुटाटकर

आदि का नाम विशेष प्रसिद्ध है। ध्रुवपद गायक भी धमार गायन में निपुण होते थे। ध्रुवपद गायन में रहीम सेन, अला बन्दे खाँ, नसीरमुईनुद्दीन, सीता राम तिवारी, राम चतुर मलिक, नसीरुद्दीन, अमीनुद्दीन डागुर, असगरीबाई के नाम उल्लेखनीय हैं।

अब मैं उदाहरण के लिये धमार की कुछ स्वरलिपियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ-

धमार

राग झिंझोटी

ताल धमार
(विलम्बित)

स्थायी

सा									प		म		
नि	-	ध	पध	सा	-	-	ग	रे	म	-	ग	-	म
आ	S	यो	SS	फा	S	S	गु	न	S	S	मा	S	S
३				X					२		०		
	रे			सा									
ग	ग	सा	-	नि	-	-	धनि	पध	सा	सा	-	सा	-
स	स	खी	S	मो	S	S	हS	नS	सँ	ग	S	खो	S
३				X					२		०		
		म									रे	रे	
रे	-	ग	ग	ग	-	सा	रे	-	म	-	ग	सा	-
S	S	ल	त	हो	S	S	S	S	S	S	S	री	S
३				X					२		०		

अन्तरा

प												
म	म	-	प	ध	सां	-	सां	म	प	ध	सा	रे	म
अ	बी	ऽ	र	गु	ला	ऽ	ल	की	ऽ	भ	र	पि	च
x					२		०			३			

			सा										
ग	-	सा	नि	-	ध	प	म	-	-	प	ध	सा	नि
का	ऽ	ऽ	री	ऽ	मु	स्का	मीं	ऽ	ऽ	ज	त	है	ऽ
x					२		०			३			

नि								रे	
ध	प	-	ध	प	म	गरे	ग	सा	-
ब	र	ऽ	जो	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	री	ऽ
x					२		०		

"क्रमिक पुस्तक मालिका" - प० विष्णुनारायण भातखण्डे, भाग-5, पृ० 271, 272

होरी

राग सिंदूरा धीमा त्रिताल

स्थायी - ना दैया मैं अब न जाऊँगी बीच मे ठाढ़ो होरी के खेलैया।
अन्तरा - बाट घाट मोहे रोकत टोकत, वो देखो ब्रज के बसैया।

स्थायी

म	प	नी	सां	रे	गं	रें	सा	-	नीसा	-रे	नी	नी	ध	नी	प
ना	ऽ	दै	ऽ	या	ऽ	मैं	तो	ऽ	अब	नोऽ	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ऊँ
३				x				२				०			

ध	म	-प	-ध	ग	रे	ग	रे	स	रेम	-प	-ध	नी	ध	नी	धप,
गी	बी	ऽच	ऽमे	ठा	ऽ	ऽ	ढ़ो	ऽहोरी		ऽके	ऽखे	लै	ऽ	ऽ	योऽ
३				x				२				०			

ध, मप -नी सां
ऽ, नाऽ ऽदै ऽ

अन्तरा

-	म	पनी	सानी	सा	नी	सा	सां	-रे	गुरें	सा	रें	नी	धनी	धप
ऽ	बा	ऽट	ऽऽ	घा	ट	मो	हे	ऽरो	ऽक	त	टो	ऽ	ऽऽ	कत
३				x				२			०			

-	म	-प	ध	ग	ग	रे	सा	-	रेम	-प	ध	नी	ध	नी	धप
ऽ	वो	ऽदे	खो	ब्र	ज	के	ऽ	ऽ	बसै	ऽऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽऽ
३				x				२				०			

ध, मप -नी सा
ऽ, नाऽ ऽदै ऽ

"अभिनव गीताजलि" - प0 रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-2, पृ0 148, 149

होरी

राग कालिंगड़ा

दीपचंदी (विलंबित)

स्थायी

प										सा			
ग	म	-	ग	-	-	रे	सा	-	रे	नी	-	सा	रे
कौ	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	खे	ले	ऽ	ऽ	तु	ऽ	म्से	ऽ
X			२				०			३			
ग	-	-	म	-	-	धुप	(म)	-	-	ग	रे	ग	-
हो	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ	कऽ	न्है	ऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
X			२				०			३			

										सा			
(म)	-	-	ग	-	म	रे	सा	-	रे	नी	-	सा	रे
को	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	खे	ले	ऽ	ऽ	तु	ऽ	म्से	ऽ
X			२				०			३			
ग	-	-	म	-	नी	धुप	(म)	-	-	ग	रे	ग	-
हो	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ	कऽ	न्है	ऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
X			२				०			३			

सां							नी						
नी	-	-	सां	-	-	रे	सां	नी	-	ध	-	प	-
बा	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	बा	ऽ	र	ऽ	मो	ऽ	को	ऽ
X			२				०			३			

प										ग			
ध	सां	-	ध	प	ध	म	धध	पम	प	म	रे	ग	-
ना	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	द्दु	वेऽ	ऽऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
X			२				०			३			

पग	मग	म	ग	-	-	रे
काऽ	ऽऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	खे
X			२			

अन्तरा

ग													
म	म	-	म	-	ग	म	प	प	-	प	-	-	-
बि	द	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ब	न	ऽ	मे	ऽ	ऽ	ऽ
x			२				०			३			
						ध॒	नी						
ध॒	-	-	ध॒	-	-	सा	ध॒	ध॒	-	प	-	-	ध॒
को	ऽ	ऽ	ले	ऽ	ऽ	के	आ	रि	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
x			२				०			३			
ग	म												
म	ध॒प	-	म	-	ग	म	प	प	-	प	-	-	-
बि	दऽ	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ब	न	ऽ	में	ऽ	ऽ	ऽ
x			२				०			३			
			सा				नी	ध॒					
ध॒	-	-	नी	-	सां	रे॒	ध॒	सां	नी	ध॒	-	प	-
को	ऽ	ऽ	ले	ऽ	ऽ	के	आ	रि	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
x			२				०			३			
प						ग							
ग	म	-	म	-	-	म	गम	पध॒	प	म	-	ग	-
अ	बी	ऽ	र	ऽ	ऽ	गु	लाऽ	ऽऽ	ऽ	ल	ऽ	की	ऽ
x			२				०			३			
प													
ध॒	सां	-	ध॒	प	ध॒	म	ध॒ध॒	पम	प	म	ग	रे॒	ग
धू	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	म	चैऽ	ऽऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
x			२				०			३			

....

सप्तम अध्याय

वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली का विकास

(स) ख्याल की उत्पत्ति और उसके विभिन्न अर्थ

(रे) ख्याल शैली के अवयव व प्रकार

(ग) ख्याल शैली के घराने

(म) ख्याल शैली का साहित्यिक पक्ष

(प) कुछ ख्याल स्वरलिपि सहित

वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित ख़्याल शैली का विकास

संगीत की सभी शैलियों में प्रारम्भ से ही भक्तिभाव विद्यमान रहा है और साथ ही विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय और प्रतिभाशाली व्यक्तियों के योगदान से भारतीय संगीत की शैलियाँ निखरती रही हैं। विविध काल की गायन शैलियों में सामगान, ध्रुवागान, जातिगान, प्रबन्धगान, ध्रुवपद व धमार गायन के परिचय में हमने देखा की यह सब अपने युगों के भक्तों एवं उनकी रचनाओं की देन के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वस्तुत: ख्याल शैली में भक्ति भाव के साथ-साथ अन्य अनेक भावनाओं का समावेश हुआ और संगीत विद्वानों ने ख्याल गायन शैली को इस प्रकार मान्यतायें दीं जिसके अनुसार, ख्याल में निम्न तत्वों की प्रधानता मानी गई। ख्याल शैली को श्रृंगार प्रधान गायन शैली मानने की परम्परा चल पड़ी क्योंकि इस शैली का निर्माण दरबारी संगीत के तौर पर हुआ जिसे गणिकायें एवं कव्वाल बच्चों ने गाकर इसके विलासमय स्वरूप को उजागर किया। ख्याल के साहित्य में श्रृंगार रस की अधिकता मध्य युग की देन रही। ध्रुवपद के जो विषय थे जैसे देवी सरस्वती, दुर्गा, भवानी की वन्दना, राम, कृष्ण, गणेश की स्तुति और इनकी महिमा वर्णन का स्थान, नायिका भेद समन्वित गीतों ने ले लिया और इस प्रकार ख्याल शैली में भक्ति भाव के साथ-साथ उक्त सभी विशेषताओं को भी स्वीकार किया। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण ख्याल शैली में भक्ति के अतिरिक्त इन सभी विशेषताओं का समावेश हुआ। आज शास्त्रीय संगीत की मुख्य गायन शैली के रूप में ख्याल गायन शैली लोकप्रिय हुई।

ख्याल की उत्पत्ति और उसके विभिन्न अर्थ:—

ख्याल शब्द के विभिन्न अर्थ हैं जो इस प्रकार हैं—

वृहत् हिन्दी कोष में ख्याल का अर्थ कल्पना, चिंता, सोच-विचार, ध्यान, लिहाज़ याद व एक विशेष गान पद्धति है। जबकि मानक हिन्दी कोष में मन होने वाली किसी प्रकार की धारणा या विचार है। उर्दू-हिन्दी शब्दकोष में ख्याल का अर्थ कल्पना, ध्यान, विचार, स्मृति जज्ब प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा सुर कोष के अनुसार, ख्याल का अर्थ याद, विचार ध्यान है। जबकि राजस्थानी सबद कोष के अनुसार, अनुमान, ध्यान, विचार व एक विशिष्ट गायकी है। हिन्दी शब्द सागर में ख्याल का अर्थ सोचना, याद करना, ध्यान, ख्याल करना, समझ, कल्पना, अनुमान, लावनी गाने का एक ढंग, एक विशेष प्रकार का गान है। आदर्श हिन्दी-संस्कृत शब्दकोष में ख्याल का अर्थ विचार, मत संमति, स्मरण, धारणा, सस्मृति, अनुमान, वितर्क, है। इस प्रकार ख़याल, ख़्याल या ख्याल शब्द का अर्थ विचार, कल्पना, ध्यान, एकाग्रता, अनुमान स्मृति आदि से सम्बन्धित है। अतः ख्याल का स्थूल अर्थ 'कल्पना' ही कहा जा सकता है। श्री ओ0 गोस्वामी का कथन 'कल्पना' के बारे में इस प्रकार है —

"Kheyal (imagination) is so called because it is by nature imaginative both as regards its subject matter and its interpretation. Unlike Dhrupad it is not bound by rigid rules except those pertaining to the use of notes in the raga It permits improvisation as much as possible as swaravistara (development) with the song texts, in addtion to the alap at the outset. It sanction the use of decorative devices like graces, flourishes, trills tremours, jerks etc. and above all tanas. Thus

the musician enjoys greater freedom in its execution and the listener is treated a greater variety The Kheyal is imaginative in conecption, decorative in execution and romantie in appeal Almost all themes can be rendered in it-devotional, heroie and romantic-though it is not as greatly susted for martial and heroic themes as Dhrupad It is suitable for singing by both men and women It is the dominant style today. It may be described as classico-romantic "

पहले प्रचलित छन्द, प्रबन्ध, ध्रुवपद, कव्वाली इत्यादि गायन शैलियों का प्रभाव ख्याल पर पड़ा। ऐसा कह सकते हैं, कि इन्हीं के प्रभाव से ख्याल की उत्पत्ति हुई। ख्याल की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत दिये हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार, ख्याल की उत्पत्ति ध्रुवपद से हुई। कुछ विद्वानों के अनुसार, ध्रुवपद तथा कव्वाली से हुई, तथा कुछ विद्वानों के अनुसार, साधारणी गीति से हुई। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों के अनुसार, चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत में ईरानी संगीत का मिश्रण करके अपनी कल्पना से ख्याल शैली का आविष्कार किया।[1]

एक विद्वान के अनुसार, ख्याल की रचना सबसे पहले अमीर खुसरो ने की परन्तु उस समय ख्याल शैली अधिक लोकप्रिय न हो सकी। अठ्ठारहवीं शताब्दी में सदारंग (न्यामत खाँ) ने ख्याल रचनायें की, जिससे उन्होंने अपने समय के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले का

---

1. 'भारतीय सगीत शिक्षा' (संगीत, जून 1962, पृ0 28) में लखक नदराम चतुर्वेदी का कथन हे कि - 'अलाउद्दीन खिलजी का दरबारी गायक अमीर खुसरो ईरानी सगीत का आचार्य था। भारत आन पर उसने सगीत शिक्षा ग्रहण की और अपनी कल्पना शक्ति के बल पर उसने भारतीय सगीत मं ईरानी सगीत का मिश्रण कर नवीन गायन शैलियों का आविष्कार किया। इसके पूर्व, प्रबन्ध गान या ध्रुवपद गान आदि का प्रचलन था। खुसरो ने भारतीय संगीत में कव्वाली व ख्याल गान का आरम्भ किया।'

नाम डाल दिया जिसमें वो अधिक लोकप्रिय हुईं। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनायें' (पृ0 37) नामक पुस्तक में अपना मत दिया है, कि अकबर के समय में जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने विलम्बित ख्यालों का आविष्कार किया और अमीर खुसरो ने कव्वाली से द्रुत ख्यालों की रचना की। इसी मत की पुष्टि श्री हरिप्रसाद अंशुमाली ने 'भारतीय संगीत की ऐतिहासिक परम्परा' लेख (संगीत, मई 1968 पृ0 6) में की है। उनके अनुसार, जौनपुर के शासक हुसैन शाह शर्की द्वारा विलम्बित ख्याल का आविष्कार हुआ तथा अमीर खुसरो द्वारा अविष्कृत कव्वाली से द्रुत ख्याल का प्रचलन हो गया। इस प्रकार तब से ख्याल गायन की परिपाटी चल पड़ी।

'ख्याली दुनिया की उपज ख्याल' (संगीत मई 1965 पृ0 31) लेख मे डॉ0 समर बहादुर सिंह जी, 'रुपक' से ख्याल का उद्गम मानते हैं। उनके अनुसार, आज से छः-सात सौ वर्ष पहले हमारी दो मुख्य गायन शैलियाँ थीं- 'प्रबन्ध' और 'रुपक'। प्रबन्ध शैली आगे चलकर ध्रुवपद में परिणित हुई। रुपक शैली का उद्देश्य सांगीतिक कल्पना तथा विभिन्न बोलों द्वारा गीत के भावों को प्रकट करना था। यही शैली आगे चलकर ख़्याल के रूप में सामने आई। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने हुसैन शाह शकी को ख्याल का आविष्कारक माना है। जैसे- सैयद इकबाल अहमद जौनपुरी ने 'शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास' में (पृ0 64, 598-599, 602-603) में अनेक स्थानों पर ख्याल के आविष्कारक जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की को माना है इनके अतिरिक्त उमेश जोशी ने भी अपनी पुस्तक 'भारतीय संगीत का इतिहास' (पृ0 220) में इस मत की पुष्टि की है। एक विद्वान के विचारानुसार, ख्याल शैली अमीर खुसरो से पहले ही भारत में विद्यमान थी। उनके अनुसार, अमीर

खुसरो के समकालीन नामदेव ने अपने एक अभंग में ख्याल का वर्णन किया है जो इस प्रकार है –

"राजसी तामसी जे गाण।तोड़ी ताल मोड़ी मान।।

ख्याल गाए कंपस्वर। रिझवी दात्या चें अंतर।।

हे तो प्रीति घनावरी। अर्था अनर्थ तो करी।।

नामा म्हणों शास्त्रार्थ। अर्थ तोचि होय स्वार्थ।।"[1]

लेखक के अनुसार, यदि अमीर खुसरों को ख्याल का प्रवर्त्तक माना जाये तो इस शैली का इतनी जल्दी बनना व प्रचलित होना असम्भव है। लेखक सदारंग को भी ख्याल का प्रवर्तक नहीं मानते क्योंकि सदारंग (1719-1748) के पहले महाराष्ट्र के एक कवि मध्व मुनीश्वर (1689-1731ई0) के पदों में ख्याल का वर्णन प्राप्त होता है-

"वोत्या श्लोक पदे प्रबंधो रचना है तो निकाली नवी।

टप्पे ख्याल कितेक गाति यमके जाले फुकचि कवी।।"

इसके अतिरिक्त, कुछ विद्वान ऐसे हैं जिन्होंनें ख्याल का आधार प्राचीन शैलियों को माना है। कुछ विद्वानों के मतानुसार, ध्रुवपद से ही ख्याल की उत्पत्ति हुई है, केवल प्रचार कार्य विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया गया। एक विद्वान के अनुसार, ध्रुवपद की शुद्धता बनाये रखने के लिये जो बन्धन थे, उनके विरुद्ध हुई प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ख्याल का जन्म हुआ। विद्वान कृष्णराव शंकर पंडित के अनुसार, "ख्याल ध्रुवपद की अगली सीढ़ी है। ख्याल के आविष्कार का श्रेय, अमीर खुसरो, सुल्तान शर्की, सुल्तान बाज़ बहादुर आदि को दिया जाता है किन्तु इसके प्रचार का श्रेय

---

1. प्रा0 म0 वि0 धोंड 'प्रबध, ध्रुवपद तथा ख्याल' सगीत कला विहार, अप्रैल 1975 पृ0 171

तो सदारंग-अदारंग को ही देना पड़ेगा।"[1] ओ0 गोस्वामी के अनुसार, जो शैली आरम्भ से ही ध्रुवपद परम्परा के अनुकूल चली आई थी, उसमें विषयों का क्षेत्र बढ़ा और जीवन दृश्यों का समावेश किया जाने लगा जिससे उसमें नवीनता का प्रादुर्भाव हुआ। धीरे-धीरे इस नवीन शैली ख्याल ने दरबार के अतिरिक्त जनसमाज में भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[2] ओ0 गोस्वामी जी के अनुसार, लोक-संगीत का एक प्रकार 'पचदा' को साहित्यिक रूप देकर 'लावनी' बना दिया गया, जिससे ख्याल शैली का उद्गम हुआ। कव्वाली को ख्याल का आविष्कारक मानते हुये श्री के0जी0 गिंडे कहते हैं, कि अमीर खुसरो द्वारा आविष्कृत कव्वाली, ख्याल का मूल थी।[3] एक अन्य विद्वान के अनुसार, ख्याल, ध्रुवपद तथा कव्वाली का सम्मिलित रूप है। स्वामी प्रज्ञनानन्द के अनुसार, ध्रुवपद से ही कुछ नई गमकों के साथ एक नई शैली 'ख्याल' का उद्गम हुआ। यह पहले सुल्तान हुसैन शाह शर्की द्वारा आरम्भ किया गया बाद में सदारंग-अदारंग द्वारा इसका प्रचार किया गया।[4] एक विद्वान के अनुसार, विलम्बित ख्याल की रचना ध्रुवपद के समान होती है। ध्रुवपद में जो आलाप बन्दिश आरम्भ करने के पहले लिये जाते थे, ख्याल में वे ही आलाप तालबद्ध रूप में रचना के पश्चात् गाये जाते है। ध्रुवपद में होने वाली लयकारियों को ख्याल के तान व बोलतान में स्थान दिया गया। आलाप के अन्त में ध्रुवपद गायक द्रुत गति से विस्तार करते हैं वही ख्याल गायक 'तराना' गीत में करते हैं। अत: इन तथ्यों के आधार पर, इन्होंने ध्रुवपद से ही ख्याल की उत्पत्ति मानी है। आचार्य बृहस्पतिजी के मतानुसार, 'ख्याल' शब्द 'ध्यान' का अनुवाद है। 'ख्याल' ध्रुवपद और कव्वाली

---

[1]. कृष्णराव शंकर पंडित- 'ग्वालियर की ख्याल गायन शैली' सगीत, दिसम्बर 1969 पृ0 9

[2] O Goswami - The story of Indian Music Page 127

[3]. क.जी. गिडे - 'मूल ठाठ राग-रागिनियाँ और रस'। सगीत, जून 1974 पृ0 10

[4] Swami Prajnananda - 'Historical Development of Indian Music', Page 78

का सम्मिलित रूप है। इसमें स्थायी-अन्तरा ध्रुवपद से व तान कव्वाली से ली गई थी। जो रचनायें कव्वालों द्वारा गाई जाती थीं वे ख्याल कहलाती थीं। इनका विषय अल्लाह, रसूल, पीर इत्यादि था। धीरे-धीरे ख्याल में श्रृंगार-रस व नायिका-भेद को भी प्रश्रय मिला। मुहम्मद शाह रंगीले के समय में यह शैली अत्यधिक लोकप्रिय हुई और इसे शास्त्रीय गायन का पर्याय माना जाने लगा।[1]

ठाकुर जयदेव सिंह जी ने अपने लेख Evolution of Khyal में पेज 128-130 पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं -

"I maintain that the so called khyal style of musical composition is nothing but only a natural development of the Sadharani Giti which used the exquisite feature of all the style It is this sadharanigiti with the predominate use of bhinna in it that became the khyal .. There is definite proof therefore, that such style of musical compositions have been in existence in Indian music at leas from 7th or 8th century A.D. The sadharani style of composition with generous and plenliful use of Gamakas became our Khyal composition .. khyal adopted this style for its composition i.e. It embodied within itself the execllent features of all the styles and had a gamaks without bothering about their names- khatka, Murki, Meend, Kamp, Andolana- everything was beautiful women in its structure . When Amir Khusaro in the 13th century heard the ornate style or rupakala full of so much embellishments he could not think of designating this music of creative imagination better than by the

---

[1]. आ0 वृहस्पति- 'मुसलमान और भारतीय सगीत' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 21 फरवरी, 1971 पृ0 33)

word khyal . khyal was neither imported from Arabia nor persia There was a certain style of musical composition and a certain style of rendering already prevalent in Indian music. Khyal was only a natural development of that style Neither Amir Khusroo invented it nor did the Sharqui King of Jaunpur, though each of them may have lent a hand in its development It became very popular in the 18th century during the reign of 'Muhammad Shah' when Adarang and Sadarang composed hundreds of songs in this style "

एक विद्वान के अनुसार, 'रुपकालाप्ति' से ख्याल का उद्भव हुआ। कुछ विद्वान सदारंग-अदारंग से ही ख्याल का जन्म मानते हैं। डॉ0 अमरेशचन्द्र चौबे के विचारानुसार, परिवर्तन के परिणामस्वरूप ध्रुवपद से ही ख्याल का जन्म हुआ। गीतों को अत्यन्त छोटा करके स्वर व राग प्रस्तार में तान के विभिन्न प्रकारों को जोड़ दिया गया परिणामस्वरूप ख्याल गायकी का जन्म हुआ।

पं0 भातखण्डे जी इन विचारकों से हट के अपना मत प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, किसी एक व्यक्ति ने ख्याल का आविष्कार करके उसका प्रचार नहीं किया बल्कि यह हो सकता है कि समाज में इस प्रकार का गाना तो था किन्तु प्रचलन में नहीं था। सुल्तान हुसैन शाह शर्की को वह गायन अच्छा लगा और उन्होंने इसे प्रचलन में लाने का प्रयास किया।[1] डॉ0 शत्रुघन शुक्ल तथा श्री चैतन्य देसाई के अनुसार, ख्याल की व्युत्पत्ति 'खेल' से हुई है।

इस प्रकार ख्याल के उद्गमसे सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये। उपरोक्त मतों के आधार पर हम कह सकते हैं, कि 'ख्याल' किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज

---

1. प0 वि0न0 भातखण्डे कृत 'भातखण्डे सगीत शास्त्र' (प्रथम भाग, द्वितीय सस्करण) पृ0 55

नहीं है वरन् यह प्राचीन काल से चली आ रही शैली अथवा शैलियों का परिवर्तित या विकसित रूप है। यह परिवर्तन अनेक वर्षों अनेक पीढ़ियों व अनेकानेक व्यक्तियों के परिश्रम का फल है। सभी शैलियाँ एक दूसरे से उद्भूत अथवा एक दूसरे पर आधारित होती हैं एक शैली के पतन के पूर्व दूसरी शैली प्रचलित हो जाती है या यह कह सकते हैं कि विकसित अथवा प्रचलित शैली ही पूर्व शैली के पतन का कारण बनती है। जाति, प्रबन्ध, ध्रुवपद कव्वाली सभी एक दूसरे की अवनति का कारण बने। किन्तु फिर भी प्राचीन शैली को नवीन शैली पूर्णरुपेण समाप्त न कर सकी। सिद्ध है कि ख्याल के आविष्कार के लिये अमीर खुसरो, सुल्तान हुसैन शर्की व सदारंग में से किसी एक को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है।

ख्याल शैली के अवयव :—

ख्याल शैली के सांगीतिक स्वरूप में मुख्य विभागों के अन्तर्गत् स्थायी अन्तरा का मुख्य स्थान है। राग विस्तार में आलाप तान की बढ़त, शब्द रचना व स्वर रचना में स्थायी अन्तरे का विशेष महत्व रहता है।

ख्याल गायन शैली में बन्दिश तथा विस्तार में दो भाग होते हैं- स्थायी व अन्तरा। विद्वानों के मातानुसार, ये स्थायी अन्तरा वैदिक काल में प्रचलित पाँच भक्तियों हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार निधन के अवशेष हैं। एक अन्य मत के अनुसार, सात भक्तियों हिंकार, प्रस्ताव उद्‌गीथ, प्रतिहार, प्रणव, उपद्रव व निधन के समान ही बाद में पाँच विभाग उद्‌ग्राह, अनुद्‌ग्राह, सम्बन्ध, ध्रुवक एवं आभोग परिलक्षित होते हैं और आगे चलकर 600-500ई0 में यही विभाग उद्‌ग्राह, मेलापक, ध्रुवक, अन्तरा, व आभोग नाम से मिलते हैं। पं0 शारंगदेव कृत "संगीत रत्नाकर" की "कलानिधि" टीका में कल्लिनाथ ने लिखा है-

"वैदिके सामनि प्रस्तावारख्यस्य अंगस्य।

गीते सामन्युद्ग्राह इति संज्ञा।

उद्गीस्थ अनुद्ग्राह इति संज्ञा।

प्रतिहारस्य संबन्ध इति संज्ञा।

उपद्रवस्य ध्रुवक इति संज्ञा।

निधनस्य आभोग इति संज्ञा।

एवं क्रमो दृष्टव्य:"

पं० व्यकंठमुखी ने 17वीं शताब्दी में अपनी कृति "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" में चार धातुओं का वर्णन किया है। 18वीं शताब्दी में पं० श्रीनिवास ने अपने ग्रन्थ "रागतत्व विबोध" में उद्ग्राह, स्थायी, संचारी, व द्योतक चार धातु बताये हैं। धीरे-धीरे धातुओं के नामों तथा संख्या में परिवर्तन आता गया। ये धातु हमें स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग नाम से ध्रुवपदों में परिलक्षित होते हैं। कालान्तर में ध्रुवपदों में दो धातुओं का प्रयोग होने लगा। ध्रुवपद के स्थान पर ख्याल शैली का प्रचलन बढ़ने से उसमें भी दो धातु स्थायी, अन्तरा का प्रयोग होने लगा। आज कल अधिकतर सभी में जैसे ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना में दो भागों का ही प्रयोग होता है। कुछ गायन शैलियों मे एक से अधिक अन्तरे का भी प्रयोग होता है। जैसे- गज़ल, भजन, गीत।

स्थायी का साहित्यिक अर्थ है- स्थिर रहने वाला, दृढ़, टिकने वाला या टिकाऊ। संगीत में स्थायी का प्रयोग अनेक प्रकार से होता है। गीत का प्रथम भाग स्थायी कहलाता है। पहले स्थायी में विषय अथवा प्रसंग को स्थापित किया जाता है। मध्य से निषाद तक इस भाग की बढ़त की जाती है मन्द्र सप्तक में भी विस्तार होता है। आलाप करते समय स्थायी के शब्द अथवा गीत के शब्द ही

आलाप में लगाकर सौन्दर्यपूर्ण ढंग से गाये जाते हैं। अन्तरे के शब्दों की बढ़त अन्तरा गाने के बाद थोड़ी देर करते हैं फिर स्थायी के शब्दों को गाकर ही तान सरगम आदि करते हैं। इस प्रकार राग के आरम्भ से लेकर अन्त तक गीत की स्थायी गाई जाती है। इसका आधार वादी स्वर होता है। स्थाई को कुछ गायक आस्ताई कहते हैं। दूसरा भाग अन्तरा है। इसमें मध्य तथा तार सप्तक में संचार किया जाता है। इसका आधार सम्वादी स्वर होता है।

ख्याल शैली के प्रकार :—

ख्याल शैली के तीन प्रकार हैं- विलम्बित ख्याल, मध्य लय के ख्याल व द्रुत लय के ख्याल। वर्तमान समय में विलम्बित व द्रुत ख्याल ही अधिकतर गाया जाता है मध्यलय के ख्याल का प्रचार कम हो गया है।

विलम्बित ख्याल —

विलम्बित का अर्थ है धीमी गति वाला अर्थात् जो ख्याल धीमी लय में या कम गति वाली लय में गाया जाये वह विलम्बित ख्याल कहलता है। विलम्बित से भी ज्यादा धीमी गति, मध्यलय की दुगुनी अति विलम्बित कहलाती है। विलम्बित ख्याल को साधारण भाषा में 'बड़ा ख्याल' कहते हैं। क्योंकि यह धीमी लय में ज्यादा देर गाया जाता है तथा इसमें गम्भीरता अधिक होती है। विलम्बित ख्याल की बंदिश मुक्त छन्द के रूप में होती है जिसको तालबद्ध करके गाते हैं। तान, बोलतान, बहलावा, पल्टे, मीड़ मुर्की इत्यादि का प्रयोग इस गायकी में सौन्दर्य को उत्पन्न करता है। विलम्बित ख्याल में गीत की बन्दिश बहुत बड़ी नहीं होती अधिकतर केवल एक स्थायी व एक अन्तरा होता है। अति विलम्बित में अन्तरा एक

आवर्त का होता है। विलम्बित ख्याल में विभिन्न प्रकार की तानें जैसे- छूट तान, सपाट तान, कूट तान, फिरत की तान, आलंकारिक तान, गमक की तान, आदि ली जाती है। गायक कभी-कभी मध्य लय में भी स्वरों का सरगम लेते हैं। इसे सरगम तान कहते हैं ये गमक व मीड़ से मुक्त होती हैं। विलम्बित ख्याल में विलम्बित एक ताल, विलम्बित त्रिताल, तिलवाड़ा ताल, आड़ाचारताल, झूमरा ताल, रुपक ताल इत्यादि तालें तबले पर बजायी जाती हैं।

मध्य लय के ख्याल –

मध्य लय के ख्याल में लय साधारण रहती है। विलम्बित ख्याल के पश्चात् मध्य या द्रुत लय के ख्याल गाये जाते हैं। इसमें विलम्बित ख्याल की गम्भीरता न होकर थोड़ी चंचलता परिलक्षित होती है। सरगम तान, बोलतान सभी मध्य लय में किया जाता है। आजकल विलम्बित ख्याल गाने के बाद द्रुत ख्याल गाने के कारण मध्य लय में ख्याल गायन कम हो गया है। कुछ घरानेदार गायक ही इस परम्परा का पालन कर रहें हैं।

द्रुतलय के ख्याल –

विलम्बित ख्याल से दुगुनी गति होने के कारण इसे द्रुत ख्याल कहते हैं। इसकी बन्दिश विलम्बित ख्याल की अपेक्षा बड़ी होती है। इसकी प्रकृति चंचल होती है। तानों व सरगम की प्रमुखता रहती है, जो तेज लय में गाई जाती है। छोटी-छोटी तान व बोलतानों का प्रयोग होता है, फिर विभिन्न प्रकार की बड़ी तानों व बोलतानों का प्रयोग होता है। गीत के शब्दों को विभिन्न प्रकार की तेज लयों में वेगपूर्ण गाया जाता है। तबले व लयकारी की लड़न्त भी देखने को मिलती है। द्रुत ख्याल में विलम्बित ख्याल की तरह आलाप, तान, खटका, मुर्की, अलंकार, बोलतान, बोल आलाप आदि का बहुलता से

प्रयोग होता है। द्रुत ख्याल में तीनताल, झपताल तथा द्रुत एकताल बजायी जाती है। द्रुत ख्याल में तेज लय की सरगमें गाई जाती हैं। इन्हें सरगम तान कहते हैं।

ख्याल शैली के अंग :–

ख्याल शैली के अनेक अवयव हैं जिनमें आलाप, बोलआलाप, सरगम, बोलबनाव, बहलावा तान आदि हैं। इनके अतिरिक्त गमक, खटका, मुर्की, मींड्, अलंकार विशिष्ट अवयव हैं।

आलाप – V R. Athavale के अनुसार, किसी राग के वादी संवादी तथा विशेष स्वरों का प्रयोग करते हुये राग नियमों के अनुसार, वर्ण, गमक, अलंकार से सजाकर क्रमिक राग विस्तार करने को 'आलाप' कहते हैं।[1] रागानुकूल वातावरण उत्पन्न करने अर्थात् श्रोताओं के मन में राग का स्वरूप बिठाने के लिये व भाव प्रदर्शन के लिये बन्दिश से पहले राग के स्वरों को बिना ताल के धीरे-धीरे धीमी लय में, गायक या वादक प्रस्तुत करता है। आलाप में कलाकार के हृदय की भावुकता निहित होती है। बन्दिश गाने के बाद किया गया आलाप आकार में व बन्दिश के शब्दों व बोलों के साथ किया जाता है। ये आलाप तालबद्ध होते हैं। आलाप का उद्देश्य राग भावनात्मक स्वरूप को स्पष्ट करना है न कि शैलीगत रूप को। ओ0 गोस्वामी के अनुसार, 'विभिन्न स्वरसमुदायों के माध्यम से स्वरों को विभिन्न प्रकार से व्यवस्थित करते हुये आलाप द्वारा राग के भाव को प्रकाशित किया जाता है।[2] विभिन्न स्वर समुदायों का निर्माण करते समय व उन स्वर समुदायों को एक दूसरे से मिलाते समय कलाकार को विशेष ध्यान रहता है कि उस विशेष

1 V R Athavale- 'Khyal singing and Bandish' Journal of Indian Musicological Society Vol VII No 4 Dec 1976 P 36

2 O Goswami - 'The story of Indian Music' Page 185

राग में आस-पास की छाया न आ जाये। आलाप में केवल स्वराक्षरों का प्रयोग होता है। यह भारतीय संगीत का प्राण माना जाता गया है। इससे गीत में सौन्दर्य का निमार्ण होता है। आलाप का अभ्यास करने से विद्यार्थियों को श्वांस व स्वर पर अधिकार हो जाता है। आवाज सुरीली व स्वछन्द आलाप के अभ्यास के द्वारा बन सकती है। आलाप के एक-एक स्वर का विभिन्न प्रयोग तथा साथ ही गमक, खटका, मीड़, मुर्की का प्रयोग श्रोताओं के समक्ष राग के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक होता है। आलाप का कार्य रागाभिव्यक्ति व रसाभिव्यक्ति है।

आलाप दो प्रकार से गाये जाते हैं-नोमतोम द्वारा व आकार के द्वारा। नोमतोम का आलाप अधिकतर ध्रुवपद, धमार से पूर्व गायक करते हैं। आधुनिक समय मे कुछ ख्याल गायक भी ख्याल के आरम्भ में नोमतोम में आलाप लेने लगे हैं। नोमतोम का आलाप त, न, ना, री, नो, नेनेरी, तनाना आदि अक्षरों से किया जाता है। आकार का आलाप ख्याल शैली से पहले गाया जाता है। ये आलाप आ sss के उच्चारण से करते है। प्राचीनकाल में गायक कलाकार अपना गायन आरम्भ करने से पूर्व ईश्वर का स्मरण करते थे। इसीलिये 'तू ही अनन्त हरी', 'ओं अनन्त नारायण' आदि को आलाप के रूप में गाकर भगवान की वन्दना किया करते थे, परन्तु बाद में इन शब्दों का अपभ्रंश होते-होते केवल निरर्थक शब्दों का प्रयोग रह गया। द्रुत लय में नोम-तोम के आलाप में अक्षरों के कारण आलाप में वैचित्र्य सौन्दर्य व आकर्षण बाहुल्य रहता है। ये अधिक प्रभावशाली, स्फूर्ति दायक व उत्तम होता है। इसे अधिक देर तक बिना ताल के गाया जा सकता है। जबकि आकार का आलाप तेज लय में होने पर तान का रूप ले लेता है। तथा श्रोता केवल स्वरों

का ही आनन्द ले पाते हैं, जबकि नोमतोम के आलाप में स्वर के साथ अक्षरों का भी आनन्द श्रोता लेते हैं।

नोमतोम के आलाप को स्थायी, अन्तरा, संचारी आभोग इन चार भागो में बाँट कर ध्रुवपद, धमार के पूर्व गाते हैं। आकार के आलाप को स्थायी, अन्तरा इन दो भागों में बाँट कर ख्याल, ठुमरी के पूर्व गाते हैं। लय व अक्षर के प्रयोग की दृष्टि से आलाप के इन प्रकारों में पर्याप्त भिन्नता है–

स्थायी का आलाप मध्य सप्तक के स या नी से प्रारम्भ करते हैं। षड्‌ज पर स्थिर होने के पश्चात् मन्द सप्तक में विस्तार करते हैं। वादी स्वर से भी आलाप आरम्भ करते हैं, फिर धीमी गति से एक-एक स्वर लेते हुये क्रमिक विस्तार करते हैं। अन्तरे का आलाप राग की उठान के अनुसार, मध्य सप्तक के गन्धार, मध्यम व पंचम से आरम्भ करते हैं। इसके पश्चात् तार सप्तक के षड्‌ज पर पहुँच कर न्यास करते हैं। तत्पश्चात् तार सप्तक के स्वरों में भी एक-एक बढ़त करते हैं। फिर स्वर समुदायों का विस्तार करते हुये मध्य षड्‌ज पर आ जाते हैं। तार सप्तक में आलाप ज्यादा देर नहीं करते हैं।

प्राचीन काल में आलाप के विभिन्न प्रकार थे, जैसे– रागालाप, रुपकालाप तथा आगे चलकर आलाप्तिगान जिसमें रागालप्ति और रूपकालप्ति दोनों का ही समावेश था। रूपकालाप्ति के दो भेद थे-प्रतिग्रहणिका व भंजनी।

बोल आलाप –

जब आलाप में आकार के स्थान पर बोल अर्थात् गीत के शब्द लगाये जायें अर्थात् गीत के शब्दों को उनकी वास्तविक स्वर रचना से अलग भिन्न स्वरों में सजाकर आलाप रूप में गाया जाये

तो उसे बोल आलाप कहा जाता है। गायक विभिन्न प्रकार से नये स्वर समुदायों में शब्दों को पिरोकर राग नियमों के अन्तर्गत् तथा भावों के अनुकूल बन्दिश को श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करता है। यहाँ गायक की कल्पनाशक्ति का महत्वपूर्ण कार्य होता है। बोल आलाप में अक्षर, स्वर, आकार, इकार, ऊकार का प्रदर्शन नियमानुकूल होता है, जिसमें राग में सौन्दर्य व तारतम्य बना रहे इसके लिये गायक को काव्य व छन्द रचना का ज्ञान होना आवश्यक है।

बंहलावा –

बहलावा बोल आलाप के समान ही होता है। बोल आलाप लम्बे-लम्बे स्वर समुदायों में आलाप के समान होते हैं जबकि बहलावे छोटे-छोटे स्वर समुदायों में शब्दों को लगाकर बनते हैं। गायक छोटे-छोटे बहलावे बनाकर कभी सम पर आते हैं तो कभी आधी मात्रा बाद सम पर आते हैं तो कभी एक मात्रा के मौन पश्चात् छोटी तान या सरगम के माध्यम से सम से आ मिलते हैं। बहलावे से श्रोताओं में आनन्द व चमत्कार का पूर्णरूपेण संचार होता है तथा रसानुभूति का सृजन होता है।

बोलतान –

बहलावे के पश्चात् लय बढ़ाकर शब्दों से युक्त ताने गाई जाती हैं। तान में शब्दों के अनुकूल इकार, आकार आदि का प्रयोग होता है। बोलतान का उद्देश्य काव्य के भावों को स्पष्ट करना है। अत: गायक को काव्य व छन्द का यथार्थ ज्ञान होना आवश्यक है। तान में लय का विशेष महत्व है। शब्दों को स्वरों के साथ दुगुन, तिगुन व आड़ आदि लयों को दिखाते हुये तान प्रधान गायन किया जाता है। यहाँ स्वर, शब्द, ताल व लय की एकरुपता व एकरसता

आवश्यक होती है। शब्दों का स्वरों के साथ यथास्थान व भावानुकूल समन्वय, भावानुभूति, रसानुभूति व सौन्दर्यानुभूति को प्रदर्शित करता है।

तान –

तान में रागविशेष में लगने वाले स्वरों को ही विस्तारपूर्वक द्रुतलय में गाया जाता है। ये आकार में होती है। तान-शब्द तन् (तानना) धातु से उद्भुत हुआ है। तान का प्रमुख कार्य गायन मे वैचित्र्य व चमत्कार बढ़ाना है। तानें बराबर की लय से लेकर दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन, सोलहगुन व कभी-कभी इससे भी तेज लय में गाई जाती है। पं0 भातखण्डे जी के अनुसार, तान गाते समय विशेष ध्यान रखा जाता है कि तानों के स्वर राग नियम के अनुकूल हो व श्रोताओं को स्पष्ट सुनाई दे।[1] तानों में चमत्कार गायक की बुद्धि तथा कल्पनाशक्ति पर निर्भर करता है। तान की बढ़त धीरे-धीरे क्रम से होती है। पहले छोटी तानें उसके पश्चात् अधिक मात्राओं की तानें गाई जाती हैं। पहले मन्द व मध्य में फिर मध्य व तार सप्तक में ताने ली जाती हैं। तान आरम्भ होने से राग की समाप्ति का आभास होने लगता है। तान में एक ही स्वराक्षर से राग के विभिन्न स्वरों में विचरण, हर स्वर को बराबर की मात्रा देते हुये किया जाता है।

तान को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- पहला शुद्ध तान जिनमें एक ही क्रम अथवा रीति का प्रयोग किया जाये। दूसरा कूट तान जिसमें अनेक प्रकार के क्रमों व रीतियों का प्रयोग किया जाये। शुद्ध तान में एक विशेष राग को दिखाते हैं तथा कूट तान में अनेक रागों का आभास होता है। इन दोनों के अतिरिक्त मिश्र

---

1. प0 भातखण्डे - 'क्रमिक पुस्तक मालिका, चतुर्थ भाग पृ0 41-45

तान होती है, जिसमें शुद्ध तान व कूट तान दोनों का समावेश है। तानों के कुछ प्रचलित प्रकार इस प्रकार है–

शुद्ध तान, कूट तान, मिश्र तान, झटके की तान, खटके की तान, सपाट तान, वक्र तान, लड़न्त तान, सरोक तान, गिटकरी तान, जबड़े की तान, बोलतान, हलक तान, पलट तान, अचरक तान आदि।

सरगम –

आलाप, बोलतान, तान गायन के बीच-बीच में या तानों के पश्चात् अन्त में भी सरगम लेते हैं। कभी सीधी सरगम ली जाती है तो कभी गायक सरगम लेते समय ताल का ज्ञान, आड़, कुआड़ आदि दिखाकर चमत्कारिक प्रदर्शन करते हैं।

अलंकार–

अलंकार का साहित्यिक अर्थ है आभूषण या गहने। जिस प्रकार आभूषण शरीर को सुसज्जित करते हैं उसी प्रकार अलंकार संगीत को सुसुज्जित करते हैं। भरत के अनुसार –

"शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषिते कांता गीतिरलंकार हीना स्यात्।"[1]

पं0 शारंगदेव के अनुसार–

"विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकार प्रचक्षते।।"[2]

अर्थात् विशिष्ट वर्ण संदर्भ को अलंकार कहते हैं। अलंकार में वर्ण समुदाय बना कर उसी के आधार पर आगे बढ़ते हैं जैसे– सरेगम, रेगमप, गमपध, मपधनी, पधनीसां इत्यादि। अलंकार की

---

1. भरत – नाट्यशास्त्र, चौथा भाग, 29वा अध्याय, पृ0 92, श्लोक 45
2. प0 शारगदेव – सगीत रत्नाकर, प्रथम भाग, स्वरगताध्याय, वर्णालंकार प्रकरण पृ0 152

साधना से स्वर गान, कंठ साधना, आलाप, तान तथा स्वर समुदाय बनाने की कुशलता आ जाती है, इसीलिये विद्यार्थियों को सर्वप्रथम अलंकार सिखाते हैं, अलंकार को चार भागों में विभक्त किया गया है–

स्थायी अलंकार, आरोही अलंकार, अवरोही अलंकार, संचारी अलंकार। पं० शारंगदेव ने "संगीत रत्नाकर" में 63 अलंकार बताये हैं स्थायी अलंकार में 6 आरोही अलंकार में 12, अवरोही अलंकार-12, संचारी अलंकार में 25 व अन्य 7 बताये हैं। भरत ने 33 अलंकार बताये हैं। स्थायी अलंकार के भेद प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, प्रसन्नाधन्त, प्रसन्नाद्यन्त, प्रसन्नमध्य, क्रमरैचित प्रस्तार व प्रसाद है। आरोही अलंकार के भेद- विस्तीर्ण, निष्कर्ष, हसित, प्रेंखित, आक्षिप्त, गात्रवर्ण, अभ्युचय, उद्गीत, उद्वाहित, बिन्दु, सन्धि, प्रच्छादन, त्रिवर्ण, बेणि। अवरोही अलंकार के अन्तर्गत् आरोही अलंकार के 12 भेद अवरोही क्रम से प्रयुक्त होते हैं। संचारी अलंकार के भेद- मन्द्रादि, मन्द्रान्त, मन्द्रमध्य, प्रस्तार, प्रसाद स्खलित, परिवर्त, व्यावृत, आक्षेप, बिन्दु, उद्वाहिता, सम, प्रेश्व, उद्रघाट्टित रंजित, निष्कूजित, श्येन, क्रम सनिवृत्त प्रवृतक, वेणु, हृलादमान, हुंकार ललितस्वर व अवलोकित है। अन्य अलंकार में तारमन्द्रप्रसन्न, मन्द्रतारप्रसन्न, आवर्त्तक, विधूत, संप्रदान, उपलोल, उल्लासित। अलंकार का उद्देश्य राग की सुन्दरता बढ़ाना, स्वरज्ञान बढ़ाना, स्वरसमुदायों में विविधता लाना है।

गमक –

स्वरों का विशेषरूप से सौन्दर्यपूर्वक कम्पन्न को गमक कहते हैं। पं० व्यकंठमुखी के अनुसार-*"स्वरस्य कम्पो गमकः।"*[3] 'संगीत रत्नाकर' में गमक की परिभाषा इस प्रकार है –

---

[1]. प0 व्यकंण्ठमुखी - चतुर्दण्डिकप्रकाशिका पृ0 41

"स्वरस्य कम्पो गमक: श्रोत्र चित्तसुखावह:।

तस्य भेदास्तु तिरिप: स्फुरित कम्पितस्तथा।।

लीन आन्दोलितवलित्रिभिन्न कुरुलाहता:।

उल्लासित प्लावितश्च हुंफितो मुदृतस्तथा।।

नामितो मिश्रित: पंचदशेते परिकीर्तिता:।[1]"

पार्श्वदेव के मतानुसार, गायन में जब कोई स्वर अपने श्रुति स्थान से दूसरी श्रुति की ओर इस प्रकार चले कि जिससे दूसरी श्रुति की छाया मूल श्रुति स्थान पर पड़ती हुई भासमान हो वही गमक कहलाती है। पं0 शारंगदेव ने गमक के 15 प्रकार, पार्श्वदेव ने 7 प्रकार, 'संगीत मकरन्द' में 21 प्रकार बताये हैं। संगीत शास्त्र में वर्णित 15 गमक इस प्रकार हैं- तिरिप, स्फुरित, कम्पित, लीन, आन्दोलित वलि, त्रिभिन्न, कुरुल, आहत, उल्लासित, प्लावित, गुम्फित, मुद्रित, नामित, मिश्रित।

कुछ विद्वानों के मतानुसार, बिना गमक के कोई भी लय अथवा राग मुस्करा नहीं सकती।[2] नारद ने गमक को तीन भागों में बाँटा है- पहला, जिसमें आवाज लगातार कांपती रहे, दूसरी, जिनमें कुछ अंश ही कांपता हुआ हो, तीसरी वह जिनमें कम्पन बिल्कुल न हो। गमक के भावों को चित्तवृत्ति को तथा रस को उभारने वाला होता है।

मींड़ –

जब एक स्वर से दूसरे स्वर पर फिसलते हुये जाते हैं तो वही सरकना या फिसलना मींड कहलाती है। ख्याल में मींड़ का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थात् दो स्वरों के बीच आये हुये स्वरों का

---

1. पं0 शारगदेव - सगीत रत्नकार दूसरा भाग प्रकीर्णाध्याय पृ0 253
2 Curt Sachs - Rise of Music in the Ancient world P 181

स्पर्शमात्र करते हुये तथा उनको खींचते हुये निश्चित स्वर पर आ जाने को मींड़ कहते हैं। मींड़ में केवल बलपूर्वक लिये जाने वाले स्वर को छोड़कर अन्य निश्चित समय तक स्वर झूले के एक झोंटे के समान खिंचते प्रतीत होते हैं। इसमें आरम्भ के स्वर पर बल देकर बाकी समय में मींड़ खींचते हुये आवाज कोमल, सीधी व शान्त हो जाती है। आलाप में दो या अधिक स्वरों में तथा कभी-कभी तो पूरे सप्तक में मींड़ खींच ली जाती है। इसे करते समय प्रत्येक संगीतज्ञ का अपना व्यक्तित्व व प्रभाव अलग-अलग होता है।

कण –

किसी स्वर का उच्चारण करते समय उसके आगे या पीछे के स्वर को केवल स्पर्श किया जाये तब वह कण स्वर कहलाता है। जैसे ग$^{\text{स}}$ रे स या ध$^{\text{म}}$ पम इस प्रकार पहले स्वर समुदाय में स का कण तथा दूसरे में म कण स्वर है।

भारतीय संगीत की इन सब सौन्दर्योत्पादक अंगों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोग हैं, जो गायक की अपनी विशेष योग्यता पर निर्भर करतीं हैं जैसे- कम्पन, खटके, मुर्की आदि। वैसे तो ये सभी स्थूल रूप से कण, गमक, मींड़ के अन्तर्गत् आ जाती है किन्तु ये सभी अंग गायक की कल्पनाशक्ति उनकी योग्यता, गाने के ढंग, भाव को प्रदर्शित करने के ढंग तथा उसकी योग्यता पर निर्भर करती हैं।

ख्याल शैली के घराने :–

ख्याल शैली की सम्पूर्ण गायकी के रूप में भारत के प्राचीन संगीत के स्वरूप का आंशिक दर्शन परम्परागत गुरु शिष्य परम्परा की देन है। मुगल काल में समाजिक परिस्थितियों के अनुरुप ख्याल शैली का स्वरूप परिवर्तित व निर्मित होता चला गया। परन्तु साथ

ही राजनैतिक परिस्थियोंवश संगीत वर्गो में विभक्त हो गया और घराने के रूप में ख्याल गायकी के अनेक रूप सामने आये। धीरे-धीरे ख्याल गायन के विषय में कलाकार व श्रोता, ख्याल गायन आरम्भ होते ही कलाकार के गायन की स्व-सौन्दर्य, रसवत्ता, आकर्षण आदि की जगह ये ध्यान देने लगे कि विशिष्ट घराने की गायकी को अपनाने व प्रदर्शित कर पाने में गायक कहाँ तक सफल हो पाया है। यह मान्यता घर कर गई कि ख्याल गायक की श्रेष्ठता किसी न किसी घराने से सम्बद्ध होने पर ही निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त कलाकार भी अपने को घरानेदार गायक कहने में गर्व अनुभव करने लगे। श्रोता व कलाकार दोनों में ही घराने के प्रति आज भी इतनी अधिक आस्था है कि ख्याल शैली के घरानों की चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है।

ध्रुवपद के पश्चात् जब ख्याल आया तो इसमें भी वर्ग बन गये। कारण यह था कि ख्याल शैली के गायक को स्वर के विभिन्न प्रयोगो व संगीत अलंकरणों के विविध प्रयोगों की स्वतन्त्रता बहुत मिलती है। प्रत्येक गायक अपनी योग्यतानुसार मधुरता, रंजकता व चमत्कारिकता लाने का प्रयत्न करता है। इसी स्वतन्त्र प्रतिभा को दर्शाने के लिये किसी ने आलाप पर जोर दिया, किसी ने तान पर, किसी ने लयकारी पर, किसी ने स्वर की तरलता पर जोर दिया। इसी गायकी को गायको ने शिष्यों को सिखायी। कुछ पीढ़ी के बाद उन्होंने घरानों का रूप लें लिया। प्राचीन संगीत को जीवित रखने में अनेक महान कलाकारों ने अपना योगदान दिया उन प्रमुख कलाकारों के नाम निम्नलिखित है-

गोपाल नायक, अमीर खुसरो, बैजू बावरा, स्वामी हरिदास, मियाँ तानसेन, गुलाम नबी (शोरी मियाँ) सदारंग-अदारांग, बड़े मुहम्मद खाँ, तानरस खाँ, नत्थन खाँ, हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, उस्ताद

फैयाज खाँ, अब्दुल करीम खाँ, अल्लादिया खाँ तथा इनके अतिरिक्त पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे, पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर। इन सभी ने एक नयी गायन प्रणाली को जन्म देकर नई परम्परायें स्थापित की।

ख्याल शैली के मुख्य घराने ग्वालियर, आगरा, किराना, दिल्ली, माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त पटियाला, अल्लादिया खाँ का घराना, जयपुर घराना, रामपुर घराना, अतरौली घराना, खुर्जा घराना, कव्वाल बच्चों का घराना, मथुरा घराना, इन्दौर घराना, सहसवान घराना, सिकन्दराबाद घराना, भेंडी बाजार वाला घराना तथा अन्य अनेक घरानों के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ प्रमुख घरानों की वंश परम्परा तथा गायकी की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

ग्वालियर घराना –

ख्याल गायन के घरानों में ग्वालियर घराना सर्वश्रेष्ठ माना गया है। श्रद्धेय डॉ0 कृष्णराव जी राव के कथनानुसार, 'आज सारे देश के अधिकांश घराने ग्वालियर घराने से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं, जो सही है।' कुछ लोग नत्थन पीर बख्श तथा कुछ लोग मुहम्मद खाँ को इस घराने का अन्वेषक मानते है। पर अधिकतर विद्वानों के अनुसार, ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी परम्परा नत्थन पीर बख्श से ही आरम्भ होती है। आपकी गायकी में ध्रुपद, धमार, होरी का स्पष्ट प्रभाव था। आप ग्वालियर नरेश श्री संत दौलत राव सिंधिया (1794-1827) के दरबार में गायक व संगीत शिक्षक के पद पर नियुक्त थे। आगरा घराने के घग्घे खुदाबख्श ने इन्हीं से शिक्षा प्राप्त की थी। नत्थन पीर बख्श के पुत्र कादर बख्श भी श्रेष्ठ गायक थे व ग्वालियर दरबार में नियुक्त थे। कादर बख्श के तीन पुत्र हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, और नत्थू खाँ थे। इन तीनों को संगीत

शिक्षा पीरबख्श ने दी। इनके प्रतिष्ठित संगीत और शानदार गायकी को हम आधुनिक ख्याल गायन के संगीत का महाकाव्य कह सकते हैं। हस्सू खाँ के शिष्यों में बड़े बालकृष्ण बुवा, बन्ने खाँ, वासुदेव राव जोशी, नाना दीक्षित, तथा हस्सू खाँ के नाती मेंहदी हुसैन खाँ प्रतिष्ठित गायक हुये। हद्दू खाँ के दो पुत्र छोटे मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ कुशल गायक थे। इनके शिष्यों में रामकृष्ण बुवा, पंडित, दीक्षित, जोशी, बुवा और बाला गुरुजी प्रसिद्ध हुये। नत्थू खाँ के शिष्य निसार हुसैन खाँ अच्छे गायक थे। पं0 बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर ने ख्याल गायन की शिक्षा वासुदेव राव जोशी से प्राप्त की। आपके शिष्यों में आपके पुत्र अण्णा बुवा, स्व0 पं0 गा0 गुंडुबुवा इंगले (ओंधकर) स्व0 पं0 विष्णु दिम्बर पलुष्कर, पं0 अनन्त मनोहर जोशी, पं0 मिराशी बुवा आदि प्रमुख हैं। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी के शिष्यों में डी0वी0 पलुष्कर, शंकरराव व्यास, बसन्तराव राजोपाध्याय, कशालकर जी, पं0 विनायक राव पटवर्धन, पं0 ओंकार नाथ ठाकुर, बी0 आर0 देवधर, शंकरराव बोडस, पं0 नारायण राव व्यास, वामन राव ठकार, लक्ष्मण राव बोडस, बाबा दीक्षित प्रमुख हैं। निसार हुसैन के शिष्यों में रामकृष्ण बुवा बझे, शंकर पण्डित, भाऊराव थे। इनके अतिरिक्त कृष्ण राव शंकर पंण्डित, राजाभैया पूंछवाले, बन्ने खाँ, हफिज खाँ, नज़ीर खाँ, भैय्या गणपतराव, डॉ0 नारायण विनायक पटवर्धन, पं0 विनय चंद्र मोदगल्य, पं0 महादेव, गोविन्द देशपाण्डे, डॉ0 कमलेश सक्सेना, एवं डॉ0 राकेश सक्सेना इसी घराने से सम्बंधित प्रमुख गायक हुये हैं।

विशेषतायें –

ग्वालियर घराने की गायकी में ध्रुवपद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। ग्वालियर घराने की विशेषताओं के अन्तर्गत् जोरदार खुली आवाज का प्रयोग, राग के प्रारम्भ में एक दो रागवाचक आलाप

लेकर विलम्बित ख्याल आरम्भ करना, बीच की लय, एकताल, झूमरा, आड़ा चारताल, तिलवाड़ा ताल में विलम्बित ख्याल गायन, आरम्भ में परम्परानुसार चीज़ की स्थायी, अन्तरा सम्पूर्ण रूप से गाया जाना प्रमुख विशेषता हैं। तानें सीधी व पल्लेदार ली जाती हैं। चीज़ के बोल भिन्न-भिन्न प्रकार से घुमाये जाते हैं। फिर छोटी बड़ी तानें बोलतानें और फिरत की तानें दिखाई जाती हैं। अनाघात पद्धति से चीज़ के बोल अलग-अलग लय में गूंथकर मुखड़ा पकड़ना यहाँ की विशेषता है। इस घराने की गायकी सीधी, निर्मल, विलक्षण, पक्की व सौन्दर्ययुक्त हैं। इस घराने की गायकी को अष्टां गायकी कहा जाता है। इस घराने में टप्पा अंग के ख्याल भी गाये जाते हैं तथा तराने, त्रिवट, चतुरंग, अष्टपदी भी इस घराने के गायक गाते हैं। स्वरों का शुद्ध, सीधा, सरल प्रयोग व कुछ वक्रता और अलंकार के माध्यम से बढ़त करना इस गायकी का विशेष गुण है। यह गायकी सीधी सादी और सरल गायकी है। अष्टांग विस्तार में आलाप, बोल आलाप, बहलावे, तानें, बोलबाँट की तानें, गमक की तानें, खटका, मुर्की, कण, मींड़, सूत, लयकारी के सब प्रकार इस घराने के प्रधान अंग हैं। ग्वालियर घराने का अब लोप हो गया है क्योंकि पुरानी बंदिशे आज की बदलती हुई लोक रुचि के अनुकूल नहीं हैं। इस गायकी के आराधक यद्यपि आज भी हैं परन्तु इसकी शिष्य परम्परा लगभग समाप्त सी है।

आगरा घराना –

अलखदास और मलूकदास के द्वारा आगरा घराने का आरम्भ माना जाता है। ये पहले हिन्दू थे बाद में मुसलमान बन गये। अलखदास के पुत्र हाजी सुजान खाँ अच्छे ध्रुवपद, धमार गायक थे। कुछ विद्वानों के अनुसार, यही आगरा घराने के जन्मदाता माने जाते हैं। मलूकदास के दो पुत्र सरसरंग और श्यामरंग थे। श्यामरंग के

चार पुत्र थे जंगु खाँ, सस्सु खाँ, गुलाब खाँ, और खुदा बख्श। खुदा बख्श की आवाज कुछ बैठी होने के कारण इन्हें घग्घे खुदाबख्श कहा जाने लगा। इन्होंने ग्वालियर के नत्थन पीर बख्श से ख्याल गायन की शिक्षा प्राप्त की। ख्याल पद्धति का आरम्भ इस घराने में 19वीं शती में इन्होंने किया। वापस आकर इन्होंनं अपने दो पुत्रों गुलाम अब्बास खाँ व कल्लन खाँ, भतीजे शेर खाँ तथा भरतपुर वाले अली बख्श खाँ व विश्वनाथ के पुत्र पं0 शिवदीन को संगीत शिक्षा प्रदान की। गुलाम अब्बास खाँ ने लयकारी युक्त तान की फिरत व बोल अंग में लयकारी का विशेष प्राबल्य इन दों अंगो द्वारा मूल ग्वालियर गायकी में थोड़ा बदलाव लाकर आगरा घराने की स्वतन्त्र गायकी का निर्माण किया। इसीलिये वे आगरा घराने की गायकी के इतने करीब हैं। गुलाम अब्बास खाँ ने अपने भतीजे नत्थन खाँ व भाइ कल्लन खाँ, नाती उस्ताद फैयाज हुसैन खाँ को संगीत की शिक्षा दी। कल्लन खाँ ने अपने पुत्र तसद्दुक हुसैन खाँ तथा शिष्यों में खादिम हुसैन खाँ, नन्हें खाँ, अनवर हुसैन खाँ, विलायत हुसैन खाँ, बशीर खाँ को संगीत शिक्षा प्रदान की। मुरादाबाद के नजीर खाँ व ग़फूर खाँ को भी ख्याल गायकी की शिक्षा दी। इसके अतिरिक्त इनके शिष्यों में फिरदौसी बाई तथा जयपुर की बिब्बोबोई के नाम प्रसिद्ध हैं। निसार हुसैन खाँ (नत्थन खाँ) ने चाचा गुलाम अब्बास खाँ, घसीट खाँ साहब तथा ख्वाजा बख्श साहब से संगीत शिक्षा प्राप्त की। ये विलम्बित लय में गाते थे और उस में तान की फिरत में मध्य, द्रुत, आड़, आदि लयों को दिखाते थे। आपके शिष्यों में भास्कर राव बखले, बावली बाई का प्रमुख स्थान था। इनके पुत्रों में मुहम्मद खाँ, अब्दुल्ला खाँ, मुहम्मद सिद्दीकी खाँ, विलायत हुसैन खाँ व नन्हें खाँ थे।

मुहम्मद खाँ के शिष्यों में ताराबाई सिरोलकर, चम्पाबाई कवलेकर, बांकाबाई, भाई प्राणनाथ, भाई शंकर तथा पुत्र बशीर अहमद खाँ थे। अब्दुल्ला खाँ अच्छे गायक थे व मैसूर रियासत में नौकरी करते थे। मुहम्मद सिद्दीकी खाँ ने मुहम्मद खाँ से संगीत शिक्षा प्राप्त की। आपका गला जोरदार था व तान में चमक थी। नन्हें खाँ ने संगीत कल्लन खाँ से सीखाँ आपके शिष्यों में गुलाम अहमद, रत्नकान्त रामनाथकर, सीताराम फाथरफैकरयल्लापुरकर आदि प्रसिद्ध हैं। नन्हें खाँ का उपनाम 'शकील' था। विलायत हुसैन खाँ ने अनेक उस्तादों के शिक्षा प्राप्त की जिनमें करामत हुसैन खाँ, मुहम्मद बख्श, अल्लादिया खाँ का नाम उल्लेखनीय है। आपके शिष्यों में गिरिजाबाई केलकर, मोगूबाई कुर्डीकर, अंजनीबाई जाम्बोलीकर, राम मराठे, पं० जगन्नाथ बुवा पुरोहित प्रसिद्ध हैं। आपके पुत्र उस्ताद युनुस हुसैन खाँ इस घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं। इस घराने को उस्ताद फैयाज खाँ ने शिखर पर पहुँचाया इनका उपनाम 'प्रेमपिया' था ये 'संगीत के सूर्य' कहलाये। बड़ौदा के महाराज ने इन्हें "आफताबे-मुसिकी" खिताब से विभूषित किया। आपको और भी अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया जैसे - संगीत चूड़ामणि, संगीत सरोज, संगीत भास्कर आदि। आपके शिष्यों में श्री ना० रातंजनकर, अता हुसैन खाँ, पं० दिलीपचन्द्र बेदी, बन्दे अली खाँ, बशीर खाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

विशेषता –

इस घराने की ख्याल शैली को ध्रुवपदांग ख्याल के नाम से जाना जाता है क्योंकि ख्याल शैली में ध्रुवपद अंग का प्राबल्य है। इस घराने की गायकी खुरदुरी, पेंचदार, सरल, गौरवयुक्त, संयम तथा भाव प्रदर्शन, भाषा, उच्चारण में वैचित्र्यपूर्ण भाव परिलक्षित होता है। लयकारी प्रधान गायकी होने के कारण सभी गायक ताल के बहुत

पक्के हैं। आरम्भ में नोमतोम के आलाप से राग विस्तार करके, चीज़ गाकर बोल बनाना, तानें व बोलतान लेते हैं। ताने सरल लयकारी युक्त, पल्लेदार, खटके युक्त होती हैं। तानें बहुत द्रुत लय में नहीं होती। आवाज खुली व जोरदार होती है। गायकी में बोलबाँट बहुत अच्छी होती है। सरगम का प्रयोग पर्याप्त किया जाता है। एक स्वर समुदाय को ही भिन्न-भिन्न रूप में प्रयोग किया जाना आगरा घराने की विशेषता है।

किराना घराना –

उत्तर प्रदेश में किराना नामक ग्राम के रहने वाले उस्ताद अब्दुल करीम खाँ के निवास स्थान के नाम पर इस घराने का नाम किराना घराना पड़ा। वैसे तो इस घराने का सम्बन्ध प्रसिद्ध बीनकार बन्दे अली खाँ से बताया जाता है। परन्तु करीम खाँ व अब्दुल वहीद खाँ ने इस गायकी का प्रचार किया इसलिये इनको ही इस घराने का संस्थापक माना गया। अब्दुल करीम खाँ ने आलाप प्रधान गायकी व मींड़ व कण युक्त गायकी को महत्व दिया।

इस घराने के प्रसिद्ध कलाकारों में स्व0 सवाई गन्धर्व, स्व0 सुरेश बाबू माने, बहरे बुवा के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। वर्तमान गायकों में उस्ताद रजब अली खाँ, गंगु बाई हंगल, हीराबाई बड़ोदकर, श्रीमती माणिक वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं।

किराना घराने की गायकी आलाप प्रधान गायकी है। सुरीलापन, चैनदारी, आलापचारी के कई प्रकार गला सिकोड़कर आवाज लगाने की पद्धति, कणों की प्रचुरता, नाजुक स्वर, कोमल प्रवृत्ति का एवं मुलायम स्वर, इस गायकी की विशेषता है। राग के कुछ महत्वपूर्ण स्वरों को क्रमशः महत्व देकर उनके इर्द-गिर्द स्वरों का जाल फैलाना इन विशेषताओं में से एक है। एक स्वर से दूसरे स्वर पर आने का एक विशेष चिकनापन इस गायकी में परिलक्षित होता है, जो

राग को आनन्दायक व प्रभावोत्यादक बना देती है, तोड़ी, पूरिया, दरबारी, मालकंस इस घराने के प्रसिद्ध राग हैं। यहाँ चीज़ के रूप में ठुमरी गाने की प्रथा है।

दिल्ली घराना –

इस घराने की स्थापना के विषय में दो मत प्राप्त होते हैं। एक मत के अनुसार, मुगलों के पतन के पश्चात् तानरस खाँ ने इस घराने की स्थापना की। दूसरे मतानुसार, दिल्ली में (सन् 1295ई0 से सन् 1328ई0 तक) हज़रत अमीर खुसरो ने ख्याल गायकी को जन्म दिया तथा दिल्ली में ही (सन् 1719-1740ई0) मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक मियाँ न्यामत खाँ, सदारंग एवं फिरोज खाँ अदारंग को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। तत्पश्चात् शिष्यों, प्रशिष्यों ने कार्य को आगे बढ़ा कर ख्याल को प्रस्तुत किया। उस्ताद चाँद खाँ के मतानुसार, दिल्ली घराना प्राचीनतम है।

तानरस खाँ का असली नाम कुतुबबख्श था। मियाँ अपचल से आपने संगीत की शिक्षा ग्रहण की। पुत्र उमरांव खाँ ने आपकी परम्परा को आगे बढ़ाया। उमराव खाँ के पुत्र सरदार खाँ थे, जिनकी गायकी गम्भीर थी। तानरस खाँ के पौत्र व गुलाम गौस खाँ के पुत्र अब्दुल रहीम खाँ, हैदर खाँ के पुत्र तानरस के भतीजे शब्बू खाँ और अज़ीज खाँ विशेष प्रसिद्ध हुये हैं। वर्तमान समय के प्रतिनिधि गायक उस्ताद चाँद खाँ हैं। आपके पुत्र उस्ताद नसीर अहमद खाँ, उस्ताद हिलाल अहमद खाँ, भी इस घराने के प्रतिष्ठित गायक हैं। उस्ताद नसीर अहमद खाँ के शिष्याओं में श्रीमती कृष्णा बिष्ट तथा भारतीय चक्रवर्ती का नाम उल्लेखनीय है।

इस घराने में तानें लेने के विविध ढंग जैसे जोड़-तोड़ की तान, फन्दे की तान, झूला की तान, झकोले की तान का प्रचार है। तान में सही आकार का प्रयोग किया जाता है। ख्यालों की बन्दिशें

कलात्मक होती हैं। स्वरों के सुन्दर मेल द्वारा कलात्मक प्रदर्शन किया जाता है। विलम्बित लय के ख्यालों में सवारी के ख्याल, पालकी के ख्याल तथा पटरी के ख्याल आदि विशेष नामों से प्रसिद्ध हैं।

पटियाला घराना –

प्रसिद्ध सारंगी वादक के पुत्र अली बख्श व उनके मित्र फतह अली खाँ जो अलिया फत्तू के नाम से प्रसिद्ध थे, ने ग्वालियर, दिल्ली, जयपुर एवं किराना घरानों से शिक्षा ग्रहण कर अपनी एक स्वतन्त्र शैली विकसित की। इनके निवास स्थान पटियाला के नाम पर इनकी गायकी का नाम पटियाला घराना पड़ा। इस घराने के प्रसिद्ध गायकों मे उस्ताद गुलामअली खाँ, मियाँ जान काले खाँ जो बड़े गुलामअली खाँ के चाचा थे और अली बख्श (बड़े गुलामअली खाँ के पिता) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस घराने के मुख्य प्रतिनिधि व संरक्षक बड़े गुलामअली खाँ माने जाते हैं। आपकी गायकी में स्वरों की शुद्धता, आवाज में सहजता व मुलामियत, तीनों सप्तकों में विचरण करने की क्षमता, लयकारी के विविध प्रकार का प्रयोग, बोल अंग एवं बोलतान का पर्याप्त प्रयोग परिलक्षित होता है। इस प्रकार इस घराने की विशेषताओं में लयकारी, बोलअंग की अधिकता, तान की प्रबलता मुख्य है।

विशेषता –

(1) संक्षिप्त तथा कलापूर्ण ख्याल की बन्दिशें। (2) द्रुत आलंकारिक कण खटका युक्त। (3) गले की तैयारी। (4) टप्पा अंग की ठुमरी गायन में पटुता। (5) इस घराने की गायकी में बहुत अधिक विलम्बित में नहीं गाया जाता। (6) प्रचलित और सरल राग

इस घराने की विशेषता रही। (7) इस घराने की विशेषता तैयारी के साथ-साथ कोमलता में भी है।

इन्दौर घराना –

इन्दौर घराने के संस्थापक उस्ताद अमीर खाँ माने जाते हैं। आप उस्ताद छंगे खाँ साहब की पीढ़ी से सम्बन्ध रखते थे। जो अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के आश्रित थे। आपकी शिक्षा अपने वालिद उस्ताद शाहमीर खाँ, से हुई थी। वैसे आपकी गायकी पर देवास के उस्ताद रज़ब अली खाँ, इन्दौर के उस्ताद नसीरुद्दीन खाँ, उस्ताद हफिज खाँ, उस्ताद मुराद खाँ तथा उस्ताद अमान अली खाँ का भी प्रभाव पड़ा। इन्दौर घराने की गायकी मुख्य रूप से 'भेंडी बाज़ार वाले घराने' की भेरखंड गायकी से ही प्रभावित थी।

इन्दौर घराने में मध्य लय की अधिक प्रधानता है। गायन में नृत्यात्मकत लचक, नज़ाकत तथा स्वरों के मोड़ शोभावर्द्धक होते हैं। उस्ताद शाहमीर खाँ सारंगीवादक थे, इसीलिये उनके द्वारा दी गई शिक्षा में तांत के खिंचाव का प्रभाव होने से इस घराने की गायकी आलाप प्रधान रही। जैसे- मालकोस, दरबारी, कान्हड़ा, शुद्ध कल्याण, तोड़ी आदि।

आज के विख्यात गायक अमरनाथ जी तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त डॉ0 अजीत सिंह पैण्टल, अमीर खाँ साहब के मुख्य शिष्यों में से हैं। श्री ए0 कानन ने भी कुछ समय तक उस्ताद अमीर खाँ से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी।

इस घराने की गायकी स्वर के नशे में डूबे हुए व लयकारी युक्त प्रतीत होती है। धैर्य के साथ राग के स्वरों की बढ़त,

गम्भीरता व चपलता का ठीक-ठाक अनुपात इस गायकी में दिखायी पड़ता है। विलम्बित रचना में गम्भीर एवं शान्त वातावरण तथा द्रुत रचनाओं में तान पेंचयुक्त व द्रुत गति से ली जाती है। पेंचीली सरगम का इस गायकी में विशेष स्थान है।

रामपुर घराना –

रामपुर की परम्परा रामपुर की नवाबों से चलती है क्योंकि रामपुर के नवाब भी संगीत के ज्ञाता थे। सन् 1748ई0 में नवाब अली मुहम्मद खाँ, उनके बाद नवाब सईदुल्लाह खाँ, नवाब अब्दुल्ला खाँ, नवाब फैजुल्लाह खाँ, नवाब गुलाम मुहम्मद खाँ, नवाब अहमद अली खाँ इसके बाद नवाब युसुफ अली खाँ का नाम आता है। नवाब युसुफ के दो पुत्र कल्बे अली खाँ और हैदर अली खाँ दोनों ही संगीत में निपुण थे। कल्बे अली खाँ के दरबार में ग्वालियर के शक्कर खाँ के पुत्र बड़े मुहम्मद खाँ और अहमद खाँ को सम्मानित किया गया। अहमद खाँ के वशंज रामपुर में ही रहे। हैदर अली खाँ के भतीजे हामिद अली खाँ भी अच्छे संगीतज्ञ थे। हैदर अली के दो पुत्र छम्मन साहब (सआदत अली खाँ) तथा जानी साहब (मुहम्मद अशफ़ाक अली खाँ) भी अच्छे गायक थे। आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति के अनुसार, सदारंग और उनकी परम्परा का सम्बन्ध रामपुर के राजवंश से रहा है।[1] आपने पण्डित भातखण्डे जी को भी रामपुर से सम्बद्ध बताया है। आचार्य वृहस्पति जी के मतानुसार पं0 भातखण्डे रामपुर नरेश स्व0 नवाब हामिद अली खाँ के गन्डावन्द शिष्य थे।[2] सदारंग-अदारंग की परम्परा के एक बहादुर हुसैन खाँ ने ख्याल गायन में अच्छें शिष्य तैयार किये। आपने इनायत खाँ को ख्याल गायन व उनके भाई हैदर अली हुसैन को

---

1. आ0 कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति - 'बहार बसन्त - बसन्त बहार सगीत', मार्च 1969 पृ0 4
2 आ0 वृहस्पति एव सुमित्राकुमारी - 'सगीत चिन्तामणि', पृ0 604

वीणा की शिक्षा दी। इनायत खाँ के पिता महबूब खाँ और नाना फतबुद्दौला लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के सलाहकार व वज़ीर थे। बहादुर खाँ से शिक्षा लेने के पश्चात् इनायत खाँ ग्वालियर आ गये और वहाँ कूद्दू खाँ, से शिक्षा ग्रहण की। इनायत खाँ को ख्याल, ध्रुवपद, टप्पा, ठुमरी, आदि पर बहुत अधिकार था। आपने गीतों की रचना इनायत मियाँ या इनायत पिया के नाम से की। आपके शिष्यों में उस्ताद फिदा हुसैन खाँ बड़ौदा, उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ रामपुर, उस्ताद हैदर हुसैन खाँ रामपुर, उस्ताद हफिज खाँ मैसूर, उस्ताद अमान अली खाँ पूना, ग्वालियर महाराज के भाई गनपत राव आदि प्रमुख हैं। उस्ताद फिदा हुसैन खाँ (जन्म 1883ई0 रामपुर) की शिक्षा पहले अपने पिता हैदर खाँ (इनायत खाँ के बहनोई) फिर उस्ताद इनायत खाँ व मुहम्मद खाँ से हुई। बड़ौदा में आप 20 वर्ष तक राजगायक रहे। 1940ई0 में आप रामपुर दरबार में नवाब रजा अली के निमन्त्रण पर राजगायक नियुक्त हुये। आपके मुख्य शिष्यों में उस्ताद निसार हुसैन खाँ (पुत्र), उस्ताद रशीद अहमद खाँ, उस्ताद गुलाम मुस्तफा खाँ, उस्ताद गुलाम साबिर, उस्ताद हफीज अहमद खाँ, उस्ताद सरफराज़ हुसैन खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ, इनायत खाँ के शिष्य व दामाद थे। इनायत खाँ के दोहित गुलाम मुस्तफा खाँ जिनका सम्बन्ध सहसवान घराने से है, ने बदायुँ के उस्ताद निसार हुसैन खाँ और पिता फिदा हुसैन से शिक्षा ग्रहण की। आपकी द्रुत सपाट तानें व सरगम लेने की शैली बड़े गुलाम अली की गायकी पर आधारित है। इस प्रकार आप पर अनेक घरानों का प्रभाव है। आपने रामपुर के उस्ताद वज़ीर हुसैन खाँ से भी शिक्षा ली। स्व0 उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ की शिष्या श्रीमती सुलोचना बृहस्पति हैं ये रामपुर घराने की प्रमुख प्रतिनिधि हैं।

रामपुर घराने में गायक अधिकतर मध्यलय में गातें हैं। ख्याल आदि धीमें तीनताल में निबद्ध होते हैं। ताने सम्पूर्ण और सपाट होती हैं। सादरे की गायकी इस घराने की बड़ी विशेषता है।

कव्वाल बच्चों का घराना –

यह प्राचीन घराना माना जाता हैं। परन्तु इस घराने के संस्थापक का नाम ज्ञात नहीं होता। कुछ विद्वानों के अनुसार, ये अहमद खाँ का घराना है। उस्ताद अहमद खाँ से उस्ताद पंचम खाँ ने शिक्षा प्राप्त की थी और उस्ताद पंचम खाँ से उनके पुत्र उस्ताद मस्सू खाँ ने शिक्षा पाई थी। उस्ताद विलायत हुसैन खाँ ने अपनी पुस्तक 'संगीतज्ञों के संस्मरण' में शक्कर खाँ और मक्खन खाँ को इस घराने से सम्बद्ध बताया है। सावन्त और बूला नामक दो भाइयों को इस घराने का संस्थापक कहा है।[1]

आचार्य बृहस्पति के कथनानुसार, खुसरो मुल्तान, अवध और बंगाल में रहे थे ब्रज और गुजरात के परिवार दिल्ली आकर बस गये और दक्षिण के गुणी भी आ गये। इन परिस्थितियों ने इन्द्रप्रस्थ मत को जन्म दिया जिसमें अनेक राग भारतीय थे परन्तु जिनका वर्गीकरण ईरानी ढंग पर मुकाम पद्धति से किया गया था। ऐसे राग भी थे जो भारतीय और ईरानी रागों को मिलाकर बनाये गये थे और जिनका नाम भारतीय रखा गया था तथा ऐसे राग भी थे जिनके नाम तो पुराने थे, परन्तु स्वर व्यापार से जो एक ठाठ से अन्य ठाठ में चले गये थे, जैसे बसन्त और श्री काफी ठाठ से पूर्वी ठाठ में आ गये थे। भारतीय संगीत का यह नवीन सम्प्रदाय 'कव्वाल बच्चों की परम्परा' कहलाया।

---

1. मालवेन्दु कश्यप - 'संगीत के मौन मनीषी उस्ताद मस्सु खाँ' संगीत, फरवरी 1969 पृ0 33

मक्खन खाँ को ग्वालियर घराने का संस्थापक बताया गया है यदि केवल शक्कर खाँ को ही कव्वाल बच्चों की परम्परा से माना जाये तो शक्कर खाँ के पुत्र बड़े मुहम्मद खाँ थे जिनकी शिक्षा अपने पिता व चाचा से हुई थी वे ख्याल गाते थे। आपने अपने सूझ बूझ से तानों की फिरत पेंचदार व बलदार बनाकर अपनी गायकी में विशेषता उत्पन्न कर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। कहा जाता है कि हस्सू खाँ और हद्दू खाँ ने भी इनकी गायकी को आत्मसात कर लिया था। मुहम्मद खाँ के भाईयों का नाम अहमद खाँ, रहमत खाँ और हिम्मत खाँ था। अहमद खाँ ने अपने भाई की तरह ही फिरत आदि सीख ली थी। इनके वंशज रामपुर में ही रहे। रहमत खाँ की गायकी में तान पेंचदार, जोरदार व प्रभावोत्पादक थी। राजदरबार से इन्हें 'तानों के कप्तान' की उपाधि मिली थी। हिम्मत खाँ अच्छे गायक थे जो रीवां रियासत में थे। मुहम्मद खाँ के पुत्रों में अमान अली खाँ, बाकर अली खाँ, मुबारक अली खाँ, मुनव्वर अली खाँ और फैयाज खाँ थे। अमान अली खाँ ग्वालियर व रीवाँ रियासत में थे। बाकर अली खाँ रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के ख़ास गवैयों में थे। मुनव्वर अली खाँ रीवाँ राज्य में नियुक्त थे। फैयाज़ खाँ का सम्मान भरतपुर, रीवां, जयपुर आदि सभी राजदरबारों में हुआ। मुबारक अली खाँ फिरत में विशेष पारंगत थे। इनके दो भतीजे वारिस अली खाँ और इनायत हुसैन खाँ अच्छे गवैये थे।

इनके अतिरिक्त घराने के अन्य प्रसिद्ध गायकों में इमदाद खाँ, करम अली खाँ, सादिक अली खाँ, फजले अली खाँ, मुज़ाहिर खाँ, हुसैन खाँ, मीरबख्श खाँ, रज़ब अली खाँ, मौजुद्दीन खाँ, दिलावर अली खाँ, तन्नू खाँ के नाम प्रसिद्ध है।

इस घराने में लय ताल की कठोर साधना तथा स्वरों की मधुरता से लगाने के अभ्यास पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया। चीज़ों को अणुद्रुत लय तक गाते थे, शायद इसी कारण इस घराने का नाम कव्वाल बच्चों का घराना पड़ा हो। कठिन गायकी और फिरत इस घराने की गायकी है।

जयपुर घराना –

इस घराने के संस्थापक अल्लादिया खाँ साहब माने जाते हैं। ये मूलतः जयपुर के निवासी थे इसलिये इनकी गायकी जयपुर घराने के नाम से या अल्लादिया खाँ का घराना नाम से प्रसिद्ध हुई। अल्लादिया खाँ की गायकी पर ग्वालियर घराने का ही प्रभाव था।[1] आपकी शिक्षा अपने पिता अहमद खाँ, चाचा जहाँगीर खाँ व चचेरे भाइ दौलत खाँ के द्वारा हुई। अल्लादिया खाँ के दो पुत्र मंजी खाँ व मर्जी खाँ थे। इस घराने में वैसे ठुमरी व गज़ल का प्रचार नहीं था किन्तु मंजी खाँ कभी-कभी ठुमरी गाते थे। अल्लादिया खाँ साहब की गायकी ही इस घराने के गायकी की विशेषता थी। आपकी गायकी सहज, मुक्त, अकृतिम एवं मुलायम थी। ताल की प्रत्येक मात्रा पर ध्यान देते हुये उनके स्वर विन्यास दो मात्राओं के बीच में सूक्ष्म स्थानों पर होते थे। बोलतान में स्वर व अक्षर गुंथे हुये, उच्चारण व स्वर बहुत भरावदार होते थे। इस गायकी में स्वर व लय को समान रूप से महत्व दिया गया है। इनकी परम्परा में गायन की लय बहुत विलम्बित रहती थी और उसी तेज लय की तान गाई जाती थी। उनकी गायकी मधुर, घुमावदार व डौल की थी। फिरत बलपेंचयुक्त होती थी। इस घराने में विलम्बित के बाद द्रुत ख्याल गाना अनिवार्य नहीं है। इस घराने के प्रतिभाशाली प्रतिनिधियों में श्री मल्लिकार्जुन मंसूर, केसरबाई केरकर, मोधूबाई

---

1. वा० ह० देशपाडे - घरानेदार गायकी पृ० 72

कुर्डीकर, लक्ष्मीबाई जाधव के नाम उल्लेखनीय हैं। खुली आवाज गायकी में ध्रुवपद की गमक व मुक्त रूप से ख्याल का विस्तार ठुमरी की मींड, सफाईदार फेंक और टप्पा गायन की सरबत्ती तानें इस घराने की मुख्य विशेषतायें हैं।

खुर्जा घराना –

इस घराने का आरम्भ मैंदू खाँ से होता है। उनके पश्चात् दायम खाँ फिर कायम खाँ, फिर 18वीं शताब्दी के नत्थे खाँ के पुत्र जोघे खाँ इस घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुये। शिभरौनगढ़ के नवाब ने इन्हें बहुत सी जागीर देकर अपने दरबार में नियुक्त कर लिया। अन्तिम दिनों में खुर्जा में आ गये इनके पुत्र इमाम खाँ ने अपने पिता व शहाब खाँ से संगीत शिक्षा प्राप्त की। बाद में रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में नियुक्त हुये। इनके पुत्र गुलाम हुसैन खाँ तथा गुलाम हुसैन खाँ के पुत्र जहुर खाँ रामदास, गफूर बख्श खाँ और गुलाम हैदर खाँ थे। जहूर खाँ को ध्रुवपद व ख्याल पर पूर्व अधिकार था। हिन्दी, संस्कृत व फारसी में कविता भी करते थे। इनके द्वारा रचित, ध्रुवपद ख्याल, होरी, सादरे, चतुरंग, त्रिवट, सरगम बहुत प्रसिद्ध हैं। गफूर बख्श खाँ अच्छे सितारवादक व शायर थे। आपकी शिक्षा अपने पिता गुलाम हुसैन खाँ व भाई जहूर खाँ से हुई। आप नेपाल में 20 वर्ष तक रहे। आपका 1920 में खुर्जा में स्वर्गवास हो गया। जहूर खाँ के पुत्र अल्ताफ हुसैन खाँ का ध्रुवपद, धमार, ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि पर बहुत अधिकार था। आपको 90 वर्ष की उम्र में सन् 1960ई0 में राष्ट्रपति पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। गफूर बख्श खाँ की कोई सन्तान नहीं थी। गुलाम हैदर खाँ के पुत्र अब्दुल हकीम खाँ ने अपने पिता से शिक्षा प्राप्त की। अल्ताफ हुसैन के पुत्र वाहिद हुसैन खाँ तथा मुमताज हुसैन खाँ, वाहिद हुसैन खाँ के दो पुत्र

जावेद हुसैन व परवेज हुसैन, मुमताज हुसैन के पुत्र तौफीक हुसैन अब्दुल हकीम खाँ के पुत्र निसार हुसेन खाँ और तुफैल हअहमद ये सभी खुर्जा घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं।

इस घराने की विशेषता यह कि इस घराने में ख्याल के भी चार भाग होते हैं। शुद्ध मुद्रा, शुद्ध बानी का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस घराने में मुर्की का प्रयोग कम किया जाता है।[1]

सहसवान घराना –

इस घराने से फ़िदा हुसैन खाँ, निसार हुसैन खाँ और इनायत हुसैन खाँ मुख्यत: सम्बन्धित हैं। इनायत हुसैन खाँ, हद्दू खाँ के दामाद और बहादुर हुसैन खाँ के शागिर्द तथा रामपुर घराने से सम्बन्धित थे। आपके शिष्यों में रामकृष्ण बझे बुवा, छज्जू खाँ, खादिम हुसैन खाँ, नजीर खाँ, मुश्ताक हुसैन खाँ आदि प्रसिद्ध हैं। मुश्ताक हुसैन खाँ, इनायत हुसैन खाँ के दामाद थे, जिनकी शिक्षा पहले अपने मामा पुत्तन खाँ फिर अपने पिता कल्लन खाँ फिर उस्ताद वज़ीर खाँ से हुई। 1952ई0 में आपको राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ। आपके पुत्र इश्तियाक हुसैन खाँ अच्छे गायक छोटे पुत्र इशाक हुसैन खाँ अच्छे हारमोनियम वादक हैं। एक अन्य गायक इमदाद खाँ जिनकी शिक्षा हद्दू खाँ से हुई, उनके दो पुत्र अमजद हुसैन खाँ और वाजिद हुसैन खाँ संगीत में प्रवीण हैं। उस्ताद हैदर खाँ सहसवान घराने के थे व रामपुर नवाब हामिद अली खाँ के यहाँ नियुक्त हो गये। फिदा हुसैन खाँ के पुत्र निसार हुसैन खाँ महाराज सियाजीराव गायकवाड़ के दरबार में नियुक्त थे। बाद में बदायुँ आकर रहने लगे। इनकी तान सुरीली और तीन सप्तक तक जाती है। तराना भी बहुत तैयार गाते हैं।

---

1. डॉ0 मधुबाला सक्सेना – 'ख्याल शैली का घरानों के रूप में विकास' पृ0 187

मथुरा घराना –

18वीं शताब्दी के ध्रुपद, धमार, ख्याल, गायक कौड़ी रंग व पैसा रंग नामक दो भाई के वंशजो में पान खाँ सन् 1800ई0 के पूर्व हुये थे। इनके पुत्र बुलाकी खाँ संगीत शास्त्र के महापण्डित भी थे। ये दोनों ध्रुवपद, धमार, ख्याल गायन में निपुण थे। पान खाँ सितार भी बजाते थे। 19वीं शताब्दी के बुलाकी खाँ के पुत्र मेहताब खाँ गायन कला में निपुण थे। मेहताब खाँ के पुत्र मीराबख्श खाँ (1870) अच्छे गायक होने के साथ अच्छे सितार वादक भी थे। आप बूँदी के महाराज बख्त सिंह के दरबार में रहे। मीराबख्श के दो पुत्र गुलदीन खाँ उर्फ अहमद खाँ व नज़ीर खाँ थे। गुलदीन खाँ गुजरात के लूनावाड़ा राज्य दरबार में रहे व वहाँ के महाराजा आपके शिष्य बन गये। नज़ीर खाँ मथुरा के प्रसिद्ध संगीताचार्य थे। 1890 में, हैदराबाद में आपका देहान्त हो गया। गुलदीन खाँ के पुत्र काले खाँ (जन्म 1860 मथुरा) एक अच्छे गायक थे। इनके द्वारा रचित ख्याल, ठुमरी व सरगमें आदि बहुत प्रसिद्ध हुई। आपका उपनाम 'सरस पिया' था। सितार का अच्छा ज्ञान था। आपके पुत्र गुलाम रसूल खाँ (जन्म 1897ई0, मथुरा में) ने पिता से उर्दू तथा फारसी की शिक्षा प्राप्त की। आप ख्याल, ध्रुवपद व सरगम सभी अच्छा गाते थे तथा हारमोनियम भी बजाते थे। बड़ौदा के महाराज सियाजी गायकवाड़ ने आपके गायन से प्रसन्न होकर आपको भारतीय संगीत पाठशाला में नियुक्त कर दिया। बाद में आप बड़ौदा यूनिवर्सिटी में संगीत विभाग में कार्यरत हो गये। आप के अनेक शिष्य आज भी अनेक पाठशालाओं में कार्यरत है। इस घराने के अनेक संगीतज्ञों में जहूर खाँ (18वीं शताब्दी) ख्याल गायक, मथुरा के चौबे चुक्खा व गणेशी संगीत के प्रकाण्ड पण्डित हुये हैं। 1915 ई0 के लगभग आपका देहान्त हो गया।

सिकन्दराबाद का घराना –

उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में सिकन्दराबाद नामक स्थान पर रमज़ान खाँ नामक गवैये हुये है। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने घराने से प्राप्त करके इमाम खाँ अतरौली वाले से शिक्षा प्राप्त की। आपका उपनाम 'मियाँ रंगीले' था। रमजान खाँ के भतीजे मुहम्मद अली खाँ (19वीं सदी) भी अच्छे गवैये थे। आप हांडे इमामबख्श के भी शिष्य रहे। झालरापाटन के महाराज ने प्रसन्न होकर इन्हें अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। बाँदा के नवाब जुल्फीकार अली ने भी आपका बहुत सम्मान किया। आपका स्वर्गवास 1890ई० में हो गया। रमजान के दूसरे भतीजे अमीर खाँ ने इन्हीं से शिक्षा प्राप्त की।

इस घराने के कुछ अन्य संगीतज्ञों में कुतुबअली खाँ, रहमतुल्ला खाँ के बड़े पुत्र अज़मतुल्ला खाँ व कुदरतुल्ला, कुदरतुल्ला के बेटे मुहम्मद अली खाँ प्रसिद्ध हुये हैं। इनके अतिरिक्त मस्ते खाँ के सुपुत्र मुजफ्फर खाँ तथा इनके पुत्र मुनव्वर खाँ, कुतुब अली खाँ के पुत्र गुलाम अब्बास खाँ (19वीं शताब्दी) भोया व भुलगा दो भाई (1801ई०), किफायतुल्ला खाँ के बड़े बेटे बदररुज्मा, इमाम खाँ के बेटे जहूर खाँ (मृत्यु 1881ई०), मुहम्मद अली सिकन्दराबादी के मझले बेटे फिदा हुसैन खाँ आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ग्वालियर, आगरा, किराना, दिल्ली, पटियाला, इन्दौर रामपुर कव्वाल बच्चों का घराना, खुर्जा, सहसवान, मथुरा, सिकन्दराबाद के घराने के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे घराने हैं जिनका विवरण करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं- भेंडी बाजार का घराना, जिसके प्रसिद्ध गायक राजा भैया पूँछ वाले व दिलावर खाँ, मनरंग घराना- संस्थापक मनरंग (भूपत खाँ) गोखले

घराना - संस्थापक महादेव बुवा गोखले मिश्र घराना - प्रमुख गायक पं0 दिलाराम मिश्र।

निषकर्षत: प्रचलित घरानों में प्रत्येक घराने की अपनी कुछ न कुछ विशेषतायें हैं। इन घरानों की उपयोगिता यही रही कि संगीत की गायकी को संवारना और आवाज का निर्माण करना। आवाज के गुणधर्म के अनुसार, संगीत अलंकरणों का प्रयोग भावना, अनुभव, कल्पना व सूझबूझ के आधार पर दी गई तालीम पीढ़ी दर पीढ़ी किन्हीं विशेष नियमों, रीतियों व कायदों से युक्त होने पर एक घराने का रूप धारण कर लेती है।

ख्याल शैली का साहित्यिक पक्ष :–

संगीत, काव्य तथा साहित्य तीनों ही अलग-अलग होते हुये भी परस्पर एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। सूक्ष्म रूप से सभी कलाओं का प्रमुख उद्देश्य भावाभिव्यक्ति है। साहित्य की सुन्दर भाषा, संगीत को प्रभावोत्पादक बनाने में सहायता करती है और काव्य का तो निर्माण ही साहित्य व संगीत के मिश्रण से होता है। इस प्रकार यह तीनों ही एक दूसरे की भावाभिव्यक्ति की क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। तीनों में ही 'कल्पना' का प्रमुख स्थान रहता है। इसमें ग्रन्थकार, संगीतकार कवि की कल्पना, भावना, अनुभव तथा निर्माण करने की प्रवृत्ति का, उसको कोई रूप या आकार देने में सम्पूर्ण योगदान रहता है।

संगीतकार करुण, हर्ष, रौद्र, वीर इत्यादि विचारों को शब्द, स्वर, ताल व लय के झूले पर बिठा कर भावना के साथ-साथ आनन्ददायक, सुखदायक व शान्तिदायक रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार प्रस्तुत भाव, स्वरलहरियों के रूप में तरल होकर श्रोताओं के

हृदय तक पहुँचती हैं और शब्दों से ऊपर उठकर केवल भाव विशेष ही सर्वोपरि रह जाता है और श्रोता रसमग्न हो जाता है।

शास्त्रीय संगीत में साहित्य का स्थान तीन रुपों में दृष्टव्य होता है-पहले रूप में, शास्त्रीय संगीत में साहित्य का स्थान अत्यन्त न्यून है क्योंकि इसमें स्वर की प्रधानता है और शब्दों का स्थान गौण है। दूसरे रूप में, उपशास्त्रीय संगीत में दोनों का स्थान लगभग बराबर ही रहता है। जैसे ठुमरी, टप्पा, दादरा आदि। तीसरे रूप में, ललित संगीत में शब्दों की प्रधानता रहती है जैसे - ग़ज़ल, भजन, गीत आदि। ख्याल में शब्दों की स्थान की कोई निश्चित सीमा नहीं है। कुछ गायक शब्दों को इतना महत्व देते हैं कि 'ख्याल' गाते समय पूरी बन्दिश की ही कम से कम 3-4 बार अवश्य पुनरावृत्ति करते हैं, जबकि कुछ गायक एक या दो बार ही सम्पूर्ण बन्दिश गाकर उसका स्वरात्मक अलंकरण करते हैं। कुछ गायक बन्दिश को एक ही बार गाते हैं, कुछ गायक कभी-कभी अन्तरा गाते ही नहीं, एक बार बन्दिश गाकर सम्पूर्ण गायन में विस्तार केवल मुखड़े के शब्दों का ही करते हैं और इसी से गायन सम्पन्न करते हैं।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों, 13वीं शताब्दी के संगीत रत्नाकर तक के ग्रन्थों, संस्कृत के श्लोकों, मन्त्रों, दोहा, चौपाई, छन्द आदि के रूप में साहित्य व लय का मिश्रण परिलक्षित होता है। अतः ऋषि मुनियों ने भी यह स्वीकार किया है कि स्वर व लय को साहित्य के साथ मिला कर कहने में विशिष्ट भाव अधिक प्रभावोत्पादक रूप में समझा, सुना जा सकता है। संगीत और काव्य इतना समीप होते हुये भी अपना-अपना गुण अपने अन्दर नीहित रखते हैं और उन्हीं के कारण अलग-अलग प्रकाशित होते हैं। काव्य में शब्दों का अर्थ (गूढ़ार्थ) महत्वपूर्ण होता है जबकि संगीत में

शब्द के अर्थ के साथ-साथ उसके आकार का चयन ऐसा किया जाता है, जो संगीतात्मक हो तथा संगीत में प्रयुक्त होकर सुन्दर लगे। उपरोक्त गुणों का विपरीतार्थक सम्बन्ध व महत्व भी रहता है। अर्थात् गूढ़ार्थ के साथ-साथ यह आवश्यक है कि शब्द कविता के योग्य हो, उनका आकार एक दूसरे के साथ जुड़ कर सुन्दर लगने वाला हो, आकार, इकार, उकार आदि का प्रयोग इस प्रकार किया जाये कि शब्द एक दूसरे से भली प्रकार आबद्ध प्रतीत हों। इसी प्रकार संगीत मे शब्द के आकार का महत्व अधिक होते हुये भी उसका अर्थ उस रस या भाव की अभिव्यक्ति करता हो, जिस राग के लिये उस कविता का या गीत का चयन किया गया हो।

संगीत के शास्त्र पक्ष में तो अवश्य ही साहित्य का बड़ा हाथ है।[1] शब्द को स्वर से विछिन्न नहीं किया जा सकता अर्थात् स्वर के बिना शब्द नहीं हो सकता परन्तु शब्द के बिना स्वर को रस उद्दीपन का कार्य कर सकता है। इतना अवश्य है कि स्वर को आरम्भ करने से लेकर संगीत के ब्रह्मनन्द रूप धारण करने या चरमोत्कर्ष तक पहुँचने के मध्य शब्द निश्चित रूप से ही सौन्दर्यवर्धक तथा रसनिष्पत्ति में सहायक होते हैं। एक साधारण श्रोता के लिये केवल स्वरों का गायन नीरस हो सकता है परन्तु शब्दों का सम्मिश्रण हो जाने से प्रसंगानुकूल वातावरण तैयार होकर एक विशेष रस के आनन्द की अनुभूति कराते-कराते जब धीरे-धीरे जब गायन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है तब शब्दों का प्रभाव कम होकर स्वर का प्रभाव अधिक हो जाता है फलस्वरूप श्रोता का ध्यान भी शब्दों के अर्थ से हटकर उसके गूढ़ार्थ में तथा उससे उत्पन्न रस में व स्वर लहरियों में डूब जाता है। तब वह साधारण श्रोता भी संगीतज्ञ श्रोताओं की भाँति ही स्वर के आनन्द का

---

1 Sambmoorthy - History of Indian Music P 57, 58

अनुभव कर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि शास्त्रीय संगीत में शब्दों का बहुत प्रयोग किया जाये। ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार, आटे में नमक की भाँति शब्द शास्त्रीय संगीत के या ख्याल शैली के सौन्दर्य को बढ़ाता है, परन्तु यदि आटे में नमक अधिक कर दिया जाये या स्वरों के संगीत में शब्दों का प्रयोग अधिक कर दिया जाये तो निश्चित रूप से ही वह सौन्दर्यवर्धक होने की अपेक्षा सौन्दर्य अवरोधक ही होगा।

रस व भाव की अभिव्यक्ति के लिये स्वर व शब्द दोनों की आवश्यक व महत्वपूर्ण हैं। दोनों का ऐसा सन्तुलित प्रयोग किया जाना चाहिये जिससे गीत व राग दोनों की अभिव्यक्ति शुद्ध रूप से हो सके। दोनों के समन्वय से असीम आनन्द प्राप्त होता है। श्री. वी0वी0 देशपांडे के अनुसार, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक व संगीतिक दृष्टि से संगीत और साहित्य एक ही प्रकृति के दो स्वरूप हैं।[1] ख्याल की प्राचीन व आधुनिक बन्दिश की तुलना करने पर प्रतीत होता है कि सदारंग-अदारंग आदि के समय की बन्दिशों की तुलना में अत्याधुनिक बन्दिशें अत्यन्त संक्षिप्त रची जाने लगी हैं। अर्थात् कभी-कभी एक या दो पंक्ति में ही बन्दिश समाप्त करने की प्रथा सी हो गई है। पुरानी बन्दिश का एक उदाहरण इस प्रकार है- जो 'राग मल्हार' में निबद्ध है-

"उमड़ घुमड़ घन बरसे बूंद री चलत पुरवैया
सननन नननन थरथर काँपे मनुआ लरजे
झिंगरवा बोले झनन ननन नननन।
चमक-चमक चमके जो घनवा, दमक-दमक दमके दामिनिया

1. वी0पी0 देशपाडे - 'सगीत और साहित्य', सगीत कला बिहार, 1971 पृ0 10

मन भावन गरे लागन आयो, दिग तन मन दृगति

ध्यैये घिटिकिटि धा घिटिकिटि धा।"[2]

आधुनिक बन्दिश का एक उदाहरण जो राग 'श्री कल्याण' में है इस प्रकार है-

"रैन अंधेरी तोहे बिना रे, जाये बसे परदेस पिया रे।"

इस प्रकार काव्य व संगीत के समन्वय की दृष्टि से अनेक प्रकार की ख्याल रचनायें उपलब्ध होती हैं।

सार रूप में हम कह सकते हैं कि ख्याल गीत रचना के शब्द सुन्दर सुबोध आकर्षक, मधुर भावों से युक्त व सरल होने चाहिये। शब्द रचना स्वरों की अपेक्षा गौण रहनी चाहिये।

निष्कर्ष –

सम्पूर्ण चर्चा के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है, कि ख्याल शैली आधुनिक समय में शास्त्रीय संगीत की सबसे अधिक प्रचलित शैली है। ख्याल गायन शैली में एक कलाकार अपने विचार अथवा ख्याल को प्रस्तुत करके 'ख्याल गायन शैली' व 'ख्याल' में एकरूपता स्थापित कर देता है। ख्याल में विस्तृत क्षेत्र होने के कारण कलाकार के कुछ आन्तरिक गुण जैसे - सहृदयता, अनुभूति, भावुकता, एकाग्रता, कल्पनाशक्ति तथा इनके अतिरिक्त स्वर समुदायों का सुन्दर संगठन, रंजकता, स्वर सज्जा, राग सिद्धि आदि ख्याल गायन को प्रभावोत्पादक बनाने में सहायक होते हैं।

वैदिक काल से स्वरों के क्रमिक विकास, गान्धर्व व गान विभाजन, गीति, जाति, प्रबन्ध, कव्वाली तथा ध्रुवपद आदि सभी शैलियों से संक्षिप्त विवरण के उपरांत यह सिद्ध हो जाता है कि न तो यह किसी एक शैली पर आधारित है और न ही किसी एक

---

2. पं० वि० ना० पटवर्धन - राग विज्ञान, तृतीय भाग पृ० 16

व्यक्ति के प्रयत्नों का फल है वरन् यह प्राचीन शैलियों के आधार पर स्वाभाविक रूप से विकसित शैली है, जिसमें समय-समय पर अन्य अनेक शैलियों के विभिन्न तत्वों का समावेश होता आया है।

ख्याल शैली का आधार शास्त्रीय दृष्टि से साधारणी गीति तथा क्रियात्मक दृष्टि से रूपकालप्ति को माना जा सकता है। इस शैली के दो भागों स्थायी व अन्तरा की, प्रबन्ध की धातुओं के साथ समानता मानी जा सकती है और ख्याल को द्विधातु प्रबन्ध कहा जा सकता है। ख्याल शैली के विकास में घरानों का योगदान महत्वपूर्ण व सराहनीय है। आधुनिक समय में संगीत विद्यालय व शिक्षण संस्थाओं में संगीत, एक विषय के रूप में आ जाने से घरानों का उतना महत्व नहीं रह गया है। किन्तु फिर भी गायकी में प्रौढ़ता पुष्टता व गम्भीरता के लिये किसी एक गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है जो परोक्ष रूप से घरानों का ही महत्व दर्शाता है। ख्याल के साहित्यिक पक्ष पर विचार करने से प्रतीत होता है कि स्वर का प्रभाव सीधा अन्तःकरण पर तथा शब्द का प्रभाव मस्तिष्क व हृदय पर पड़ता है तत्पश्चात् आत्मिक व अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। अतः रसाभिव्यक्ति व भावाभिव्यक्ति के लिये स्वर व शब्द दोनों ही महत्वपूर्ण है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि ख्याल शैली में सभी शैलियें के मुख्य तत्वों की छाप इसमें परिलक्षित होती है।

अब मैं उदाहरण के लिये ख्याल की कुछ स्वरलिपियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ-

बड़ा ख्याल

राग-कौंसी

ताल रूपक

(विलम्बित)

स्थायी- ए तन मन वारू, जो पिय पाऊँ, सजाऊँ मणि मदिर।

अन्तरा- लागी लगन मोहे वा मूरत की, 'रामरंग' का विध दरस मैं पाऊँ।

स्थायी

म गमधनि	सांसां	धनिध	-पमप-	म	ग	सागमग
एSSS	Sत	न, SS	SमSनS	वा	S	SSSS
२		३		X		
रे	सा	सानि	साग	(सा)ध	नि	सासा
रूँ	S	जोS	पिय	पाS	ऊँ	Sस
२		३		X		
						सा
साम	ग,मध	मध,नि	धम	मग	रेगमग	रेसा
जाऊँ	S,मणि	मS,S	दिर	ढाS	SSSS	Sर
२		३		X		

अन्तरा

गम	धनि	धनिसा-	सांनि	सां	सां	गंसा
लाऽ	गीऽ	ऽऽऽऽ	ऽल	ग	न	मोहे
२		३		x		
		सा				
निसां	सागमगा	रें	सासा	धध	निध	पम
वाऽ	मूऽऽऽ	र	तकी	राम	ऽऽ	रंग
२		३		x		
ग,मग	रे	-सा	धनि	साम	-	धधमग
का,विऽ	ध	ऽद	रस	मेंऽ	ऽ	पाऽऽऽ
२		३		x		
मधनिसां	धनि,गंसां	धनिध	-पमप-			
ॐ ऽऽऽ	ऽऽ,तऽ	नऽऽ	ऽमऽनऽ			

"अभिनव गीताजली"- प0 रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-2, पृ0 113, 114

छोटा ख्याल

राग-नन्द ताल त्रिताल

(मध्यलय)

स्थायी- छेड़ो न मोहे हो बनवारी, काहे करत हो मोसे बरजोरी।

अन्तरा- लाज शरम छोरी सारी, सास ननद देगी गारी।।

स्थायी

															ध
															छे
	ग														
प	रे	-	सा	ग	-	-	-	म	-	म	ग	प	-	प	ग
ड़ो	ना	ऽ	मो	हे	ऽ	ऽ	ऽ	हो	ऽ	ब	न	वा	ऽ	री,	का
३				x				२				०			
म	प	-	ध	नि	प	ध	मं	प	ग	सा	ग	म	ध	प	ध
ऽ	हे	ऽ	क	र	त	हो	ऽ	मो	से	ब	र	जो	ऽ	री,	छे

अन्तरा

ग	म	प	नि	सां	सां	सां	सां	प	नि	सां	गं	रें	-	सां	-
ला	ऽ	ज	श	र	म	अ	ब	छो	ऽ	री	ऽ	सा	ऽ	री	ऽ
३				x				२				०			
रें	नी	सां	ध	नि	प	ध	मं	प	ग	सा	ग	म	ध	प	ध
सा	ऽ	स	न	नं	द	दे	ऽ	गी	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ऽ	री,	छे
३				x				२				०			

"सगीत प्रवीर्ण दर्शिका" - प० नारायण लक्ष्मण गुणे, भाग-1, पृ० 27, 28

बड़ा-ख्याल

राग-गोरख कल्याण ताल-एकताल

(विलम्बित)

स्थायी- कैसे धीर धरूँ, नाथ तुमरे बिन, काहे, सतावत हो मोहन।

अन्तरा- सोचत हूँ मैं, का भूल भयी, समझत न कछु, बावरी हो गई।

स्थायी

रे(म)	रेसा	नि	-	धध	सा	ध	सासा	रेम	ध	निध	म
कै S	सेS	धी	S	रध	रूँ	ना	Sथ	तुम	रे	Sबि	न
४		x		०		२		०		३	
	सांसा							ध			
म	धध	सां	-	रे	नि	साध	म	पम	रेम	रे	स
का	हेस	ता	S	व	त	होS	S	मोS	SS	ह	न
४		x		०		२		०		३	

अन्तरा

	सांसां					सां					
म	धध	सां	-	सां	-	ध	सां	रे,मरें	निध	सां	-
सो	चत	हूँ	S	मैं	S	का	S	भू,SS	लभ	ई	-
४		x		०		२		०		३	
सा	सां	रें	नि	सां	ध	म	म	रेम	धप	रे(म)	रेस
स	म	झ	त	ना	S	क	छू	बाS	वरी	होS	गई
४		x		०		२		०		३	

"संगीत प्रवीण दर्शिका" - पं० नारायण लक्ष्मण गुणे, भाग-1, पृ० 89

छोटा-ख्याल

राग-शहाना ताल-झपताल

स्थायी- गुरु चरण चित धरे, लेन प्रसून, चले, मूरति मधुर होउ बिदेह बगियन मे।

अन्तरा- सखियन सग सिय, पूजन गौरी आई, माया-ईश को मिलन आज बगियन मे।।

स्थायी

ग	म	ध	धनि	प	नि	प	(प)	ग	म
गु	रु	च	रS	न	चि	त	ध	रे	S
x		२			०		३		
प	सां	निरे	रे	सां	सां	नि	ध	नि	प
ले	S	नS	S	प्र	सू	S	न	च	ले
x		२			०		३		
प	-	ग	ग	म	रे	रे	सा	सा	सा
मू	S	र	ति	म	धु	र	हो	उ	बि
x		२			०		३		
								म	ग
ध	-	नि	पम	प	सां	प	नि	प	म
दे	S	ह	बS	गि	य	न	S	में	S
x		२			०		३		

अन्तरा

म	प	नि	-	प	सां	-	सा	रे	सा
स	खि	य	S	न	स	S	ग	खि	य
X		२			०		३		
सां	-	रें	-	सा	सा	नि	ध	नि	प
पू	S	ज	S	न	गौ	S	री	आ	ई
X		२			०		३		
गं	-मं	रे	-	सा	रे	नि	सा	सा	सा
मा	SS	या	S	S	ई	S	श	को	मि
X		२			०		३		
								म	ग
ध	ध	ध	नि	प	सां	प	नि	प	म
ल	न	आ	S	ज	ब	गि	य	न	मे
X		२			०		३		

• • • • • • • • • • • • •

"अभिनव गीताजलि" - प0 रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-2, पृ0 56, 57

अष्टम अध्याय

टप्पा–शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली : विकास व महत्व

(स) लोकगीत के रूप में टप्पा व टप्पे का विकास

(रे) विभिन्न प्रान्तों के टप्पे व टप्पे के घराने

(ग) टप्पे का साहित्य

(म) टप्पा स्वरलिपि सहित

टप्पा – शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली : विकास व महत्व

टप्पा गायन शैली उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् आती है। ख्याल गायकी के बाद टप्पा गायकी का प्रचार हुआ। टप्पा गायन शैली को हिन्दी भाषी प्रान्तों में 'टप्पा' बंगला में 'टौप्पा' और पंजाबी में 'टप्पे' के नामों से जाना जाता है। टप्पा शब्द पंजाबी भाषा के 'टप्पना' शब्द से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ है उछलना, कूदना, फुदकना इत्यादि। टप्पा हिन्दी और पंजाबी भाषा के मिश्रण से बनी हुई एक श्रृंगार रस प्रधान शैली है।

पंजाब प्रान्त में ऊँट हाँकने वाले लोगों के द्वारा गाया जाने वाला गाना अथवा ऊँट की चाल के समान चाल वाला गाना ही टप्पा था। टप्पे की चाल कभी सीधी नहीं होती। इसमें सपाट तानों का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। गायन के मध्य कहीं भी विश्राम का स्थान नहीं है। टप्पा गायन शैली का प्रत्येक स्वर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ते हुए आगे बढ़ता है।

शोरी मियाँ ने टप्पा शैली का निर्माण किया। शोरी मियाँ के पिता गुलाम रसूल अपने समय की गान परम्परा के ख्याति प्राप्त गायक थे वे सदारंग व अदारंग के समकालीन थे। कुछ विद्वानों के अनुसार,, ध्रुवपद व ख्याल गायकी में अपनी तानें लगाने के कारण गुलाम नबी को अपने पिता से डाँट खानी पड़ती थी फलत: वे घर छोड़कर चले गये और पंजाब जाकर टप्पे की रचना की। गुलाब नबी का उपनाम ही शोरी मियाँ था। टप्पे की तानें शाब्दिक अर्थ के अनुरूप उछाल खाकर गिरती रहती है। यह चपल गति की है। टप्पा गायन शैली में बन्दिशों की रचना करते समय शोरी मियाँ ने

बाह्य कलेवर को और अधिक सूक्ष्म है बना दिया। यही संक्षिप्तता टप्पे की विशेषता बन गयी।

एक बार पंजाब में घूमते समय शोरी मियाँ ने ऊँट हाँकने वाले व्यक्तियों को हीर-राँझा के प्रेमगीत गाते सुना। पंजाबी गीतों में छोटी-छोटी घुमावदार तानें और ऊँट की चाल के कारण गाने के बीच में हिचकोले खाती स्वरावली इनके मस्तिष्क में कुछ ऐसी बैठ गयी कि इन्होंने इन सभी विशेषताओं का सम्मिश्रण करके एक ऐसी गायन शैली का आविष्कार किया जो यद्यपि शास्त्रीयता के रंग में पूर्ण रूप से रंगी हुई है।

टप्पे की तानें ज़मज़मा युक्त होती हैं। टप्पे की ताने शाब्दिक अर्थ के अनुरूप उछाल खाकर गिरती रहती हैं। यह गायकी प्राकृतिक रूप से चपल है। चपलता की सबसे ऊँची चोटी इस गायन शैली का विशिष्ट गुण है। संक्षिप्तता के कारण एक आवर्तन में स्थायी तथा दूसरे आवर्तन में अन्तरा गाने का प्रचलन हो गया। टप्पा गायकी में राग की सभी विशेषताओं को समाहित करके टप्पे को सौन्दर्य प्रदान किया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार,, ध्रुवपद की बेसरा गीति के आधार पर टप्पा गायन शैली की रचना हुई।

इसके शिक्षण से गला दमखम युक्त ढंग से गायन प्रस्तुत करने की दक्षता प्राप्त करता है। मध्य व द्रुतलय में गाये जाने वाले टप्पे को गाते समय ज़मज़मा तानों द्वारा राग में प्रयुक्त की जाने वाली विशिष्ट स्वर संगतियों को प्रस्तुत करना पड़ता है। अल्पसमय में चमत्कारपूर्ण क्लिष्ट स्वर संगतियों का प्रयोग बेदम गति से गायकी को प्रस्तुत करने की क्षमता बढ़ाता है। इसमें बीच में रुकना नहीं रहता। अन्य शैलियों की अपेक्षा इसमें चुस्ती व फूर्ति अधिक है। भाँति-भाँति के स्वर सन्निवेशों का प्रयोग करके हर बार नयी तरह से सम पर आने का, ताल के भराव के अनुरूप गायन एवं

ताल पर नियन्त्रण का विकास होता है। कम से कम समय में अधिक से अधिक तैयारी।

ठुमरी और टप्पा उद्‌भव की दृष्टि से लगभग समान काल में ही माने जाते हैं। ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध ख्याल गायक गुलाम रसूल अपने पुत्र गुलाम नबी को ख्याल की तालीम देते थे लेकिन गुलाब नबी उन्हें कुछ अपने ही ढंग से गाते थे जो कि श्रवण मधुर थी। परिणामस्वरूप अपनी इन तानों के आधार पर गुलाम नबी ने टप्पा गायन शैली का अविष्कार किया। शोरी मियाँ से टप्पा गायन शैली को सीखकर उनके शिष्य बनारस, लखनऊ, रामपुर, छपरा, एवं कूचबिहार स्थानों में बस गये जहाँ अनेक शागिर्दों को टप्पा सिखाया। बंगाल के रामनिधि गुप्ता जी ने छपरा में पंजाबी टप्पे सीखकर बंगाल गये वहाँ बंगाली भाषा में सैकड़ों टप्पों की रचना की जो 'निधू बाबू के टप्पे' नाम से प्रसिद्ध हुए। रविन्द्रनाथ ठाकुर जी ने भी रवीन्द्र संगीत में कुछ ऐसी रचनायें की जो टप्पा अंग पर आधारित हैं जैसे -

"के बेसिले आज हृदयासने एवं
आमि रूपे तोमाय भोलाबो ना"

आरम्भ से ही मानव अपने हार्दिक भावों को गीत के माध्यम से प्रकट करता है। स्वच्छन्द भावना की अभिव्यक्ति स्वच्छन्द सुर एवं ताल के साथ होना ही लोकगीतों का प्रथम लक्षण है।

लोकगीत के रूप में टप्पा :–

टप्पा गायन शैली वस्तुतः अपने प्रारम्भिक रूप में पंजाब प्रान्त के लोकगीत के रूप में विख्यात थी। लोकगीत के रूप में गाये जाने वाले टप्पों की भाषा जनसामान्य की भाषा है। इन टप्पों में नखशिख वर्णन, प्रिय से मिलन की उत्कंठा, वियोग के अनुभूतियों

की अभिव्यक्ति, हास-परिहास एवं व्यग्यं विनोद की बातें होती हैं। ये टप्पे विशेष धुनों में गाये जाते हैं। शास्त्रीय संगीत की झलक इनमें अवश्य मिलती है। ये प्रमुखा राग हैं?-भैरवी, काफी, माँड एवं पहाड़ी।
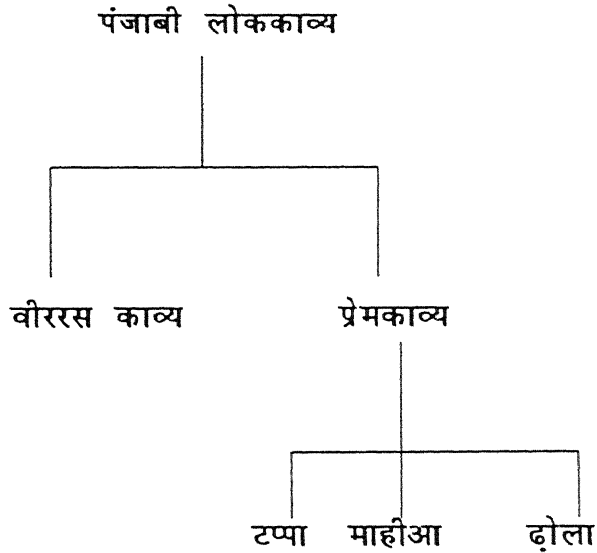
अधुना पंजाब में टप्पा नाम से कई लोकधुनें प्रसिद्ध हैं लेकिन इन लोकशैलियों से 'उपशास्त्रीय प्रकार टप्पा' का कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सादी धुनों का प्रयोग विवाह के शुभ अवसर पर किया जाता है। आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व इन टप्पों का क्या रूप था, यह तो काल के गति में में ही चला गया। इस प्रकार टप्पे के लोकसंगीतमय रूप का इतिहास ज्ञात करना असम्भव तो नहीं कठिन अवश्य है।

पंजाब में लोकगीत के रूप में गाये जाने वाले टप्पे इस प्रकार हैं। इस टप्पा गीत में दो गुट बनते है-

"टप्पे याँदी दे वारी, कुड़िये पंजाब दीये

टप्पेयाँ तू ना हारी।"

हिन्दी अर्थ - लड़की से कहा जा रहा है कि तुम टप्पयाँ तो देने लगी हो लेकिन हारना मत।

"चौकी ते चौकियाँ, वारी ते तू ला बैठीरं

पर वारी देनी अखियाँ।"

हिन्दी अर्थ - वारी लगाने का तो तूने निश्चय कर लिया है, लेकिन वारी देनी बहुत कठिन है।

इस प्रकार लोकगीतात्मक टप्पे में आपसी सम्बन्धों की एक झलक, हँसी-मज़ाक रहता है।

टप्पे का विकास :– (उपशास्त्रीय रूप में प्रचलित टप्पे का उद्‌भव)

ब्रजभाषा के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में जिसका प्रणयन श्री बल्लभाचार्य जी के पौत्र श्री गोकुलनाथ जी ने किया है, एक स्थान पर ऐसा वर्णन प्राप्त होता है- "सो आगरे बाजार में एक वेश्या नृत्य करत हुती। ख्याल टप्पा गावत हुती और भीर हुती। सब लोग तमासो देखत हुते सो कृष्णदास बाजार में तमासे में जाय ठाड़े भय।"

बल्लभाचार्य जी का समय 16वीं शताब्दी माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सोलहवीं शताब्दी में ख्याल एवं टप्पा अथवा टप्पख्याल की रचनायें गाई जाती थीं और बहुत लोकप्रिय भी थीं। किन्तु साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि शोरी मियाँ के ज़मज़मा, तान लेकर गाये जाने वाले टप्पों से ये कितने भिन्न हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थकार फकीरूल्लाह के ग्रन्थ में लाहौर प्रान्त के एक प्रसिद्ध प्रेमगीत के रूप में टप्पे का उल्लेख प्राप्त है। फकीरूल्लाह

के समकालीन 'मिर्ज़ा खाँन' ने "तुहेपतुलहिन्द" ग्रन्थ में 'डपा' नामक प्रेमगीत का उल्लेख किया है जिसके सब लक्षण टप्पे के समान हैं। उसी समय के ग्रन्थों में टप्पा नाम भी दिखायी देता है। अत: टप्पा और डपा दो अलग-अलग गायन शैलियाँ रही होंगी, जिसमें गायन की दृष्टि से कुछ सभ्यता रही होगी।

शोरी मियाँ के पश्चात्वर्ती गायकों की परम्परा से हम अधुना प्रचलित टप्पे के रूप का अंदाज लगा सकते हैं। लेकिन 16वीं से 18वीं शताब्दी तक टप्पा नाम की गायन शैली के गाने का ढंग क्या था, यह निश्चित करना कठिन है।

सदारंग-अदारंग ने भी टप्पों की रचना की है, उनमें ज़मज़मे की तान का उतना प्रयोग नहीं है। टप्पे में जगह-जगह छूट की तान, फन्दे की तान, गमक की तान भी दिखायी पड़ती है जो कि कव्वाल बच्चों के घराने की तानें हैं।

टप्पा शैली का लयात्मक प्रयोग भारतीय संगीत के इतिहास में ही नहीं अपितु विश्व संगीत के इतिहास में भी अनुपम है। पंजाबी ठेका और उसके बोलों का वज़न आज भी विलम्बित गीत में गायकों की लय की कसौटी बन जाता है। पंजाब की लोकप्रिय शास्त्रीय धुनों ने ही पंजाबी लोक संगीत को नवीन दिशा प्रदान की, ऐसा कहा जा सकता है। पंजाब जाकर ही शोरी मियाँ ने ऊँट चालकों द्वारा गाये गये टप्पों को सुना। एक विशिष्ट प्रकार की गायकी के रूप में उन्होंने शास्त्रीय पुट देकर टप्पे को नया रूप दिया। पंजाब से आकर वे लखनऊ बस गये उसके पश्चात् उनका कोई भी शिष्य टप्पा गायन में निष्णात् होकर पंजाब नहीं गया, जिससे टप्पा गायन का विकास होता। इस प्रकार पंजाब में गायकों ने टप्पे के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया। बड़े गुलामअली खाँ

साहब ठुमरी में यदा-कदा ही टप्पांगिक तानों का प्रयोग करते थे। मुनव्वर अली साहब कभी-कभी ही टप्पा गाते थे।

बंगाल में टप्पे का विकास :-

रवीन्द्र नाथ ठाकुर के समय में काली मिर्ज़ा, क्षेत्र मोहन गोस्वामी एवं कालीपद पाठक आदि टप्पा के जानकार थे। छपरा से टप्पा गायकी सीखकर आये रामनिधि गुप्ता जी ने बंगाल में टप्पा गायकी के प्रचार-प्रसार के लिये बहुत से टप्पों की रचना की। जो बांगला भाषा में हैं। पांचाली गान में विलम्बित तालों का प्रयोग होता था, किन्तु बंगला टप्पे को थोड़ा सरल करके मध्यलय में बाँधा गया।

अठ्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल के टप्पे एवं टप्पख्याल प्रचार में आये। कवि रंजनप्रसाद सेन, रामनिधि गुप्ता व भरतचन्द्र प्रमुख टप्पा गायक थे। श्यामासंगीत, पुरातनी गान बाउल, पोल्लीगीत, पाँचाली आदि सभी गान प्रकारों में टप्पांगिक तानों का प्रयोग किया गया। रवीन्द्र संगीत में भी टप्पा अंग की तानों का सुन्दर प्रयोग होता है। इस प्रकार रवीन्द्र जी ने अलंकारों का प्रयोग करके टप्पा गायन को रवीन्द्र संगीत में एक नयी दिशा प्रदान की है। शोरी मियाँ कृत टप्पों में अलंकारों की प्रधानता तथा शब्दों के तोड़-मरोड़ के कारण शब्दों को समझने में एंव स्वरानुरूप भाव ग्रहण करने में कठिनाई होती है।

विभिन्न प्रान्तों के टप्पे एवं उनका पारस्परिक अध्ययन :-

महाराष्ट्र – मराठी नाट्य संगीत एवं लावनी गायन में टप्पा अंग की तानों का प्रयोग सुनने को मिलता है।

मध्य प्रदेश – इस प्रदेश के सर्वाधिक गायक हुए, ग्वालियर घराने में शंकर पंण्डित, देवजी बुवा, राजा भैया पूँछवाले एवं कृष्ण रावं शंकर पण्डित जी टप्पा गायन अवश्य ही करते थे।

उत्तर प्रदेश – लखनऊ में ही शोरी मियाँ बहुत समय तक रहे उस समय के नवाब आसिफुद्दौला शोरी मियाँ का बहुत सम्मान करते थे। इनके शिष्य गामुन मियाँ ने टप्पा सीखकर बनारस में चित्रा व श्यामा बाँदी को टप्पा गायन की शिक्षा दी बाद में बड़ीमोतीबाई, बंगारीबाई, रसूलनबाई एवं सिद्धेश्वरी देवी आदि ने इस पर अधिकार प्राप्त किया। इलाहाबाद के भोलानाथ मिश्र, जिनके पास 100 टप्पों का भण्डार था। पण्डित गणेशप्रसाद मिश्रजी के पास भी अप्रचलित टप्पों का अनोखा संग्रह है।

बिहार – गया के पण्डित रामप्रसाद मिश्र ने टप्पे का चमत्कारिक अभ्यास किया। पण्डित रामूजी मिश्र के सुपुत्र आज भी टप्पा गायन करते हैं।

पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी द्वारा लिखित एक पुस्तक में कुछ टप्पे प्राप्त हुये हैं जो कि विष्णु दिगम्बर पुलष्कर स्वरलिपि पद्धति में हैं। कुछ टप्पे कृष्ण व राम की भक्ति व प्रेम से भी सम्बन्धित हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तों में टप्पे का विकास अवश्य हुआ किन्तु शोरी मियाँ, सरसार हमदम एवं सदारंग-अदारंग के गाये हुए टप्पे ही सब प्रान्तों में फैले थे। अतः पंजाबी टप्पे ही प्रचलित हुए।

टप्पा गायकों की गायन शैलियों की विशेषता व अन्तर :—

दो शैलियाँ:- (1) ग्वालियर व (2) बनारस अंग।

पंजाबी टप्पे शोरी मियाँ, सादिक अली, गम्मू खाँ, निसार हुसैन, शंकर पण्डित, पण्डित रामप्रसाद, रसूलनबाई, सिद्धेश्वरी देवी आदि से प्राप्त ग्वालियर घराने के गायकों में पंजाबी ठेका मध्यलय से भी कम या धीमा तीन ताल जैसा रहता है। स्वर पर न्यास मीड़ का प्रयोग अधिक सुनाई पड़ता है। जबकि बनारस व इलाहाबाद के गायकों में $1^{1}/_{2}$ दाना ज़मज़मा $1^{1}/_{4}$, $2^{1}/_{2}$, $3^{3}/_{4}$ मात्रा की ज़मज़मा तानें लेकर सम पर चमत्कारपूर्ण आने की प्रथा है। मिश्र घराने के गायक अधिकांशतः द्रुतलय में ही गायन करना पसन्द करते हैं। आमधारणा के अनुसार,, टप्पा गायन, काफी, भैरवी, खमाज, पीलू व देश रागों में ही सुन्दर लगता है इसके विपरीत बनारस अंग के टप्पा गायक बिहाग ललित पटमंजरी, जयजयवन्ती जैसे रागों में भी टप्पा गायन कुशलपूर्वक करते हैं।

टप्पा के घराने :—

	घराना		गायक
1.	**ग्वालियर घराना**	-	उस्ताद निसार हुसैन खाँ, शंकर पण्डित, कृष्णराव शंकर पण्डित, राजा भैया पूँछवाले, एकनाथ पण्डित, एल0के0 पण्डित, कृष्ण धन घोष, श्री गनपत

राव व भाष्कर राव बखले।

2. **गोगरे घराना** – लाल जी बुवा व देव जी बुवा।

3. **बनारस घराना** – शिव सेवक मिश्र, पशुपति मिश्र, गम्मू खाँ, शादी खाँ, प्रसिद्ध मिश्र, मनोहर मिश्र, सिद्धेश्वरी देवी, रसूलनबाई, गिरिजा देवी, बड़ीमोतीबाई, बंगारीबाई, श्रीपति मिश्र, राजन मिश्र व साजन मिश्र।

4. **गया घराना** रामप्रसाद मिश्र व गोवर्धन मिश्र।

5. **विष्णुपुट घराना** गोपेश्वर बैनर्जी, सत्यकिंकर बैनर्जी, अभिरंजन बैनर्जी व निहाररंजन बैनर्जी।

6. **पश्चिमी बंगाल के विभिन्न स्थानों के गायक** – काली मिर्ज़ा, काली पद पाठक, दाशरथी राय, रामनिधिगुप्ता, रवीन्द्र नाथ टैगोर, कृष्ण धन बैनर्जी, चण्डीदास भाल, रामकुमार

			चटोपाध्याय, गोपेश्वर बैनर्जी व गिरिजा शंकर चक्रवर्ती।
7.	इलाहाबाद घराना	–	भोलानाथ भट्ट व गणेशप्रसाद मिश्र।
8.	पटियाला घराना	–	तानसेन खाँ, हुसैन बख्श, शाकर अली, प्रो0 सुन्दर सिंह जी व उत्तम सिंह।

टप्पे का साहित्य :–

भारत ही नहीं विश्व की किसी भी अन्य भाषा के साहित्य में इतनी श्रृंगारपरक रचनायें नहीं प्राप्त होती हैं जितनी पंजाबी भाषा के साहित्य में मिलती हैं। विद्वानों का विचार है कि शोरी मियाँ की मातृभाषा मुल्तानी पंजाबी थी तथा वे अवधी, ब्रज एवं उत्तर भारत में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं में भी निष्णात् थे। अन्य कवियों ने भी टप्पे के बन्दिशों की रचनाओं में ब्रज, अवधी व हिन्दी के साथ पंजाबी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है।

शोरी मियाँ के समय पंजाब राज्य की भाषा फारसी थी। अत: उनके टप्पों में पंजाबी के साथ फारसी, तुर्की व अरबी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। कुछ टप्पों में ब्रज, अवधी मिश्रित पंजाबी भाषा का प्रयोग है। फारसी स्वयं आर्य भाषा है। मुल्तानी भाषा में अरबी, फारसी तथा पश्तों आदि भाषाओं के शब्द मिले हैं। कुछ टप्पे मुल्तानी भाषा में भी है।

काव्यार्थ की दृष्टि से टप्पा गायन शैली में स्वर विस्तार सांगीतिक कल्पनाओं एवं ताल के सौन्दर्यमय रूप का प्रयोग होता

है। स्वर व ताल दोनों का महत्व है। टप्पा प्रान्तीयता के रंग में रंगी है।

अठ्ठारहवीं शताब्दी के उत्तर काल में ही टप्पे का विकास हुआ। टप्पा में शब्दों का अधिकाधिक संकोच होता गया इसमें स्थायी अन्तरा दो धातु शेष रह गये। टप्पा गीतों का मुख्य विषय श्रृंगार रस ही होता है। गीत संक्षिप्त होता है। शब्द अधिकांशत: पंजाबी भाषा के ही होते हैं। तान बहुल होने के कारण शब्दों की तोड़-मरोड़ अधिक होती है। इस कारण काव्य सौन्दर्य के द्वारा रसानुभूति टप्पा गायकी में सम्भव नहीं होती।

भावपक्ष –

टप्पा गायकी तान प्रधान गायकी होने के कारण भाव उत्पन्न करने का समय गायक को नहीं मिलता। यदि कुशलतापूर्वक विशिष्ट स्वर संगीतियों के तानमय प्रयोग के द्वारा टप्पा गायक भाव सृष्टि करता है तो यह बहुत बड़ी विलक्षणता होगी। टप्पा की बंदिशों में पिया से विरह के भाव, प्रियतम की प्रतीक्षारत् प्रेमिका की पुकार आदि का ही वर्णन मिलता है लेकिन ये सब भाव तानों द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। बंगाली टप्पे में विरह, उत्कंठा, वियोग आदि भाव होता है साथ ही स्वदेश प्रेम, पूजा, प्रकृति वर्णन आदि से सम्बद्ध भावनाओं को महत्व दिया गया है।

कला पक्ष –

विभिन्न तानों से निर्मित तथा सपाट तानों की जगह ज़मज़मा व गिटकिरी की तानों का प्रयोग होता है।

टप्पा में प्रयुक्त होने वाले राग –

भैरवी, खमाज, बिहाग, काफी, देश, जयजयवन्ती, राग रूप, झिंझोटी, मांड, जंगला, सिन्धूरा। टप्पा गायकी के साथ पंजाबी ताल, टप्पा ताल, पश्तों ताल, मध्यमान ताल, प्रयुक्त होता है।

राग काफी में निबद्ध एक टप्पा जो कि पंजाबी त्रिताल में है, वो इस प्रकार है-

स्थायी - *बोल सुना जानी सैंयारे।*

सानू मान्दे जान्दे फान्दे रे।।

अन्तरा - *सरफना विच आलम बेरवा।*

सुनो शौरी गले फान्दे जान्दे फान्दे रे।।

अब मैं उदाहरण के लिये टप्पा की एक स्वरलिपि प्रस्तुत कर रही हूँ-

टप्पा

राग काफी

ताल-टप्पा (सोलह मात्रा)

स्थायी- सद है जानी यानबे ए मियां।

अन्तरा- दोनों तरफ से है मुश्किल या रब तेरी दुहाई है न ताबे वस्ल दारम नताकती जुदाई।।

स्थायी

-	-	-	नीप	ग	रे	-	-ग
S	S	S	सद	है	S	S	SS
२				०			
ममग	रेग-	सS	रे	म	-	रेम	पम
SSS	SSS	जा	नी	या	S	SS	Sन
३				X			
प	-	-	-	सारेम	पधनी	ध	प
बे	S	S	S	SSए	SSS	मि	याँ
२				०			
पधप	नीधप	मपम	धपम	गमग	पमग	रेगरे	मगरे
SSS	SSS	SSS	SSS	SSS	SSS	SSS	SSS
३				X			

अन्तरा

				रे	-	-,	नीप
				S	S	S	सद
				२			
मम	पनी	सानी	सांसा	धध	धध	-ध	धनीसा
दोनों	तरफ	सेमु	श्किल	यारब	तेरी	Sद्दु	हाSS
०				३			
सानीध	नीध	प	-प	परें	सारें	निसा	धनी-प
SSS	Sई	है	Sन	ताबे	वस्ल	दारम	नताSक
X				२			
ध--ग	गमगम	पधपध	नीसांनीसा	रेगरेंसां	रेंसानिंसां	निधनिध	पधपम
तीSजु	दाSSS	SSSS	SSSS	SSSS	SSSS	SSSS	SSSS
०				३			
पमगम	गरेगरे	सारे--	नीप				
SSSS	SSSS	Sई,SS	सद्द				
X							

....

"अभिनव गीताजलि" - प० रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-2, पृ० 232, 233

नवम अध्याय

गायन शैलियों की परम्परा में ठुमरी का स्थान व विकास

(स) ठुमरी की उत्पत्ति व अर्थ

(रे) ठुमरी का इतिहास व ठुमरी के विषय

(ग) आधुनिक समय में प्रचलित ठुमरी की शैलियाँ

(म) कुछ ठुमरियों की स्वर लिपियाँ

गायन शैलियों की परम्परा में ठुमरी का स्थान व विकास

हिन्दुस्तानी संगीत की गायन शैलियों में ठुमरी गायकी एक विशेष गेय विद्या के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय हुई और हम कह सकते हैं कि आज उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में ठुमरी शब्द 'ठुमरी' के नाम से अथवा कुछ रुपान्तर के साथ मान्य है। जैसे- हिन्दी, पंजाबी और गुजराती में इसको ठुमरी कहा जाता है, जबकि सिंधि भाषा में ठुमिरी, और मराठी में ठुगरी तथा ठुंबरी, बांगला में ठुंग्रि इत्यादि। किन्तु यदि हम ठुमरी शब्द का मूल इतिहास देखें तो मूलतः ब्रजभाषा से ही ठुमरी शब्द की उत्पत्ति हुई है और ये भी सत्य है कि ब्रज क्षेत्र की प्रेम और श्रृंगार-मयी कृष्णलीला और उससे सम्बन्धित कथक नृत्य से ठुमरी का ऐतिहासिक सम्बन्ध जोड़ा जाता है। ठुमरी की पुरानी रचनायें भी ब्रजभाषा में मिलती हैं।

ठुमरी की उत्पत्ति व अर्थ :-

ख्याल के समान ही ठुमरी की उत्पत्ति और उसके अर्थ के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। "श्री मुहम्मद इस्माइल" का ठुमरी का उत्पत्ति और शब्द व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कथन है, कि ठुमरी का आविष्कार ग्वालियर के राजा मानसिंह तँवर (1486ई0) के द्वारा हुआ। कहते हैं एक बार भैरवी गाते समय राजा मानसिंह तँवर ने गलती से शुद्ध रे लगा दिया। विवादी स्वर के प्रयोग से राग अशुद्ध तो हो गया किन्तु रोचक व कर्णमधुर होने से राग की रंजकता बढ़ गई। बाद में उन्होंने भैरवी में तीव्र म तथा क्रमशः अन्यान्य स्वरों का प्रयोग करते हुये कुछ अन्य रागों में भी

ऐसे प्रयोग किये। ऐसे रागों की मूल स्वरूप से भिन्न रखने के लिये लोगों ने उन रागों के साथ 'तँवरी' विशेषण लगा दिया जैसे- तँवरी भैरवी, तँवरी खमाज इत्यादि और यही 'तँवरी' शब्द बाद में बिगड़कर 'ठुमरी' हो गया।[1]

किन्तु तत्कालीन अथवा परवर्ती सत्रहवीं शताब्दी तक के संगीत ग्रन्थों में वर्णित भैरवी के स्वर आज के आसावरी अर्थात् नटभैरवी के स्वरों के समान थे। अतः शुद्ध रे पहले से ही विद्यमान था। अतएव तत्कालीन भैरवी में विवादी स्वर के रूप में रे के प्रयोग की बात भ्रममूलक है। दूसरी बात राजा मानसिंह तँवर कृत 'मानकुतूहल' ग्रन्थ के फकीरुल्लाह द्वारा किये गये फारसी अनुवाद 'रागदर्पण' में तँवरी का कहीं उल्लेख नहीं है। अत: तँवरी का ठुमरी के रूप में अपभ्रंश होना अस्वाभाविक और शब्द विकास के नियमों के प्रतिकूल है।

स्वर्गीय आचार्य कैलाश चन्द्रदेव बृहस्पति के मतानुसार, ठुमरी शब्द में 'ठुम' और 'री' इन दो अंशों का योग है। श्री सुनील कुमार बोस के विचारानुसार 'ठुम' और 'री' इन दो शब्दों के योग से 'ठुमरी' शब्द बना है। 'ठुम' शब्द ठुमकत चाल अर्थात् 'राधा जी की चाल' और 'री' शब्द 'रिझावत' अर्थात् भगवान कृष्ण के मन को रिझाने की ओर इंगित करता है। अतः 'ठुमरी' शब्द में राधा के ठुमक कर चलते हुये कृष्ण के मन रिझाने की अभिव्यंजना है।

प्रसिद्ध ठुमरी गायक स्वर्गीय गिरिजाशंकर चक्रवर्ती के मतानुसार, 'ठुमरी' शब्द की व्युत्पत्ति 'ठुमक' और 'रिझाना' से हुई है।। ठुमक 'लय' का और 'रिझाना' अर्थभाव का घोतक होने के कारण ठुमरी शब्द 'लयकारी' और 'भावाभिव्यंजना' दोनों को व्यक्त करता है।

---

1. डॉ0 शत्रुघ्न शुक्ल - "ठुमरी की उत्पत्ति, विकास व शैलियाँ"

स्वर्गीय चन्द्रशेखर पन्त के मतानुसार, 'ठुम' और 'री' शब्दों के योग से निर्मित ठुमरी शब्द 'नृत्य के पद संचालन' 'ठसक भरी गर्वीली चाल' को व्यक्त करता है।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी में बुरहानपुर के सुप्रसिद्ध सूफी सन्त शेख बहाउद्दीन बाजन (1388ई0 व मृत्यु 1506ई0) के 'दक्खिनी हिन्दी की काव्य रचनाएं' में 'ठुमके' और पंद्रहवीं शताब्दी के गुजराती कृष्ण भक्त वैष्णव कवि नरसिंह मेहता के "रासहस्रपदी" के गेय पदों में नृत्यवाचक 'ठम' 'ठमके' 'ठमकावे' इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। सत्रहवीं शताब्दी में फकीरुल्लाह कृत 'रागदर्पण' ग्रन्थ में 'बरखा' धुन या राग को ठुमरी कहा गया है।

अतएव ठुमरी शब्द की व्युत्पत्ति और प्रचलन का आरम्भ लगभग पंद्रहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के बीच कहीं माना जा सकता है। अत: निष्कर्ष के रूप में भारतीय संगीत में ठुमरी शब्द प्राय: चार सौ वर्षों से अवश्य प्रचलित है। मूलत: यह नृत्य-गीतों के लिये व्यवहृत होता था। कालान्तर में नृत्य से पृथक होकर गीत की विशेष विधा के रूप में ठुमरी का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ और आगे चलकर उसकी कई गान शैलियाँ भी विकसित हुई। वर्तमान ठुमरी शब्द का यही अर्थ साधारण जनसमाज में परिचित व प्रचलित हैं।

सामान्य धारणानुसार, उन्नीसवीं शताब्दी में अवध के शासक वाजिद अली शाह के समय लखनऊ दरबार में ठुमरी गान शुरू हुआ। वाजिद अली शाह का जन्म सन् 1822 ई0 में हुआ था और वे अवध की राजगद्दी पर सन् 1847ई0 में बैठे, परन्तु अंग्रेजों ने सन् 1856ई0 में उन्हें राज्य छोड़ने को विवश किया। सन् 1887ई0 में उनकी मृत्य हो गई। नवाब वाजिद अली शाह का ठुमरी क्षेत्र में विशेष योगदान रहा। उनके समय में लखनऊ में ठुमरी खूब फली

फूली। अत: सामान्य धारणा बन गई कि वाजिद अली शाह ही ठुमरी के आविष्कर्ता थे। डॉ0 सुशील कुमार चौबे के मतानुसार, लखनऊ के उस्ताद सादिक अली खाँ ठुमरी के अन्वेषक माने जाते हैं।

ठुमरी का सम्बन्ध लखनऊ से है, जहाँ यह एक सुकुमार कला के रूप में विकसित हुई। इसके पूर्व संगीत के विकास में ठुमरी का अस्तित्व किसी अविकसित गीत भेद के रूप में था। निस्सन्देह वाजिद अली शाह और उस्ताद सादिक अली खाँ ठुमरी के प्रमुख उन्नायकों में से थे किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि उनके पहले ही सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में ठुमरी का अस्तित्व लोकप्रिय गीत भेद के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। कैप्टेन एन0 ऑगस्टस विलर्ड, ने ठुमरी को ब्रजभाषा की मिश्रित बोली का गीत बताया है। जिसका व्यवहार वाजिद अली शाह के शैशव और सादिक अली खाँ के यौवन काल के समय में ही होता था।[1]

जोधपुर के महाराजा मानसिंह रसराज (1803-1843ई0) और किशनगढ़ के महाराज जवान सिंह ब्रजराज (1828ई0) तथा नगधर कृत ठुमरियों से यह यह ज्ञात होता है कि ठुमरी, ख्याल व टप्पा के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अवश्य होना चाहिए। मानसिंह कृत एक ठुमरी का उदाहरण इस प्रकार है-

"राग कालिंगड़ो ठुमरी, आड़ो त्रितालो
अलबेले चंपा चीर में। असताई
बिजली से चमके पियारी जी रो
पियरी घटा की भीर में।"

---

1 कैप्टैन एन0 ऑगस्टस विलर्ड द्वारा लिखित पुस्तक 'ए ट्रीटिज़ ऑन दि म्यूजिक ऑफ हिन्दुस्तान' (1834ई0) में वर्णित

कालिंगड़ा राग और त्रिताल में आज भी ठुमरियाँ गाई जाती हैं। हकीम मुहम्मद करम इमाम ने सन् 1850ई0 के लगभग उर्दू भाषा में 'मादनुल मुसीकी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि सितार वादक गुलाम रज़ा द्वारा आविष्कृत सितार का यह बाज़ मूलत: त्रिताल मध्यलय की ठुमरियों पर आधारित था, जो आगे चलकर पूरब बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुलाम रज़ा के बारे में अनुमान है कि वे लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला (सन् 1775 से 1797ई0) तक के समकालीन थे। अत: अनुमान है कि उस समय लखनऊ में ठुमरी का प्रचलन था।

श्रीयुत कृष्णधन बनर्जी द्वारा लिखित 'गीतसूत्रसार' नामक ग्रन्थ में उन्होंने शोरी कृत गान को ही 'टप्पा' और उससे भिन्न अन्यान्य टप्पों को ठुमरी बताकर शोरी कृत टप्पा से ठुमरी गान की रीति बहुत ही पृथक माना है। दूसरी ओर वे शोरी कृत टप्पा को और भी संक्षिप्त कर लेने से ठुमरी गान के उद्‌भव का विश्वास भी करते हैं। अत: ऐसे तथ्यों से स्पष्ट होता है कि ठुमरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके विचार स्पष्ट नहीं है।

सन् 1739ई0 में मुहम्मद शाह रंगीले के समकालीन नवाब दरग़ाह कुली ख़ाँ ने फ़ारसी भाषा में "मुरक्क़ऐ-देहली" नामक पुस्तक में 'जँगला' एक लोकप्रिय धुन का उल्लेख किया है। आज भी ठुमरी की एक लोकप्रिय धुन के रूप में 'जँगला' प्रसिद्ध हैं जिसकी गणना हिन्दुस्तानी संगीत के उपरागों में की जाती है। श्रीयुत कृष्णधन बनर्जी के अनुसार, जँगला ठुमरी की एक ऐसी विशेषता है जिसमें दो तीन रागों का संयोग होता है। अधिकतर भैरवी, खमाज, पीलू सिंध, लूम, बिहाग रागों का मिश्रण होता है। अत: मुहम्मद शाह रंगीले के युग में ठुमरी का अस्तित्व था। औरंगजेब के समय (1658-1707ई0) में कश्मीर के सूबेदार फकीरुल्लाह ने सन् 1665ई0

के लगभग "मानकुतूहल" ग्रन्थ का फारसी भाषा में "रागदर्पण" नामक ग्रन्थ का अनुवाद किया अत: "रागदर्पण" व 1675 के लगभग इब्नेफखरुद्दीन मोहम्मद कृत "तोहफ़-तुल-हिन्द" ग्रन्थों में टप्पा और ठुमरी का उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्ध में श्री राज्येश्वर मित्र के अनुसार, मिर्जा खाँ और फकीरुल्लाह दोनों के वर्णनों से ज्ञात होता है कि टप्पा और ठुमरी अधिक पुरातन गीत हैं। वास्तव में ठुमरी 'बरवा' का ही रुपान्तर था।'

भरत मत के अनुसार, श्री राग की तीसरी रागिनी के रूप में ठुमरी का उल्लेख करते हुये बताया गया है कि ठुमरी अधिकतर पूरब में गाई जाती थी। मिर्ज़ा खाँ के समय ठुमरी को संकीर्ण रागिनी मानते हुये उसमें शंकराभरण तथा मारू रागों का मिश्रण माना जाता था। भरतमत के राग रागिनी वर्गीकरण के अनुसार, ठुमरी को 'श्री' राग की प्रमुख रागिनी माना जाता था। मिर्जा खाँ के समय में प्रचलित ठुमरी और पहाड़ी रागिनियों के लक्षणों में दोनों के निर्माणतत्व एक जैसे होने के कारण ऐसा लगता है कि उस समय पहाड़ी और ठुमरी सम्भवत: परस्पर पर्यायवाची रहे होंगे। इसका संकेत पुण्डरीक विट्ठल कृत "रागमाला" और पं० दामोदर कृत "संगीत दर्पण" में मिलता है। फकीरुल्लाह का ठुमरी से आशय बरवा धुन और मिर्ज़ा खाँ का पहाड़ी रागिनी से होने के कारण सम्भवत: यह हो सकता है कि फकीरुल्लाह के समय जनसाधारण में ठुमरी के रूप में बरवा धुन गाये जाने का प्रचलन रहा होगा और कुछ वर्षों बाद धीरे-धीरे जनरुचि का झुकाव पहाड़ी ठुमरी के प्रति बढ़ जाने के कारण मिर्जा खाँ के समय तक समाज में पहाढ़ी ठुमरी बहुत लोकप्रिय और प्रचलित हो गई होगी।

निष्कर्षत: औरंगजेब कालीन उत्तर भारत में बरवा और पहाड़ी की धुन में ठुमरी गाये जाने का प्रचलन था। 'रागदर्पण' में बरवा

धुन (ठुमरी) की काफी से बहुत समानता भी है। वर्तमान समय में बसन्त ऋतु में गाये जाने वाले ठुमरी शैली के बसन्त, होली, या चाँचर इत्यादि श्रृंगार रसात्मक गीत भी अधिकतर काफी राग में ही गाये जाते हैं।

चर्चरी और रास से ठुमरी का उद्‌गम :–

चर्चरी का गान और नृत्य मूलतः रास से सम्बद्ध है। चौदहवीं शताब्दी में आंध्र के महाराजा 'वेम' ने चर्चरी को रासक का एक भेद बताया है। उनका कथन है–

"रासकस्य श्रभेदास्तु रासकं नाट्यरासकं चर्चरीत्रितयः प्रोक्ताः।"

इसी प्रकार तेरहवीं शताब्दी (सन् 1238ई0) में उपदेश रसायन रास के वृत्तिकार जिनपालोपाध्याय के अनुसार, चर्चरी और रासक एक ही हैं–

"चर्चरी रासकप्रख्ये प्रबन्धे प्राकृते किल।"

अतएव चर्चरी और रासक की सम्बद्धता से ठुमरी गान का मूल उद्‌गम रासक तक पहुँचता है। 'संगीत रत्नाकर' व 'संगीत राज' में वर्णित चच्चरी प्रबंध के लक्षणों का विश्लेषण करने पर उनमें और आज के चाँचर (होली) व ठुमरी के लक्षणों में बहुत समानता दिखाई पड़ती है। चच्चरी गान की अनेकरूपता या स्वाभाविक उन्मुक्तता उसे लोकसंगीत की परम्परा से सम्बद्ध करती है। आज भी चाँचर (होली) और ठुमरी गान की प्रकृति में लोकसंगीत की स्वाभाविक उन्मुक्तता के दर्शन होते हैं। तत्कालीन चच्चरी प्रबंध का गान बसंतोत्सव पर होता था। ब्रज के गावों में बसंतोत्सव तथा होली के पास गाये जाने वाले गीतों में ठुमरी की भी गणना होती है। 'संगीत रत्नाकर' में चच्चरी प्रबन्ध को चच्चरी ताल में गाये

जाने का उल्लेख है। आज भी चाँचर (होली) और ठुमरी चाँचर ताल में गाये जाते हैं।

'श्रीमद्भागवत' के दशम् स्कंध में वर्णित 'रास' कृष्णभक्त वैष्णवों का सबसे पड़ा प्रेरणा स्रोत है। 29 से लेकर 33 वें अध्याय अर्थात् पाँच अध्यायों जिन्हें 'रास पंचाध्यायी' कहा जाता है, के आधार पर ही सोलहवीं शताब्दी में कृष्णभक्त संतों द्वारा रासलीला का पुनरुत्थान किया गया, जिसमें वर्णित कृष्णचरित विषयक कथावस्तु से उत्तर भारतीय संगीत के ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि गीत-प्रभेद और कथक नृत्य काफी हद तक प्रभावित है। राससंगीत सम्बन्धी प्राचीन और मध्यकालीन प्राप्त तथ्यों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं-

(1) राससंगीत का विकास रासनृत्य के आधार पर हुआ अतएव रास श्रृंगारिक गीत है। रास की मूलधारा लोकसंगीत से निकली है। जनभाषा का व्यवहार होता है।

(2) रास देशी संगीत का एक भेद है। रासगीतों का विषय कृष्णलीला से अनुप्राणित रहा है। लोकसंगीत के प्रचलित धुनों व राग रागिनियों का व्यवहार होता है। आदिताकाल का प्रयोग होता है। गान के साथ भावाभिनय होता है।

रासगीतों की ये सभी विशेषतायें ठुमरी गान में पर्याप्त दिखाई पड़ती है। अतएव इनके आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ठुमरी गाने की परम्परा मूलतः रासगीतों की धारा से आई है।

वर्तमान समय में चाँचर (होली) ठुमरी और दादरा आदि गीतों का अन्तर्भाव ठुमरी शैली में होता है। 'रत्नावली' व 'कर्पूरमंजरी' जैसे संस्कृत नाटकों में वर्णित चर्चरी गान के साथ नर्तकियों द्वारा

किये जाने वाले नृत्याभिनय की परम्परा भी आधुनिक युग में वारांगनाओं द्वारा चाँचर, ठुमरी और दादरा आदि ठुमरी शैली के गीतों के साथ किये जाने वाले नृत्य व भाव प्रदर्शन में दिखाई पड़ती है। अतएव इसके आधार पर ठुमरी गान चर्चरी गीतों की विकास श्रृंखला में आता है। ठुमरी और चर्चरी की तुलना के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते है-

(1) ठुमरी की व्युत्तपत्ति के मूल में पैरों की चाल को अभिव्यक्त करने वाला शब्द ठुम या ठुमक है। जिसका अर्थ व विस्तार नृत्य के रूप में हुआ। नृत्य के साथ गाया जाने वाला गीत ही ठुमरी है। संस्कृत भाषा के 'चर' धातु जिसका अर्थ चलना है, से चर्चरी धातु की व्युत्पत्ति हुई है। अनुमानतः पैरों की गति लय के कारण ही चर्चरी शब्द का अर्थविस्तार नृत्य विशेष के रूप में हुआ और नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों को चर्चरी कहा गया। इस प्रकार 'चर्चरी' और 'ठुमरी' दोनों शब्दों के मूल में पैरों की चाल या गीत का अर्थ नीहित है और दोनों का ही नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत के रूप में विस्तार हुआ। अतएव शब्दार्थ व व्युत्पत्ति की दृष्टि से चर्चरी और ठुमरी में बहुत समानता है।

(2) ठुमरी देशी संगीत का एक भेद है। चर्चरी भी देशी संगीत का एक भेद था।

(3) ठुमरी शब्द गीत और ताल विशेष के अर्थ में व्यवहृत होता है। चर्चरी शब्द भी नृत्य, गीत, छन्द, लय और ताल आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आज भी चाँचर शब्द विशिष्ट लोकनृत्य ठुमरी शैली के गीत और ताल विशेष में व्यवहृत होता है।

(4) ठुमरी गान के साथ नृत्य व भावाभिनय प्रदर्शन होता था। चर्चरी गान के साथ भी नृत्य और भावाभिनय प्रदर्शन होता था।

(5) ठुमरी के गान नृत्य और भावाभिनय में श्रृंगार रस की प्रधानता है। चर्चरी में भी ऐसा ही था।

(6) ठुमरी का गान और नृत्य मूलत: स्त्रीप्रधान माना जाता है। आज भी बनारस ठुमरी गान के लिये प्रसिद्ध है। चर्चरी गान और नृत्य प्रदर्शन में भी स्त्रियों की प्रधानता थी। 'सुपासनाहचरिय' नामक प्राकृत ग्रन्थ में वर्णित है कि वाराणसी नगर की गायिका, नर्तकियाँ अपने चर्चरी गान के लिये सुप्रसिद्ध थीं।

(7) ठुमरी विद्या में ठुमरी, दादरा, होली आदि विभिन्न प्रकार के गीतों का समावेश है। ये विभिन्न तालों में गाये जाते हैं। चर्चरी में भी विभिन्न गीतों का समावेश था तथा विभिन्न तालों में गाये जाते थे।

(8) ठुमरी गान पर लोक शैली का प्रभाव दिखायी पड़ता है। चर्चरी गान भी लोक शैली पर आधारित था।

(9) ठुमरी सभी ऋतुओं में आनन्दपूर्ण अवसरों पर गाई जाती थी। चर्चरी गान विशेषतया बसन्त ऋतु व होली के अवसर पर होता था। 'संगीतराज' में चर्चरी प्रबन्ध को बसंतादि महोत्सव पर गाये जाने का वर्णन है। अत: स्पष्ट है कि चर्चरी बसन्त के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर गाई जाती थी।

(10) ठुमरी गान में काफी, बरवा, सिन्दूरा धानी आदि रागों का प्रयोग होता है। ठुमरी के आरम्भिक स्वरूप में भी इन स्वरावलियों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। चर्चरी गीतों में

बसन्त अर्थात् देशीहिंडोल या पूर्णहिंडोल और हिंडोल आदि रागों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। इन रागों की स्वरावलियाँ क्रमशः वर्तमान काफ़ी और धानी इत्यादि रागों की स्वरावलियों के लगभग समान प्रतीत होती है।

(11) ठुमरी गीतों में विशेषतया ब्रजभाषा का प्रयोग होता है। चर्चरी गीतों की रचना प्राकृत में होती थी जो तत्कालीन जनभाषा थी।

(12) ठुमरी रास संगीत की गीतविधा सिद्ध होती है। चर्चरी भी रास संगीत की परम्परा का गीत भेद है।

(13) ठुमरी और होली के अन्तिम भाग में कहरवा ताल की लग्गी का प्रयोग चतुरावर्तनीय रूप में होता है। ठुमरी के एक भेद दादरा गीत में भी कहरवा ताल का प्रयोग किया जाता है। चर्चरी नृत्य में रासताल और उसके चतुरावर्तनीय रूप प्रयोग में लाये जाते हैं। वर्तमान चतुर्मात्रिक कहरवाताल और प्राचीन रासताल एक जैसे ही थे।

(14) ठुमरी के एक भेद 'दादरा' में दादरा ताल का प्रयोग होता है चर्चरी (चच्चरी) गान के भेद में 'चण्डनिः सारुक' अर्थात् 'क्रीडाताल' का प्रयोग होता था, जो स्वरूप और वजन की दृष्टि से आधुनिक दादरा ताल के समान था।

(15) ठुमरी और उसके भेद 'होली' में चाँचर (जत), त्रिताल, सितारखानी, पंजाबी इत्यादि सोलह मात्राओं वाले तालों का प्रयोग अधिक किया जाता है। चर्चरी गीतों में भी सोलह मात्रिक छन्द और ताल का प्रयोग होता था।

(16) ठुमरी में प्रयुक्त तालों और लग्गी के ठेकों की समता व क्रमिक विकास का आभास चर्चरी गान के भेद में वर्णित 'ते ति गि ध' जैसे शुष्काक्षरों से मिलता है।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर चर्चरी और ठुमरी के लक्षणों में अनेक समानतायें दृष्टिगोचर होती हैं। अत: विदित होता है कि वर्तमान ठुमरी की भाँति ही चर्चरी भी नृत्य और भावाभिनय सहित गाई जाने वाली, प्राचीन और मध्यकाल की ऐसी श्रृंगारपूर्ण गीत विधा थी, जो राससंगीत से उद्‌भूत होकर नाट्यरासक के माध्यम से विकसित होकर लोक में प्रचलित हुई। ये चर्चरी गीत प्राकृत और अपभृंश से होते हुये वर्तमान लोकभाषाओं के चाँचर गीतों तक पहुँची है, जिनमें ब्रजभाषा के चाँचरि गीतों का प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार चाँचर और ठुमरी गान में कोइ विभेद नहीं है। अत: गाँवों में प्राय: चाँचर को ठुमरी और ठुमरी को चाँचर कह दिया जाता है। स्वर रचना और शैली की समानता के कारण चाँचर (होली) को ठुमरी गान का एक भेद माना जाता है। किन्तु कालक्रमानुसार चाँचर या चाँचरि शब्द ठुमरी से अधिक पुराना है। चाँचर में बसन्त और होली के मुख्य विषय कृष्णलीला व ब्रज ही रहे हैं।

ब्रज की होली या चाँचरि गीतों का प्रचार उ0प्र0, सहारनपुर, मुजफ्फरपुर नगर, मेरठ, झांसी, रामपुर, फर्रूखाबाद, इटावा, कानपुर आदि पश्चिमी क्षेत्र, बुंदेल, कुमायुँ, अल्मोड़ा, नैनीताल, लखनऊ, अयोध्या, इलाहाबाद जौनपुर, गोरखपुर, देवरिया, बनारस और बिहार में व्यापक रूप से हुआ।

कालान्तर में बसन्त और होलिकोत्सव जैसे विशिष्ट अवसरों पर ही चर्चरी गाई जाती है। अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले

चर्चरी गीतों से ठुमरी का जन्म हुआ है हो ऐसा सम्भव है तथा आगे चलकर ब्रजभाषा में गाये जाने वाले चर्चरी गीतों को नृत्य व भावाभिनय के साथ गाये जाने के कारण ब्रज और उसके आस-पास क्षेत्रों में ठुमरी कहने की प्रथा चल पड़ी है।

इस प्रकार चाँचर-ताल में निबद्ध एक जैसी रचनाओं में एक होली (चाँचर) जिसका विषय बसंत व होली तथा व अन्य अवसरों के लिये ठुमरी गाना उपरोक्त मत की पुष्टि करता है। परिस्थितिवश ठुमरी की लोक प्रियता इन गीतों की शैली विशेष को ठुमरी शैली के नाम से ही सम्बोधित किया जाने लगा, इसलिये आज चाँचर (होली) गान को ठुमरी के अन्तर्गत् ठुमरी के एक प्रभेद के रूप में माना जाता है।

आज भी भारत के विभिन्न प्रादेशिक व क्षेत्रीय संगीत में श्रृंगारात्मक नृत्य व गीत विधाओं का प्रचलन व विकास वहाँ के निवासियों की रूचि, भाषा, स्वभाव व परम्परागत संस्कारों के अनुसार, हुआ है। कई ऐसी गान विधायें हैं जो ठुमरी से बहुत अधिक साम्यता रखती हैं जैसे चैती, कजरी, झूमर, पुरबी, लेद (बुंदेलखण्ड), नाटी (कांगड़ा-हिमाचल प्रदेश) धमाल व मांड (राजस्थान) हीर, माहिया व टप्पा (पंजाब) लावणी (महाराष्ट्) जावली (महाराष्ट्र व दक्षिण भारत) पदम् (तमिलनाडु) झावरा (नेपाल), मुल्तानी काफ़ी (मुल्तान), धमाली व धमाइल (सिलहट-बांगला देश) काफ़ी, सिंधी-काफ़ी (सिंध) इत्यादि।

ठुमरी का इतिहास :-

किसी भी कला की उपलब्धि, लोकप्रियता, प्रतिस्थापना, प्रचार-प्रसार को इतिहास के माध्यम से ही जाना जा सकता है।

अतः इस दृष्टि से ठुमरी के इतिहास का अध्ययन व पर्यवेक्षण महत्वपूर्ण है।

भारतीय जनजीवन में विभिन्न सामाजिक उत्सवों व पर्वों पर कैशिकी वृत्ति का आश्रय लेकर नृत्यगान का प्रदर्शन संगीत व्यवसायिनी अप्सराओं, वारांगनाओं, गणिकाओं और वेश्याओं द्वारा किये जाने की प्रथा रही है। अतः श्रृंगारात्मक, ललित और स्त्रियोचित विधा होने के कारण ठुमरी का गान और भावाभिनय ही मध्ययुगीन कैशिक संस्कृति का विशेष अंग रहा है। श्री सौरेन्द्र मोहन ठाकुर के अनुसार, ठुमरी का गान पहले नाचने वाली तवायफें करती थीं। उनके समय वेश्याओं द्वारा गायी गई यह ठुमरी 'हिल मिल पनियाँ' बड़ी लोकप्रिय थी।[1] श्री कृष्णधन बनजी ने भी ठुमरी को वेश्याओं से सम्बन्धित बताया है।[2] श्री लक्ष्मणदत्तात्रेय जोशी के मतानुसार, सन् 1772 में पेशवा की नौकरी में हीरा नामक एक अत्यन्त रूपवती वेश्या थी जो ठुमरी गान और भावाभिनय में अत्यन्त प्रवीण थी।[3] पं० सुदर्शनाचार्य ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य, सेनिया वंश के सुप्रसिद्ध सितारिये रहीमसेन के साथ लखनऊ में एक वेश्या की संगीत प्रतिस्पर्धा का उल्लेख किया है, जिसमें उसने 'मोरा पिया जोगिया हो गया', यह ठुमरी भाव प्रदर्शन के साथ गाई थी[4]

उपरोक्त कथनों से ज्ञात होता है कि उन्नीसवीं शताब्दी तक ठुमरी प्रमुखतया वेश्याओं द्वारा ही भाव-प्रदर्शन सहित गाई जाती रही। भारतीय समाज मुख्यतः पितृसत्तात्मक अथवा पुरुषप्रधान है। अतएव भारतीय संगीत के विभिन्न घरानों की प्रतिष्थापना वंशगत गायकों, वादकों और नर्तको के आधार पर हुई। संगीत के जो

1 Tagore, Sir S M Universal History of Music P 60-61
2 बदोपाध्याय कृष्णधन 'गीतसूत्रसार' प्रथम भाग पृ0 87
3. जोशी लक्ष्मण दत्तात्रय, 'संगीत शास्त्रकार व कलावंत याँचा इतिहास, पृ0 191
4 प0 सुदर्शनाचार्य, 'सगीत सुदर्शन' भूमिका पृ0 62, 63, 64

वैशिक घराने थे, वे मातृसत्तात्मक अथवा स्त्रीप्रधान थे। इसी कारण वे समाज मे प्रतिष्ठित न हो सके। अत: मुख्यत: वेश्याओं द्वारा गाये जाने के कारण ठुमरी के घरानों का इतिहास नहीं मिलता।

सत्रहवीं शताब्दी में लिखित 'रागदर्पण' और 'तोहफ़तुलहिंद' ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय भी ठुमरी गाने का प्रचलन था। उसके पश्चात् अठ्ठारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य वेश्याओं द्वारा नृत्याभिनय सहित ठुमरी गान का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रारम्भ में ठुमरियाँ ब्रजभाषा में गाई जाती थीं। इसका प्रमाण उन्नीसवीं शताब्दी के कैप्टन विलर्ड कृत 'ए ट्रीटिज़ ऑन दि म्यूज़िक ऑफ हिन्दुस्तान' से प्राप्त होता है। कालान्तर में उत्तर भारत में राजस्थान से लेकर उत्तर प्रदेश तक उनका व्यापक रूप से प्रचार व प्रसार हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अवध के तत्कालीन शासक वाजिद अली शाह के लखनऊ दरबार के रंगीन वातावरण में ठुमरी को, विकास प्रचार और संगीत क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने का अवसर प्राप्त हुआ। औरंगजेब के परवर्ती मुगल शासन के पराभव काल में विलासिता अधिक बढ़ने के कारण वेश्याओं के सम्पर्क और प्रभाव से शासकों की रूचि वैशिक संगीत की ओर बढ़ी। वैशिक संगीत का प्रभाव बढ़ने पर भी यह संगीत मुख्यत: शासकों के अन्त:पुर तक ही सीमित रही। राजदरबारों में ध्रुवपद गान की ही प्रधानता थी। वैशिक गान को राजदरबार में सम्मान प्राप्त न हो सका। जबकि आगे चलकर नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में इसको काफी प्रोत्साहन मिला ठुमरी के विकास में अनेक घरानेदार संगीतज्ञों का योगदान होने पर भी उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक समाज में ठुमरी का गान व भावप्रदर्शन मुख्यत: वेश्याओं द्वारा होता रहा तथा घरानेदार संगीतज्ञ उसे नीची दृष्टि से देखते रहे यद्यपि उन्होंने ठुमरी की रचना व विकास में अवश्य योग दिया व ठुमरी

की शिक्षा भी वेश्याओं को देते रहे। संगीतज्ञ बहुत समय तक ठुमरी को स्त्रियोचित और नर्तकियों की गानविधा मानते हुये उसे महफिलों में स्वयं गाना अपनी मर्यादा के विरूद्ध समझते रहे। इसी कारण बहुत समय तक ठुमरी को हेय तथा छुद्र समझकर उच्च संगीत के अन्तर्गत् उसकी गणना नहीं की गई।

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, अठ्ठारहवीं शताब्दी में अवध के नवाब आसफुद्दौला के समय वहाँ की राजधानी लखनऊ संगीत और कथक नृत्य का गढ़ बन चुकी थी।[1] उसी समय से जनसाधारण में ठुमरी गान के प्रति रूचि बढ़ने लगी थी और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ठुमरी इतनी लोकप्रिय हुई कि लखनऊ के रईसों के दिल बहलाव के लिये तत्कालीन सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलाम रज़ा सितार पर ठुमरियाँ बजाने लगे थे।[2] ठुमरी की लोकप्रियता के सम्बन्ध में कैप्टन विलर्ड का कथन है, कि ठुमरी की विधा इतनी सजीव और अद्भुत है कि उसे सुनने का आनन्द श्रोता कभी नहीं भूलता। ठुमरी का विषय ही ऐसा है कि उसे शब्दों में वर्णन करना सम्भव नहीं, उसके गीतों का चित्ताकर्षक प्रभाव, सुनकर ही अनुभव किया जा सकता है।[3]

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि वाजिद अली शाह के पूर्व ही ठुमरी का विकास और प्रचार होने लगा था। ये सभी ठुमरियाँ और होली केवल स्त्री पात्रों द्वारा ही भावाभिनय सहित गाई जाती थीं।

---

1 मुहम्मद करम इमाम, मादनुल मूसीकी पृ0 162

2. मुहम्मद करम इमाम, मादनुल मुसीकी पृ0 44-45

3 Willard captian N Augustus, A Treatise on the Music of Hindustan P 103 "The measure is lively and so peculiar it is not mistake by one has heard a few songs of this class It is useless to waste words in description which must after all prove inadequate, of a subject which will impress the mind more sensibly attention bestowed on a few songs

नवाब वाजिद अली शाह को नृत्य व अभिनय से बहुत अधिक लगाव था। अतः इसी वजह से उनके दरबार में ठुमरी को बहुत प्रोत्साहन मिला। वाजिद अली शाह स्वयं कुशल संगीतज्ञ तथा एक उत्तम गायक व वाग्गेयकार थे। उन्होंने 'अख्तर' उपनाम से अनेक सादरों, ख्यालों, ठुमरियों और उर्दू गज़लों की रचनायें कीं। भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी 'बाबुल मोरा नैहर छूटो हि जाये' इन्हीं की रचना है। नवाब वाजिद अली शाह द्वारा रचित एक ठुमरी इस प्रकार है।

ठुमरी-राग काफी (ताल-अद्धा)

स्थायी:- *"मोरी आली मैं पनियाँ कैसे जाऊँ री।*
सखी री नागर नटखट मुकुटवारौ।।
मोसों करत ढिठाई, बंसीबट जमुनातट।
पनियाँ कैसे लाऊँ री।।"

अन्तरा:- *"उझक उझक और उचक उचक झाँकै री अख्तर,*
तट पनघट बंसीवट जमुनातट, पनियाँ कैसे लाऊँ री।।"[1]

वाजिद अली शाह के प्रोत्साहन से उनके अन्तःपुर से लेकर राजदरबार तक कथक नृत्य व ठुमरी गान को प्रधानता मिली। इस प्रकार अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही ठुमरी व कथक नृत्य के प्रति लखनऊ के लोगों का झुकाव बढ़ने लगा और तत्कालीन लखनऊ का वातावरण ही नाचरंग और ठुमरी गान में डूब गया था। हकीम 'मुहम्मद करम इमाम' के कथनानुसार, उस समय ठुमरी गान की कद्र बहुत बढ़ गयी थी।[2] उसी समय आश्रयदाताओं की विलासिता व कुत्सित मनोवृत्ति की तुष्टि के लिये वेश्याओं द्वारा अश्लील ठुमरियों के गाने का प्रचलन

1. 'इश्क चमन' (पहला भाग) पृ0 6
2 मोहम्मद करम इमाम 'मादनुल मूसीकी' पृ0 162 व 163

भी बढ़ रहा था। इन्हीं सब कारणों से आगे चलकर अवध का राजनीतिक पतन हुआ। वाजिद अली शाह के समय में लखनऊ में ठुमरी गाने वाली अनेक उत्तम वेश्यायें थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं- घूमन, हुसैनी, लज़्ज़त बख्श इत्यादि।[1] आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक देश के विभिन्न भागों में अनेक वेश्यायें ठुमरी गान तथा भावाभिनय में निष्णात हुईं। उनके नाम इस प्रकार हैं- पीरबाई, छटाँकी, चुन्ना, जोहराबाई, बन्नो, गुलाब, बावली, ततैया, नर्मदा, कृष्णा, जुल्फी, चन्द्रावती, गौहरजान, मंगू, विद्याधरी, मोतीबाई, मलिकाजान, इंदिरा, नूरजहाँ, लक्ष्मी, केसरबाई, एवं सिद्धेश्वरी[2] इत्यादि।

उत्तर भारतीय वैशिक समाज में अनेक संगीतज्ञों ने भी आश्रयदाताओं को प्रसन्न व प्रभावित करने के लिये महफ़िलों में ठुमरी गाना आरम्भ कर दिया। लखनऊ दरबार के सुप्रसिद्ध गायक उस्ताद सादिक अली खाँ को कुछ लोग ठुमरी गान का सर्वप्रथम प्रवर्तक मानते हैं। इस प्रकार ठुमरी गाने वाले पुरुष गायकों में वे सबसे अग्रणी थे। स्वर्गीय गिरिजाशंकर चक्रवर्ती का कथन है कि वाजिद अली शाह के दरबार में ठुमरी गान का प्रचलन सर्वप्रथम उस्ताद सादिक अली खाँ ने किया।[3] उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक के अनेक ठुमरिकारों और ठुमरी गायक-गायिकाओं ने उस्ताद सादिक अली खाँ से ठुमरी सीखी वाजिद अली शाह व मिर्ज़ा बाला क़दर (नवाब चौलक्खी) उर्फ कदर पिया ने भी उनसे ठुमरी गायन सीखा था। सुप्रसिद्ध ठुमरीकार ग्वालियर राजघराने के भैया गनपतराव, अकबरपुर रियासत के राजा ठुमरी

---

1. वही पुस्तक पृ0 41, 43
2. (क) जोशी, लक्षमण, दत्तात्रेय, 'सगीत शास्त्रकार व कलावत यॉचा इतिहास
   (ख) नागर, अमृतलाल, 'ये कोठे वालियाँ,' पृ0 153-156
3. चक्रवर्ती, श्री गिरिजाशकर, स्वर्गीय भइया साहेब गनपतराव 'सगीत विज्ञान प्रवेशिक' (मासिक पत्रिका) 11 वर्ष, सप्तम सख्याा, ब0 1341 साल (सन् 1934)

मर्मज्ञ ठाकुर नवाब अली खाँ तथा हैदरजान व नज़्मा जैसी गायिकाओं ने इनका शिष्यत्व प्राप्त किया था।[1] इस प्रकार ठुमरी को अपनाने वाले पुरुष संगीतकारों में सर्वप्रथम गायक उस्ताद सादिक अली खाँ और नर्तक महाराज बिंदादीन थे। स्वर्गीय शंभु महाराज के कथनानुसार, उनके घराने में ठुमरी का प्रारम्भ सर्वप्रथम बिंदादीन जी से हुआ।

आगे चलकर ठुमरी का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ। उसके विकास में अनेक लोगों ने योगदान दिया उनके नाम मुख्य रूप से इस प्रकार हैं:- लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह, उनके दरबारी गायक क़व्वाल बच्चे, उस्ताद सादिक अली खाँ, लखनऊ घराने के कथक नर्तक महाराज बिंदादीन इसके अतिरिक्त वेश्याओं, गायकों, सितारवादकों के अलावा भांड ने भी इसे अपनाया उस समय सितार स्वतन्त्र वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित था। सितार में टुमरियों का प्रयोग सर्वप्रथम आसफुद्दौला कालीन लखनऊ के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलाम रज़ा ने किया। उन्होंने त्रिताल मध्यलय की ठुमरियों पर आधारित गतें बजाईं। कालान्तर में गुलाम रजा को इन गतों का आविष्कर्त्ता मानते हुये उनके नाम पर 'रज़ाखानी गत' और इनकी शैली या बाज़ को रज़ाखानी बाज़ कहा जाने लगा।

भांड भी महफिलों में गान, नृत्य व अभिनय प्रस्तुत करते थे। ये प्रायः मुसलमान थे। गुप्तकालीन चतुर्भाणी ग्रन्थ में वर्णित है, कि भाँडों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और ये वैशिक समाज से सम्बन्धित थे।[2] उन्नीसवीं शती से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक लखनऊ के अनेक भांड के नाम प्राप्त होते जो गान व नृत्याभिनय में कुशल हो गये थे वे हैं- रमज़ानी, हुसैनबख्श, कायमअली, मिर्ज़ा

---

1 .शत्रुघ्न शुक्ल पृ0 144

2 Apte V S The Practical Sanskrit English Dictionary P 711

वहीद काश्मीरी, मुहम्मदबख्श (कन्हैया), राहत अली, अजमत अली आदि। मुहम्मद बख्श के भाई चांदमियाँ उत्तम ठुमरी गायक व उच्च कोटि के वाग्गेयकार थे। चांद या 'चांद पिया' उपनाम से युक्त उनकी अनेक ठुमरियां प्रसिद्ध है।

लखनऊ में ठुमरी गान का अत्यधिक विकास हुआ। परिणामस्वरूप तत्कालीन भारत में लखनऊ को ठुमरी गान का केन्द्र समझा जाने लगा। देश के विभिन्न भागों के लोगों ने आकर यहां ठुमरी सीखी। ठुमरी का काव्य ब्रजभाषा, अवधी तथा उर्दू भाषाओं पर आधारित था। ठुमरी की शैली नवाबों की विलासिता से प्रभावित थी। ठुमरी के इस विशिष्ट स्वरूप को 'लखनऊ की ठुमरी' या 'लखनवी ठुमरी' कहा जाने लगा। आरम्भ से ठुमरियों को मध्यलय में ही गाये जाने की प्रथा थी। वयोवृद्ध संगीतज्ञों के मतानुसार वर्तमान शताब्दी से पूर्व ठुमरियाँ प्राय: मध्य लय में ही गायी जाती थीं। त्रिताल मध्यलय में निबद्ध ठुमरियाँ तत्तकालीन लखनऊ में अत्यधिक लोकप्रिय थी। तत्कालीन लखनवी ठुमरी की रचना शैली में दो धारायें दृष्टिगोचर होती है- पहली नृत्यप्रधान ठुमरी, दूसरी गानप्रधान ठुमरी। नृत्यप्रधान ठुमरी गाने वालों में महाराज बिंदादीन, चांद पिया, और बेगम आलम आरा आलम, नवाब वाजिद अली शाह का नाम उल्लेखनीय है। सादिक अली खाँ, वजीर मिर्ज़ा, बाला क़दर 'कदरपिया' इत्यादि ठुमरीकार गानप्रधान ठुमरी गाते थे।

उस समय गत्यात्मकता और भावाभिव्यंजना के आधार पर भी ठुमरियों के दो भेद थे- 1. बोलबाँट 2. बोलबनाव की ठुमरी, बोलबाँट की ठुमरी गतिप्रधान है तथा बोलबनाव की ठुमरी भावप्रधान है। शब्दो व स्वरों की संयोजना द्वारा गीत में वैचित्य व चमत्कार उत्पन्न करना बोलबाँट की ठुमरी की विशेषता है। इसे लयबाँट

अथवा बंदिशी ठुमरी भी कहते हैं। बोलबनाव ठुमरी की विशेषता गीत के शब्दों को भाव व अभिनय से सजाना है।

सितारवादकों ने सितार में बोल का अभाव व लयकारी की प्रधानता के कारण लयबाँट की ठुमरियों की धुनों को गतों के रूप में अपनाया तथा गायक गायिकाओं ने गानप्रधान ठुमरी के अन्तर्गत्, बोलबाँट की ठुमरियों में बोलों की विभिन्न लयकारी और बोलबनाव की ठुमरियों में बोलों में निहित भावों को स्वर सन्निवेश तथा काकु के संयुक्त प्रयोग से अभिव्यक्त करने की कला को विकसित किया। इसके अतिरिक्त गान प्रधान ठुमरी में ठुमरी के विशेषज्ञों ने तबले से नोंझोंक करने वाली द्रुत लय की चमत्कारपूर्ण बोलबाँट की ठुमरियों का विकास किया। इस प्रकार मध्यलय के साथ-साथ द्रुत लय की ठुमरियों का प्रचलन भी बढ़ा। तालों में त्रिताल व उसके भेद सितारखानी और एकताल का प्रयोग मध्य व द्रुत लय में किया गया। मध्य व द्रुत के अतिरिक्त धीरे-धीरे विलम्बित लय में भी गाने का प्रचलन बढ़ा। इसका कारण स्वरासन्निवेशों द्वारा बोलों को सजाकार भावाभिव्यंजित करने के प्रति मोह था। विलम्बित लय की ठुमरियां दीपचन्दी, जत और पंजाबी तालों में गाई जाती रही हैं। आगे चलकर बोलबाँट की ठुमरियों को पछाही ठुमरी भी कहा जाने लगा। ये ठुमरियां ब्रज, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में अधिक प्रचलित रहीं। पूर्वी भारत के बनारस गया, पटना व कलकत्ता आदि स्थानों में भी ठुमरी का प्रचलन था।

बोलबनाव की ठुमरी का प्रचलन विशेषकर लखनऊ, पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार की ओर अधिक होने के कारण कालान्तर में पूरब अंग की ठुमरी कहा जाने लगा।

तत्कालीन ग्वालियर नरेश जयाजीराव के द्वितीय पुत्र भैया गनपत राव द्वारा ठुमरी के एक नये युग काक सूत्रपात हुआ। इनका

(गणपत राव सिंधिया) का जन्म वर्ष 1852 में ग्वालियर में हुआ था। इनको संगीत के आनुवंशिक गुण मातृपक्ष से मिले थे। इन्होंने सुप्रसिद्ध बीनकार बंदेअली गाना और बीन, उस्ताद सादिक अली खाँ से लखनऊ में ठुमरी तथा तत्कालीन विख्यात संगीतज्ञों से ध्रुवपद व ख्याल की शिक्षा ग्रहण की। भैया गनपत राव ने 'सुघरपिया' उपनाम से अनेक उत्तम ठुमरियों की रचनायें की। उन्होंने पूरब अंग की ठुमरी का प्रचार-प्रसार किया। भैया गनपत राव के शिष्य मौजुद्दीन खाँ ने भी ठुमरी गायन में अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त की। षड्जसंक्रमण या षड्ज परिवर्तन (एक में अनेक रागों की छटा) की यह विधि लखनवी ठुमरी की अन्यतम विशेषता थी।

मौजुद्दीन खाँ बनारस के अप्रतिम ठुमरी गायक थे। बनारस मे भी वेश्याओं की ठुमरी अत्यधिक प्रसिद्ध रही। बनारस की ठुमरी इतनी लोकप्रिय हुई कि कालान्तर में उसे बनारसी शैली की ठुमरी या बनारसी ठुमरी कहा जाने लगा। वर्तमान समय में बनारसी शैली की ठुमरी प्रसिद्ध है किन्तु श्री कृष्णधन बनर्जी एवं सर सौरेन्द्रमोहन ठाकुर के मतानुसार, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बनारसी शैली की ठुमरी प्रकाश में नहीं आई थी।[1] अतएव बनारस में ठुमरी गान का प्रचलन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुआ। ठुमरी गान की बनारसी शैली का स्वतन्त्र रूप से विकास लगभग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शुरू हुआ।

इस प्रकार कालांतर में ठुमरी की बनारसी शैली की नींव उस्ताद सादिक अली, मौजुद्दीन खाँ, भैया गनपत राव, जगदीप मिश्र, महाराज बिंदादीन व उनके परिवार के सदस्यों तथा उनके शिष्य-शिष्याओं के योगदान से पड़ी। धीरे-धीरे बनारसी ठुमरी में

---

1. श्री युत कृष्णधन बनर्जी कृत 'गीतसूत्रसार' व सौरेन्द्र मोहन कृत 'युनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक' का प्रथम सस्करण 1896

उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों की बोलियों, लोकगीतों व लोकधुनों का भी काफी प्रभाव पड़ा। अतएव बोलबनाव की ठुमरी में ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि बोलियों तथा कजरी, सावन चैती, झूमर, बिरहा, पूरबी, घाटो आदि लोकगीतों व उनकी धूनों का अत्यधिक प्रभाव रहा। यही सब विशेषतायें आगे चलकर 'बनारसी ठुमरी' के नाम से प्रतिष्ठित हुई।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'पूरब अंग की ठुमरी' की दो शाखायें परिलक्षित होती हैं- 1. लखनवी ठुमरी 2. बनारसी ठुमरी। धीरे-धीरे उत्तर भारतीय संगीत में 'बनारसी ठुमरी' का प्रचलन अत्यधिक बढ़ जाने से लखनवी ठुमरी का केवल नाम ही शेष रह गया है।

बनारसी ठुमरी के गायको में आजमगढ़ के जगदीप मिश्र बनारस के मौजुद्दीन खाँ बड़े रामदास जी, मिठाईलाल, रामसेवक, सिया जी, श्री चन्द्र मिश्र, धीरेन बाबू, इलाहाबाद के पं० भोलानथा भट्ट और वर्तमान समय में बनारस के श्री महादेव मिश्र, स्वर्गीय रामाजी एवं गया के स्वर्गीय रामू जी का नाम उल्लेखनीय है। पुरानी गायिकाओं में बनारस की विद्याधरी देवी, राजेश्वरी देवी, चंपाबाई, टामीबाई, हुस्ना, मैना, सरस्वती बाई, चंद्रा बाई, शिवकुँवरि, भागीरथी, शहजादी, इलाहाबाद की जानकीदेवी, पटना की जोहरा जान, आगरे की मलिका जान, कोलकाता की गौहर जान का नाम वर्णित है। इसके अतिरिक्त बनारस की काशीबाई, कमलेश्वरी, दुर्गेश, बतूलन, बद्रेमुनीर, श्यामा, बिट्टो, बिट्टन, गुलाब, मुन्नी, अनवरी, तारा, कमला, मोहनी, शांति का नाम बाद की पीढ़ी की ठुमरी गायिकाओं में लिया जाता है। इस युग की उत्तम ठुमरी गायिकाओं में बनारस की श्रीमती रसूलनबाई, श्रीमती बड़ी मोतीबाई, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। बनारसी ठुमरी गाने वाली

नयी पीढ़ी की गायिकाओं में श्रीमती गिरिजादेवी, श्रीमती माणिक वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त कुछ सारंगीवादकों ने भी ठुमरी के धुनों को प्रस्तुत किया जिनमें सियाजी, शंभुजी, रामसुमेर जी, सुरसहाय मिश्र, आशिक खाँ, नज्जू खाँ, तथा वर्तमान समय में श्री हनुमान मिश्र, स्वर्गीय गोपाल मिश्र, श्री बैजनाथ मिश्र ने प्रसिद्धि प्राप्त की। शहनाई वादन में भी ठुमरी की धुन को बनारस के उस्ताद बिसमिल्ला खाँ ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया। कथक संगीतज्ञों द्वारा भी बनारसी ठुमरी का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ।

बोलबाँट अथवा पछाहीं ठुमरी में होली (चांचर) रसिया, मल्लहार, सावन, लेद इत्यादि लोकधुनों व लोकगीतों के अतिरिक्त परम्परागत राग-संगीत का अत्याधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। कुछ ठुमरियों में ध्रुवपद की भांति आड़ व दुगुन आदि लयकारियों का प्रयोग भी परिलक्षित होता है। बोलबाँट की ठुमरियां कुछ गम्भीर प्रकृति के रागों को छोड़कर अन्य सभी रागों में मिलती हैं।

बोलबाँट की ठुमरी के उन्नसवीं से बीसवीं शताब्दी के बीच के वाग्गेयकारों व गायकों में लखनऊ के वज़ीर मिर्ज़ा बाला (कदर पिया), बेगम आलमआरा आलम, चाँद पिया, महाराज बिंदादीन, बिंदा तथा बरेली के तवक्कुल हुसैन सनद पिया, दिल्ली के कँवर श्याम, सुघर छैल, श्रीलाल गोस्वामी, गुट्टू गोपाल, मथुरा के काले खाँ, सरस पिया, ग्वालियर के नजर अली, नजर पिया के अतिरिक्त शाद पिया, बांके पिया, सरदार, इमदाद, पिया नेशा, राम प्रताप, अफसोस पिया, अजमत, दयाकृष्ण, बदर पिया, युगल पिया, दीनानाथ, गिरिधर दास, गणेश, द्विज बक्श, चन्द्रिका, आशिक पिया, हैदर पिया आजिज पिया, सुल्तान पिया, माघी पिया, श्याम सैंया अलम, जुगराजदास, लच्छनदास, शोखरंग, राहत अली, उमर व प्रेमदास

इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ ठुमरीकारों की रचनायें तो आज भी यत्र-तत्र सुनने को मिलती हैं।

पूरबी तथा पछाही ठुमरी को इस प्रकार अलग-अलग स्पष्ट कर सकते हैं कि ठुमरियों में लोकतन्त्र की प्रधानता है जबकि पछाही ठुमरियों में परम्परागत रागसंगीत की प्रधानता है। पूरबी ठुमरी रचनाओं में केवल कुछ लोकधुनों और चंचल व हलकी प्रकृति के रागों की अधिकता है जबकि पछाही 'बोलबाँट' की ठुमरियां केवल कुछ गम्भीर प्रकृति के रागों को छोड़कर प्रायः सभी रागों में मिलती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ठुमरी गान इतना लोकप्रिया हुआ कि वेश्याओं के अतिरिक्त मथुरा के ध्रुवपदिया चंदन चौबे, ख्याल गायक रहमत खाँ, शंकर पंडित, भास्करराव बखले व रामकृष्ण बुवा बज़े, आगरे के ख्याल गायक प्यारे खाँ व लतीफ खाँ, महमूद खाँ जैसे अनेक घरानेदार व उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित ध्रुवपद व ख्याल गायकों ने इसे बड़े शौक से अपनाया।

वेश्याओं द्वारा ठुमरी गान में रागों के सर्वमान्य नियमों की अवहेलना किये जाने के कारण बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अनेक स्वाभिमानी संगीतज्ञ उन्हें हेय दृष्टि से देखते रहे। आगे चलकर ठुमरी ने अपनी कलात्मकता व स्वाभाविक माधुर्य ने जन साधारण को मंत्रमुग्ध कर दिया और इसे लोगों ने दिल से अपनाया। प्रतिष्ठित गायकों ने संगीत सभाओं व संगीत सम्मेलनों में इसे गाना आरम्भ कर दिया। विख्यात संगीत शास्त्री पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे का कथन है, कि 'ठुमरी का गान घृणित कदापि नहीं है। इतना ही है कि ठुमरी उत्तम रीति से गाना आना चाहिये।'

स्वर्गीय भातखण्डे के शिष्यों में स्वर्गीय श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर और स्वर्गीय राजाभैया पूँछवाले की ठुमरी में काफी अभिरूचि था। श्री रातांजनकर ने अनेकों उत्तम ठुमरियों का संकलन किया। कालान्तर में सभी गायकों द्वारा अपने संगीत कार्यक्रमों का समापन प्रायः ठुमरी गान से करने की प्रथाा चल पड़ी। जिनमें स्वर्गीय उस्ताद फैयाज हुसैन खाँ, रामपुर के उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ, बम्बई के अब्दुल करीम खाँ एवं लाहौर के स्वर्गीय बड़े गुलाम अली खाँ, के नाम उल्लेखनीय हैं। पं० भास्करराव बुवा बखले अन्य शैलियों के साथ ठुमरी गान में निपुण थे। पं० भास्करराव बुवा बखले तथा स्वर्गीय उस्ताद फैयाज खाँ, के सुयोग्य शिष्य पं० दिलीपचन्द्र वेदी अपने समय में ध्रुवपद, ख्याल तराना, टप्पा के अतिरिक्त ठुमरी गान के लिये सुविख्यात रहे हैं। पं० दिलीपचन्द्र को उनकी उत्कृष्ट ठुमरी गान के लिये नवाब वाजिद अली शाह के सुपुत्र प्रिंस अकरम हुसैन ने जनवरी सन् 1938 में कलकत्ते में हुये अखिल भारतीय सम्मेलन में उन्हें 'किंग वाजिद अली शाह' स्वर्णपदक प्रदान कर सम्मानित किया था। स्वर्गीय बड़े गुलामअली खाँ ने ठुमरी गान की एक विशिष्ट शैली 'पंजाब अंग' का आविष्कार किया। बीसवीं शताब्दी में मुख्यतः पूरब अंग की ठुमरी गाने वालों मे बम्बई के उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, हैदराबाद के बाबा नसीर खाँ, लखनऊ के दुन्नी खाँ, कलकत्ता के स्वर्गीय प्यारे साहब गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, भीष्मदेव चटर्जी, जमीरूद्दीन खाँ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी की अपनी निजी विशेषता थी।

किराना घराने के अब्दुल करीम खाँ की गाई ठुमरियों के अनेक ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स बड़े लोकप्रिय हुये। इनकी गाई ठुमरियों में भैरवी की ठुमरी 'जमुना के तीर', पीलू की ठुमरी 'सोच समझ

नादान' व झिंझोटी की ठुमरी 'पिया बिना नहीं आवत चैन' तथा जोगिया की ठुमरी 'पिया मिलन की आस' अत्यधिक लोकप्रिय हुई। अब्दुल करीम खाँ के शिष्यों में स्वर्गीय सुदेश बाबू माने, स्वर्गीय गणेश रामचन्द्र बहरे बुवा, स्वर्गीय सवाई गन्धर्व, शिष्याओं में हीरीबाई बड़ोदकर व रोशनआरा बेगम ने विशेष ख्याति प्राप्त किया। स्वर्गीय गिरिजाशंकर चक्रवर्ती के शिष्यों में भी श्री चिन्मय लाहिड़ी, ज्ञानप्रकाश घोष, तारापद चक्रवर्ती, सुनील कुमार बोस व श्रीमती नैना देवी ने ठुमरी के प्रचार-प्रसार के लिये अत्यधिक प्रयास किया। गया के स्वर्गीय रामूजी (रामप्रसाद मिश्र) के शिष्यों में श्री ए० कानन व श्रीमती संध्या मुखर्जी का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त मुरव्वत खाँ, सफ़दर हुसैन तथा सैयद अली क़दर बब्बन का नाम भी ठुमरी गायक के रूप में प्रसिद्ध है। मुरव्वत खाँ ने 'मुरव्वत पिया' उपनाम से बोलबाँट व बोलबनाव दोनों प्रकार की ठुमरियों, ख्याल तथा सादरे की रचना की। सैयद अली बब्बन के पास तो ठुमरियों का बहुत बड़ा संग्रह था। आपके शिष्यों में बम्बई के फिल्म संगीत निर्देशक श्री नौशाद अली की बहुत ख्याति है।

बीसवीं शताब्दी में ही ठुमरी का नया अंग पंजाब अंग का विकास हुआ। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० दिलीपचन्द्र वेदी के अनुसार, पंजाब अंग की ठुमरी का सूत्रपात स्वर्गीय उस्ताद बड़े गुलामअली खाँ और बरकत अली खाँ के पिता स्वर्गीय उस्ताद अलीबख्श खाँ द्वारा हुआ था। आज भी पंजाब की ठुमरियां ब्रज, अवधी, भोजपुरी इत्यादि बोलियों में गाई जाती है। स्व० उस्ताद गुलाम अली खाँ, ठुमरी की पंजाबी शैली को पूरब अंग की गानविधा मानते हुये पंजाबी शैली को उसकी शाखा मानते हैं। पंजाब अंग की ठुमरी गाने वाले वर्तमान गायकों में पाकिस्तान के सलामतअली व नज़ाकत

अली, इन दोनों बंधुओं के नाम विशेष रूप से लिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त पटियाला घराने के उस्ताद अब्दुल रहमान खाँ भी कुशल ठुमरीकार गायक व उत्तम शिक्षक रहे। उनकी शिष्याओं में श्रीमती निर्मला अरुण व श्रीमती लक्ष्मीशंकर ठुमरी गायन में काफी कीर्ति प्राप्त की। लखनऊ की स्वर्गीय बेगम अख्तर आधुनिक युग की प्रतिष्ठित ठुमरी गायिकाओं में बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी ठुमरी गायकी में पूरब और पंजाब दोनों का समावेश रहा। इनके अतिरिक्त नगीने के श्री अफ़ज़ल हुसैन खाँ ने अपनी ठुमरी में पूरब व पंजाब दोनों अंगो का समन्वय प्रस्तुत किया।

ठुमरी का काव्य :—

निबद्ध गान में प्रयुक्त होने वाले स्वर, विरुद्ध, पद, तेनक, पाट व ताल इन छः अंगों में से विषय की दृष्टि से ठुमरी का काव्य 'पद्' की श्रेणी में आता है।

अपने प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में गायकों के आवागमन और गान प्रदर्शन होते रहने के कारण उनके द्वारा गाये जाने वाले गीतों में विभिन्न प्रदेशों की जनबोलियों के शब्दों का मिश्रित व्यवहार होता रहता है। ठुमरी गीतों में भी सदा से ही जनबोलियों का प्रयोग होता आया है। मध्यदेश का केन्द्र ब्रज और उसके आप-पास का प्रदेश ठुमरी के विकास और प्रसार का प्रमुख क्षेत्र होने के कारण मध्यदेशीय गेय पदों में प्रयुक्त होने वाली प्रधान बोली जनभाषा प्रारम्भ से ही ठुमरी गीतों की भी प्रमुख भाषा रही है। प्रकृति सरल व स्वच्छन्द होने के कारण भाषा नियमों का कठोरता से पालन नहीं होता। अन्य बोलियों, शब्दों व मुहावरों का यथानुकूल प्रयोग होता रहता है। इसीलिये पिछली शताब्दी के प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थकार 'कैप्टनविलर्ड' ने भी ठुमरी को

'इम्प्योर डायलेक्ट ऑफ ब्रजभाखा'[1] अर्थात् अशुद्ध ब्रजभाखा (मिश्रित ब्रजभाषा) का गीत बताया है।

19वीं शताब्दी में लखनऊ के सुप्रसिद्ध ठुमरीकार 'कदरपिया' ने अपनी ठुमरियों में ऐसी मिश्रित जनबोली का प्रयोग करते हुये 'भाखा' कहा है। जो कि लखनऊ और उसके आस-पास बोली जाने वाली जनभाषा से बहुत प्रभावित थी। आज ठुमरी का जो स्वरूप हमारे सामने है उसमें साधारणत: ब्रजभाषा, खड़ी, अवधी और किंचित उर्दू का प्रभाव परिलक्षित होता है।

वाजिद अली शाह अख्तर कृत निम्नलिखित ठुमरी की भाषा ब्रजभाषा है तथा जो राग काफी और ताल अद्धा में निबद्ध है-

ठुमरी

स्थायी - *"मोरी आली मैं पनियां कैसे जाँऊ (टेक)।*
सखी री नागर नटखट मुकुट वारौ।।
मोसो करत ढ़िठाई बंसीबट जमुनातट
पनियाँ कैसे लाऊँ री।।"

अन्तरा - *"उझक उझक और उचक उचक झांके री 'अख्तर'*
तट पनघट बंसीबट - जमुना तट,
पनियाँ कैसे लाऊँ री।।"

कदर पिया द्वारा रचित ठुमरी जो खड़ी बोली में है वह इस प्रकार है-

स्थायी - *"एरी गुइयाँ, मैं कैसे भेजूं पाती।*
कदर पिया को कैसे भेजूं पाती।।

---

1 Captain Willard - 'Treatise on the Music of Hindoostan', Page 130

अन्तरा - *"एक तो पापिन रैन अंधेरी, दूजे सूनी सेज नागिन।*

तीजे मेरा बाला जोबन, हाथ सजाती।"

उर्दू भाषा के मिले जुले रूप में एक ठुमरी इस प्रकार है-

स्थायी - *"सुध लाग रही तोरी आठ पहर,*

तन मन की नहिं मोहे ख़ाक खबर।।

अन्तरा - *निस बासर मोहे कलना परत है।*

दिखलावै कहुँ एक नजर।।

अरज करत मोरा जियरा डरत है।

दिल धड़कत देहियाँ थर थर।।"

पूरबी हिन्दी में रचित (अवधी व भोजपुरी भाषा) एक ठुमरी निम्नलिखित है-

स्थायी - *"ए री दैया, मोरी झुलनी हेरानी।*

अन्तरा - *मूंद किवरवा मैं जो सोई, भीतर सोवे देवरा।*

भिनसरवा की नींद, मोरी झुलनी हेरानी।।"

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जोधपुर के महाराजा मानसिंह कृत ठुमरी, जिसमें ब्रजभाषा व राजस्थानी भाषा का मिश्रण है तथा जो राग कालिंगड़ा और ताल त्रिताल में निबद्ध है, इस प्रकार है—

स्थायी - *"अलबेले चपां चीर में*

अन्तरा - *बिजली सी चमके पियारी जी रो।*

पियरी घटा की भीर में।"

ठुमरी के विषय :–

कैशिकी नृत्यात्मक गीतभेद होने के कारण ठुमरी गीतों द्वारा स्त्रियोचित व श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यंजना, ठुमरी रचयिताओं

का प्रमुख उद्देश्य था। फलतः श्रृंगार परक शब्द योजना रही उसमें प्रणय व विरह की अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है। श्रृंगार के दो भेद संयोग व वियोग दोनों पक्षों का चित्रण होता है।

भावनाओं की दृष्टि से विभिन्न ठुमरी गीतों में प्रेम, भक्ति, अनुराग, हर्ष, शोक, मान, उपालंभ, आशा, निराशा आदि स्थायी व अस्थायी मनोभावों की अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है। प्रायः श्रृंगार के साथ साथ करुण रस का भी प्रयोग होता है। परन्तु प्रधानता श्रृंगार रस की ही रहती है।

सूफी व रहस्यमार्गी ईश्वरीय प्रेमाभिव्यक्ति वाली ठुमरियों की भाषा सुनने में तो साधारण है, लेकिन नर-नारी के प्रेम व्यापार को अभिव्यक्त करती हैं परन्तु गुढ़ार्थ अलौकिक ईश्वरीय प्रेम को इंगित करता है ये द्वियर्थक होती है, जैसे- राग भैरवी में निबद्ध एक ठुमरी इस प्रकार है-

स्थायी - *"बाबुल मोरा नैहर छूटोहि जाये।।*

अन्तरा - *चार कहार मिल डोलिया मँगावो।*

अपना बेगाना छूटोहि जाय।"

दोहा - *"अँगना तो परबत भयो देहरी भई बिदेस।*

जा बाबुल घर आपने मैं चली पिया के देस।।"

इसमें जहाँ नवविवाहिता के पति गृह की ओर गमन का वर्णन है वहीं मृत्यु पश्चात् आत्मा के परमात्मा से मिलने का वर्णन है।

वर्तमान युग के प्रतिष्ठित ठुमरी गायकों में सहसवान घराने के उस्ताद निसार हुसैन खाँ तथा गायिकाओं में बम्बई की नवोदित ठुमरी गायिका श्रीमती शोभा गुर्टू का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वर्तमान युग के सितार व सरोदवादकों ने मध्यलय में बोलबाँट की ठुमरियों की

धुनों को अपनाया। ख्यातिलब्ध सितारवादकों में पं0 रविशंकर, उस्ताद विलायत खाँ, उस्ताद अब्दुल हलीम जाफ़र खाँ और सरोद वादकों में उस्ताद अली अकबर खाँ इत्यादि ने अपने कार्यक्रम का अंत प्रायः ठुमरी धुन बजाकर ही किया। ठुमरी को हावभाव के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले कथक नर्तकों में महाराज बिंदादीन के भतीजे स्वर्गीय जगन्नाथ प्रसाद उर्फ अच्छन महाराज, स्वर्गीय लच्छू महाराज और स्वर्गीय शंभु महाराज विशेष प्रसिद्ध थे। शंभु महाराज में तो ठुमरी के एक-एक बोल को विभिन्न भावों और अर्थों के अनुसार, केवल आँखों और मुख के माध्यम से अभिव्यक्त करने की क्षमता थी। शंभु महाराज के भाई लच्छु महाराज भी इस शैली में बड़े प्रवीण थे। नैन-मुख से अभिव्यक्त करने की शैली में ठुमरी प्रदर्शित करने वाली नयी पीढ़ी के लोगों में श्री ब्रजमोहन उर्फ बिरजू महाराज तथा बम्बई की श्रीमती सितारा देवी व श्री गोपीक ृष्ण विशेष प्रतिष्ठित हैं। आजकल अनेक गायक-गायिकाओं के ख्याल, भजन, गज़ल तथा सितारवादकों के बाज में ठुमरी के बोलबनाव जैसे-- स्वर सन्निवेश, कण, खटका, मुर्की इत्यादि का अत्यधिक प्रयोग परिलाक्षित होता है। वर्तमान नाट्य एवं सिनेमा संगीत में गीतों की नई धुनों के निर्माण के लिये भी ठुमरी और उसकी शैली का प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न फिल्मों में कुंदन लाल सहगल, मोहम्मद रफी, लता मंगेशकर व संध्या मुकर्जी ने अनेक मधुर ठुमरियां प्रस्तुत की हैं। इनके अतिरिक्त नौशाद, सी. रामचन्द्र, खेमचन्द्र प्रकाश, मदनमोहन, सचिनदेव बर्मन इत्यादि फिल्म संगीत निर्देशकों ने भी अपने गीतों की लोकप्रिय धुनों में ठुमरी व दादरा की धुनों का प्रयोग किया है। अतः कह सकते हैं कि वर्तमान भारतीय संगीत में लोकप्रिय गीत विधा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

आधुनिक समय में प्रचलित ठुमरी की शैलियाँ :-

किसी भी गेय विधा के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिये उसकी प्रचलित शैलियों का अध्ययन अतयन्त महत्वपूर्ण है अतः ठुमरी की प्रचलित गान शैलियों का विवेचन आवश्यक है, कालांतर में ठुमरी के दो प्रमुख भेद हैं-

1. बोलबाँट की ठुमरी
2. बोलबनाव की ठुमरी।

पहली मुख्यतः गतिप्रधान है और दूसरी भावप्रधान है। लखनऊ से पूर्व की ओर प्रचलित ठुमरी को पूरबी ठुमरी या पूरब अंग की ठुमरी कहते हैं जिसमें बोलबनाव की प्रधानता होती है तथा लखनऊ से पश्चिम की ओर प्रचलित ठुमरी को पछाहीं ठुमरी कहते हैं इसमें प्रायः बोलबाँट की प्रधानता होती है।

बोलबाँट की ठुमरी और उसकी गान शैली –

बोलबाँट की ठुमरियों में बंदिश की रचना का चमत्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण होने से इसे बंदिशी ठुमरी भी कहते हैं। इन ठुमरियों की भाषा मुख्यतः ब्रज है। इनका विषय कृष्ण की श्रृंगारात्मक ब्रजलीलाओं से सम्बद्ध होने पर भी अनेक रचनाओं में साधारण नर-नारी प्रेमाभिव्यक्ति भी मिलती है। इनमें से मध्यलय में गाई जाने वाली ठुमरियों में श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण मिलता है जबकि द्रुत लय की ठुमरियों में प्रायः संयोग श्रृंगार का ही वर्णन रहता है। कुछ ठुमरियों में काव्यात्मक चमत्कार भी देखने का मिलता है जैसे धनाक्षरी ठुमरी जिसमें अनुप्रासयुक्त शब्द समूह होते हैं व अधरबंद ठुमरी जिसमें ओठों का प्रयोग नहीं होता।

बोलबाँट की ठुमरियों में अनेक विविधतायें परिलक्षित होती हैं एक ओर तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश, ब्रज व बुंदेलखण्ड में गाए जाने वाले होली, सावन, मल्हार, रसिया, लेद इत्यादि, लोकधुनों का प्रभाव है तो दूसरी ओर परम्परागत घरानेदार गायकों, सितारवादकों व कथकनर्तकों के विशेष योगदान के कारण इन पर परम्परागत रागसंगीत का भी बहुत प्रभाव है। कुछ ठुमरियाँ मध्यलय के ख्याल, कुछ तराने, कुछ सितार की गतों तथा कुछ नृत्य के अधिक निकट हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ठुमरियों में ध्रुवपदगान की भाँति दुगुन, आड़ इत्यादि लयकारियों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। बोलबाँट की ठुमरियां प्राय: त्रिताल, अद्धा या सितारखानी तो कभी-कभी रूपक, झपताल एकताल व आड़ाचारताल में निबद्ध होती हैं। इन ठुमरियों को मध्य या द्रुत लय में गाया जाता है। भरत ने श्रृंगारपरक गीतों के लिये मध्यलय का प्रयोग उपयुक्त बताया है।[1] बोलबाँट की ठुमरियां, केवल कुछ गम्भीर रागों को छोड़कर प्राय: सभी रागों में गाई जाती हैं। मध्यलय में गाई जाने वाली एक विशेष वर्ग की ठुमरियों में लयबाँट के साथ-साथ प्राय: बोलबनाव के गुण भी समाहित रहते हैं। सधारणतया लोग ऐसी ठुमरियों को बोलबाँट की ठुमरियों में ही वर्गीकृत कर देते हैं किन्तु रचना व गायकी के आधार पर इन्हें बोलबाँट और बोलबनाव ठुमरियों का मध्यस्थ मानना चाहिये। मध्यलय में गाई जाने वाली अनेक ठुमरियों की रचना व गानशैली मध्यलय के ख्यालों से इतनी मिलती जुलती है कि दोनों में स्पष्ट विभेद कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। भेद स्पष्ट न होने के कारण मध्यलय की कई बंदिशें भ्रमवश या निजी इच्छा से ठुमरी व ख्याल दोनों रूपों में गाई जाती रही और इसीलिए मध्यलय की ऐसी 'बंदिशों' को कुछ लोग ख्याल और कुछ लोग

---

1. "हर्षेडय प्रार्थने चैव शृगाराद्भुवदर्शने।
ध्रुवा प्रासदिकीकार्या तज्ज्ञैर्मध्यलयाश्रया।।325।।" (भरत, 'नाट्यशास्त्र', द्वात्रिशोडध्याय)

ठुमरी कहते रहे हैं। बोलबाँट की ठुमरियों का प्रसार क्षेत्र फ़र्रूख़ाबाद, इटावा, बरेली, रामपुर, मथुरा, व दिल्ली है।

बोलबनाव की ठुमरी और उसकी गायनशैली –

बोलबनाव की ठुमरी मुख्यतः गायकीप्रधान ठुमरी है। इसमें गीत के बोलों में नीहित भावों को साक्षरालप्ति के माध्यम से अभिव्यंजित करने का प्रयत्न किया जाता है। इन ठुमरियों की भाषा ब्रज, अवधी, भोजपुरी इत्यादि होती है। कभी-कभी उर्दू भाषा के शब्दों का भी किंचित प्रयोग होता है। बोलबनाव की ठुमरियों के विषय संयोग व वियोग दोनों होते हैं, जिनमें श्रृंगार रस के साथ-साथ करुण रस की भी अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। इस गायकी में भावाभिव्यंजना का विशेष महत्व होने के कारण अधिकतर विलम्बित लय का प्रयोग होता है। अतः ये दीपचंदी, जत और पंजाबी इत्यादि तालों में ही गाई जाती है। किन्तु इस शैली में गाये जाने वाले 'दादरा' गीतों को दादरा या कहरवा ताल में गाते हैं।

वर्तमान समय में बोलबनाव की ठुमरियाँ प्रायः बिहाग, खमाज, झिंझोटी, तिलंग, गारा, परज, सोहनी, सिन्दूरा, मांड, पहाड़ी, बरवा, सिंधु, पीलू, जँगला, बिहारी, तिलंककामोद, देस, कालिंगड़ा देस, काफी, भैरवी, सिंध-भैरवी, इत्यादि रागों में गाई जाती है।

बोलबनाव ठुमरी की गायकी में क्रम से पहले स्थायी के बोलों का भावानुकूल काकुयुक्त स्वरसन्निवेशों सहित साक्षरालप्ति करते हुये 'बोलबनाव' किया जाता है और प्रत्येक बोल बनाव के बाद गीत के स्थायी का 'मुखड़ा' दिखाया जाता है इसी प्रकार अन्तरे में भी किया जाता है। फिर अन्तरे की अन्तिम पंक्ति में या अन्तरा समाप्त करके स्थायी की पहली पंक्ति को त्रिताल या कहरवा ताल में निबद्ध करके मध्यलय में कई बार गाया जाता है। इसमें बीच-बीच

में छोटी-छोटी बोलतानों का भी प्रयोग किया जाता है। इस क्रिया के साथ तबलावादक तबले में कहरवा ताल के एक विशिष्ट ठेके 'लग्गी' द्वारा गाने की संगति करता है और अन्त में एक छोटे 'मोहरे' या 'तिहाई' के द्वारा सम पर आकर ठुमरी गान को समाप्त किया जाता है। बोलबाल की बंदिशें लघु व सरल होती हैं। इसमें स्थायी और प्रायः एक या दो अन्तरा होता है। इसमें ठुमरी की बंदिशों की रूपरेखा स्पष्ट तो रहती है परन्तु वे उतनी सुगठित व लयबद्ध नहीं होती, जितनी बोलबाँट ठुमरी की बंदिशें। इस प्रकार बोलबनाव की ठुमरी का वैविध्य उसकी बंदिशों में न होकर 'गानशैलियों' में प्रकट होता है।

बोलबनाव ठुमरियों में अंग शब्द व्यवहार किये जाने का प्रचलन है जो शब्द, रचना, शैली, क्षेत्रीयता या प्रादशिकता को प्रकट करता है जैसे- पूरब, अंग, पंजाब अंग इत्यादि।

पूरब अंग –

बोलबनाव की ठुमरी का प्रचलन पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार की ओर अधिक होने के कारण इसे प्रायः 'पूरब अंग की ठुमरी' या 'पूरबी ठुमरी' कहा जाता है। इन ठुमरियों पर चैती, कजरी, पूरबी, घाटों आदि लोकगीत की धुनों का भी प्रभाव है। पूरबी ठुमरी में बोलों व स्वरों का विशेष क्रम होता है जिसके अन्तर्गत् बोलबनाव करते हुये मुख्य राग की 'बढ़त' की जाती है। अन्य समप्राकृतिक रागों की छाया दिखाते हुये मुख्य राग का तिरोभाव व आविर्भाव किया जाता है। तत्पश्चात् अन्य अनेक रागों का भी भावानुकूल मिश्रण किया जाता है। अन्य रागों की छाया दिखाने तथा राग मिश्रण का कौशल प्रायः षड्जसंक्रमण, स्वरसन्निवेश परिवर्तन द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त मूल धुन या राग में लगने वाले स्वरों के शुद्ध, कोमल, तीव्र रूपों को बदल कर उसमें

विभिन्न रागों के मिश्रित प्रयोग का चमत्कार दिखाया जाता है। प्राय: मूल राग व मिश्रित रागों मे सामंजस्य स्थापित करने वाले समान स्वरों को माध्यम मानकर वहाँ से तिरोभाव व आर्विभाव दिखाया जाता है। इसके साथ-साथ कण, खटका, मुर्की, मींड, ज़मज़मा, गिटकिरी इत्यादि तथा श्रृंगार व करुण रस की अभिव्यक्ति के लिये दर्द, हूक, पुकार जैसे भावाभिव्यंजक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। जिसके अन्तर्गत् गेयत्व की सुविधा के लिये बोलबनाव करते समय प्राय: रे, अरे, हाँ, हो, हाय इत्यादि सम्बोधक हृदयोद्गारात्मक स्तोभाक्षरों का प्रयोग किया जाता है। इन स्तोभाक्षरों का प्रयोग सामवेद से लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभृंश, डिंगल व परवर्ती लोकभाषाओं तक के गेय काव्यों में मिलते हैं।[1] दर्द, हूक, पुकार इत्यादि शास्त्रीय दृष्टि से 'काकु' के अन्तर्गत् आते हैं।[2]

इस प्रकार पूरब अंग की ठुमरी अपने सुरीलेपन, चैनदारी, बोलबनाव व स्वरों के विशिष्ट लगाव के लिये सुप्रसिद्ध है। इन ठुमरियों के लिये लखनऊ और बनारस नगर बहुत समय से विख्यात हैं, जिनके आधार पर पूरब अंग की गायकी के दो भेद माने जाते हैं- 1. लखनवी शैली, 2. बनारसी शैली।

लखनवी शैली –

ठुमरी गान का प्रचलन सर्वप्रथम लखनऊ में ही हुआ। लखनऊ और आस-पास के क्षेत्रों में प्रचलित होने के कारण इसे 'लखनवी ठुमरी' कहा जाता है। इस शैली की ठुमरी रचना में ब्रज व अवधी भाषा का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त उर्दू भाषा के शब्दों का यदाकदा किंचित प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण स्वरूप वाजिद

---

1 पराजपे, डा0 शरच्चद्र श्रीधर, 'भारतीय सगीत का इतिहास' पृ0 80

2 Thakur Jaideva Singh, Evolution of Thumari, 'कलाभारती ठुमरी सम्मलन पत्रिका' दिसम्बर 1965, पृ0 37

अली शाह 'अख्तर' कृत एक प्रसिद्ध व पुरानी ठुमरी जो राग भैरवी में है इस प्रकार है-

स्थायी - *"बाबुल मोरा नइहरय।।" छूटोहि जाय।*

अन्तरा - *चार कहार मिल डोलिया उठावें।*

अपना बेगाना छूटो ही जा

अन्तरे में 'बेगाना' शब्द उर्दू का है जिसका अर्थ बेगाना होता है। तत्कालीन ठुमरी अवध के सामंती वैभव, विलास व दरबारी अदब कायदे की मिली जुली संस्कृति से प्रभावित थी। यही कारण था कि लखनवी शैली के ठुमरी गान में नृत्य के साथ-साथ नाज़-नखरे, नफ़ासत, बनाव, सिंगार की प्रधानता परिलक्षित होती है। लखनऊ में टप्पा का प्रचार होने से ठुमरी गान में टप्पा शैली के स्वर सन्दर्भों की झलक भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती रहती है। इसके अतिरिक्त लखनऊ में गज़ल और उर्दू शायरी के विकास व प्रचार के कारण तत्कालीन ठुमरी भी इससे प्रभावित हुये बिना न रह सकी फलतः ठुमरी गान में विषयानुकूल बीच-बीच में उर्दू भाषा के शेर कहने का प्रचलन भी प्रायः मिलता है।

बनारसी शैली –

पूर्वी उत्तर प्रदेश के बनारस नगर व उसके आस-पास के क्षेत्रों में विशेषतया प्रचलित होने के कारण इसे 'बनारसी शैली की ठुमरी' कहते हैं। इसमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी व मगही इत्यादि बोलियों का प्रयोग प्रायः परिलक्षित होता है। इन ठुमरियों का एक उदाहरण इस प्रकार है-

स्थायी - *"एरी दैया मोरी झुलनी हेरानी।।*

अन्तरा - *मूँद किवरवा मैं जो सोई, भीतर सोवै देवरा।*

भिनसरवा की नींद, मोरी झुलनी हेरानी।।"

इस शैली की विशेषताओं के अन्तर्गत् ठुमरी गान में बोलबनाव करते समय बोलों के 'कहन' अर्थात् विशिष्ट उच्चारण की मिठास मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिये हूक, दर्द, और पुकार अर्थात् 'काकु' का विशेष प्रयोग स्वरों की क्रमानुसार बढ़त तथा स्वरसन्निवेशों के प्रयोग में पूर्वी लोकधुनों की सादगी व सरलता परिलक्षित होती है। कभी-कभी सजावट के लिये मूल बंदिश के विषयानुकूल रीतिकालीन हिन्दी को ब्रज, अवधी इत्यादि बोलियों में रचित दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि कहने का प्रचलन है। कलांतर में ठुमरी की 'बनारसी शैली' का प्रचलन व प्रभुत्व बढ़ा है व वर्तमान समय में वह 'पूरब अंग की ठुमरी' की एक मात्र प्रतिनिधि समझी जाती है और 'लखनवी शैली' का मात्र नाम ही शेष रह गया है।

पंजाब अंग –

'पंजाब अंग' की शैली बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से लोकप्रिय हुई है। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० दिलीपचन्द्र वेदी के अनुसार, ठुमरी की पंजाबी शैली का प्रारम्भ कसूर के सुप्रसिद्ध गायक स्व० अली बख्श खाँ द्वारा हुआ। बाद में 'पंजाब अंग' की शैली को प्रतिष्ठित करने वालों में स्व० अली बख्श खाँ के पुत्रों- स्व० बड़े गुलाम अली खाँ तथा उनके छोटे भाई स्व० बरकत अली खाँ का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आपने ठुमरी गान में पंजाब के लोकधुनों व वैचित्र्यपूर्ण स्वर सन्निवेशों का समावेश करते हुये अपनी आवाज व कलात्मक प्रतिभा से एक नया चमत्कार पैदा किया।

'पंजाब अंग' 'पूरब अंग' की एक शाखा होने पर भी दोनों अंगो के भेद का आधार केवल विशिष्ट स्वर सन्निवेश व पंजाब अंग की ठुमरी पंजाबी ढंग से गाया जाना है। इसी कारण पंजाब

अंग रुढ़ होकर एक भिन्न गान शैली के रूप में जनसमाज में प्रचलित हो गया। 'पंजाब अंग' की शैली के ठुमरी गायक हिंदी की ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों में विरचित बोलबनाव की ठुमरी व दादरा गीतों में पंजाब प्रदेश के हीर, माहिया, टप्पा, पहाड़ी, मुल्तानी काफी, सिंधी काफी इत्यादि लोकगीतों के धुनों के वैचित्र्यपूर्ण स्वरसंदर्भों का समावेश करते हुये उन्हें विशिष्ट ढंग से गाते हैं। इसके अतिरिक्त कण, खटका, मुर्की, और टप्पा शैली की छोटी-छोटी खटकेदार तानों का व्यवहार व स्वरों के शुद्ध, कोमल, तीव्रादि रूपों का क्रमशः एक के बाद एक का व्यवहार पंजाब अंग की ठुमरी की विशेषता है।

निष्कर्ष –

ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और वर्तमान शैलियों के विस्तृत विवेचन से ज्ञात होता है कि ठुमरी देशी संगीत की एक ऐसी उत्तर भारतीय गीत विधा है, जिसे मूलतः नर्तकियाँ भावाभिनय सहित नृत्य के साथ गाती थीं। कालान्तर में उसी ठुमरी का विकास एक विशिष्ट गान विधा के रूप में हुआ और आज उसकी अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं।

अतः आज के युग में ठुमरी की स्थिति को देखते हुये यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि ठुमरी एक श्रेष्ठ कलात्मक गेय विधा है और भारतीय संगीत में उसका स्थान अन्यतम है।

अब मैं उदाहरण के लिये कुछ ठुमरियों की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ-

ठुमरी

राग मांड　　　　ताल - त्रिताल

(धीमा)

स्थायी- सूनी नगरिया भई रे पिया बिन,
जुग सम लागे री उन बिन पल छिन।

अन्तरा- जा दिन ते सैंया देहरी निकस गये,
'रामरंग' हारी घड़िया गिन-गिन।

स्थायी

-	रेम	-प	ध-	पधनी-	पध	प	-
S	सूS	Sनी	नS	गSS	Sरि	या	S
३				x			
पध	-म	म	(प)	गरे	-	सरेग-	सारे
भई	SS	रे	S	पिया	S	SSS	बिS
२				०			
स	गरे	-म	म-	प	ध	सां	-
न	जुग	Sस	मS	ला	गे	री	S
३				x			
सांसांरे,	गं,सारें	गं	सांसां	धध	-	पध,नि	पप
उनS	S,SS	S	बिन	पल	S	S,SS	छिन
२				०			
धम	-म	रे	म-प-				
SS	सूS	S	नीSनS				
३							

अन्तरा

-	धम	-प	ध	सां	-	सां	सा
S	जाS	Sदि	न	ते	S	सैं	यां
३				x			
-	धध	-,सारे	गंरे	(सां)सां	-	धनी	प
S	देह	S,रीS	Sनि	कस	S	Sग	ये
२				०			
-	मम	रेम	प	पधनी	सां	धप	-
S	राम	Sर	ग	हाSS	S	रीमें	S
३				x			
		प					
-	पप	ध	S,मS	रे	-	सारे	गरे
S	घड़ि	याँ	S,गिन	न	S	SS	Sगि
२				०			
सा,	रेम	-प	-ध				
न,	सुS	Sनी	Sन				
३							

“अभिनव गीताजलि” - प0 रामाश्रय झा ‘रामरग’, भाग-2, पृ0 249

ठुमरी

राग खम्बावती

ताल - त्रिताल

स्थायी- भरन गयी पनियाँ पनघटवा के घाट,
कालिन्दी के कूल-कूल हरि-
उरन उनित जिय सुन ऐ रि प्रिय।

अन्तरा- केलि करत, हँसत, क्रीड़त नद को ललन,
नन्नि नव थल दबकि सिधायी उलटे पगन,
यमुना जल भरा घर आ आयो-
अपने बस में जिय।।

स्थायी

															नि
															भ
ध	प	ध	सा	-	सां	नि	सां	नि	नि	ध	नि	ध	-	प,	ध
र	न	ग	यी	ऽ	प	नि	याँ	प	न	घ	ट	व	ऽ	के	घा
X				२				०				३			
-	ध	म	-	प	-	प	म	ग	ग	-	सा	सा	रे	म	ग
ऽ	ट	का,	ऽ	लि	ऽ	न्दी	ऽ	के	कू	ऽ	ल	कू	ल	ह	रि
X				२				०				३			
म	प	प	ध	नि	ध	सां	सां	सा	रें	ग	-	सा	सा	नि,	
उ	र	न	उ	नि	त	जि	या	सु	न	ऐ	ऽ	री	प्रि	य,	
X				२				०				३			

अन्तरा

				-	ध	प	ध	सा	सा	सा	सां	सा	सा	रें	रें
				ऽ	के	ऽ	लि	क	र	त	हैं	स	त	क्री	ड़
				२				०				३			
रे	ग	ग	ग	मं	म	मं	म	ग	गं	गं	ग	सां	सां	सां	सां
त	नं	द	को	ल	ल	नं	ल	कि	न	व	था	ल	द	ब	कि
x				२				०				३			
सा	सा	नि	नि	नि	ध	प	ध	ध	म	म	म	ग	ग	सा	सा
सि	धा	यी	उ	ल	टे	प	ग	न	य	मु	ना	ज	ल	भ	रा
x				२				०				३			
सा	रे	म	-	म	प	प	ध	ध	नि	ध	प	ध	सां	सा	नि
घ	र	आ	ऽ	आ	ऽ	यो	अ	प	ने	ब	स	मे	जि	य,	म

....

"ललन पिया की ठुमरियाँ" - पृ0 82, 83

दशम अध्याय

तराना, त्रिवट, दादरा, चतुरंग, सादरा आदि गायन शैलियों का शास्त्रीय संगीत में महत्व व विकास

(स) तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत

(रे) सरगम, रागमाला, चतुरंग, सादरा

(ग) उपरोक्त शैलियों की कुछ स्वरलिपियाँ

तराना, त्रिवट, दादरा, चतुरंग, सादरा आदि गायन शैलियों का शास्त्रीय संगीत में महत्व व विकास

भारतीय शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा तथा ठुमरी इत्यादि गायन शैलियों के अतिरिक्त कुछ अन्य निबद्ध गीत शैलियाँ जैसे-तराना, त्रिवट, दादरा, लक्षणगीत, सरगम, रागमाला, चतुरंग, सादरा इत्यादि भी हैं, जो स्वरात्मक, भावात्मक एवं रचनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण गीत विधाएं हैं। ये सभी मुख्य गायन शैलियाँ तो नहीं हैं किन्तु उनका गायन शास्त्रीय रागदारी के अन्तर्गत् ख्याल गायन के पश्चात् गाने की परम्परा बनी हुई है। इनमें से कुछ शैलियों का प्रचार कम हो गया है तथा कुछ शैलियाँ विलुप्त प्राय हो गईं हैं। उपरोक्त सभी शैलियों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है-

तराना :—

यह ख्याल के प्रकार की एक गायकी है इसमें संगीत के बोल ऐसे होते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता, जैसे- ता, ना, दा, रे, तदारे, ओदानी, दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थायी और अन्तरा में ये दो भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

तराने में राग, ताल और लय का ही आनन्द है। प्राचीन काल में तराना को 'स्तोभगान' के नाम से जाना जाता था जिनका कोई अर्थ तो नहीं होता था परन्तु वे ओंकार की ध्वनि के वाचक होते थे और गायन में वाद्य यंत्र का आनन्द भी देते थे। तरानों का गायन मनोरंजक माना जाता है। बहादुर हुसैन खाँ, नत्थू खाँ, तथा

वर्तमान काल में निसार हुसैन खां, पं० विनायक राव पटवर्धन और पं० कृष्णराव इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हुये हैं।

तराने के शब्द निरर्थक होते हैं मगर उसमें उसके राग और ताल का पूरा आनन्द आता है। गमक इत्यादि के साथ कहे गये तराने में बड़ा आनन्द होता है। परन्तु अतिश्योक्ति हास्यजनक होती है। कुशल गायक के गायन में राग के स्वरों का अनोखा आनन्द होता है और वह तरह-तरह से अपने राग की व्यख्या करता है। जो गायक गमक की अतिश्योक्ति करते हैं वह केवल अपने गले का रियाज़ करते हैं। और जो 'दिर्र दिर्र' की झड़ी बाँधते हैं वह कभी-कभी सितार वादन की नकल करते हैं। तराने में राग का आनन्द आना चाहिये, रफ्तार का नहीं। इसकी भी अपनी विशेष गायकी है, जो अब सुनने में नहीं आती।

तिरवट या त्रिवट :-

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। किसी तराने में जब मृदंग के बोलों का भी प्रयोग किया जाता है तो ऐसे तरानों को 'त्रिवट' के नाम से जाना जाता है। इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। वर्तमान समय में तिरवट गायकी का प्रचार कम हो गया है।

दादरा :-

एक विशेष प्रकार की गायकी को 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल गज़ल से कुछ मिलती-जुलती है। मध्य तथा द्रुत लय में दादरा अच्छा मालुम पड़ता है। इसमें प्रायः श्रृंगार रस के गीत होते हैं। दादरा एक ताल का भी नाम है।

लक्षण गीत :-

लक्षण गीत प्रबन्ध में राग का संक्षेप वर्णन होता हैं। और उसकी मुख्य विशेषतायें बताई जाती हैं। इसमें स्वरों व शब्दों का

संयोग विलक्षण होता है। विद्वान गायकों द्वारा रचित बहुत से लक्षण गीत बड़े सुन्दर हैं। कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों, उस राग के वादी-संवादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो तो उसे 'लक्षणगीत' कहते हैं। लक्षण गीत से राग-सम्बन्धी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती हैं। इस युग में 'चतुर पण्डित' के लक्षण गीत बहुत प्रसिद्ध हैं। 'चतुर पण्डित' स्वर्गीय 'भातखण्डे जी' का ही नाम था और वह संगीत में अद्वितीय होने के अलावा स्वर में डूबे हुये बड़े रसिक और महान् संगीत प्रेमी और संगीत प्रचारक भी थे।

सरगम :—

रागबद्ध व तालबद्ध स्वर-रचना विशेष को 'सरगम' गीत कहते हैं। इसमें किसी प्रकार की कविता नहीं होती, केवल स्वर ही होते हैं। सरगम-गीत भिन्न-भिन्न रागों व तालों में निबद्ध होते हैं। इनको गाने से विद्यार्थियो ंको स्वरज्ञान तथा रागज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

रागमाला :—

जब एक गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक पंक्ति में एक-एक राग के स्वर लग जाते हैं तथा उस राग का नाम भी आ जाता है, तो ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

चतुरंग :—

ख्याल, तराना, सरगम, त्रिवट चार अंग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरंग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी सी परन रहती है। चतुरंग को

ख्याल की तरह गाते हैं किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

सादरा :—

सादरा, ध्रुवपद, होरी, ख्याल तथा ठुमरी की तरह गायन की एक शैली है जो बहुत कम प्रचलित रही। इसके गाने के ढंग में भी ताल की बोल बाँट का आनन्द आता है। आज के श्रोता जो संगीत में रूचि रखते हैं तथा बहुत से सामान्य गायक सादरा गायन का नाम भी नहीं जानते हैं।

कहा जाता है कि अवध दरबार के गायक उस्ताद दुल्हे मियाँ ने सादरा गायन आरम्भ किया। उस्ताद दुल्हे मियाँ के पूर्वज आगरा के हाजी सुजान के सम्बन्धी थे और आगरा छोड़कर शाहदरा (दिल्ली) आकर बस गये। दूल्हे मियाँ लखनऊ दरबार में आ गये और उनके गायान की शैली इसीलिये सादरा कहलाई।

सादरा गायन, ध्रुवपद अंग का गायन है जिसे झपताल में गाते हैं। इस गायन में ध्रुवपद तथा होरी गायन से अधिक चपलता है। सादरा गायन में स्थायी को शुद्धता से ध्रुवपद की परम्परा में गाया जाता है। लयबाँट का कार्य अर्थात् उपज और बोलताल का प्रयोग भी सादरा गायन की विशेषता है। अतः ध्रुवपद से दो सीढ़ियाँ तथा होरी से एक सीढ़ी ऊपर संगीत के विकास में सादरा गायन का स्थान है। इस गायन की अगली सीढ़ी में ख्याल गायन है। सादरा गायन में कविता पर बल दिया जाता है। जैसे-ध्रुवपद व होरी में। अतः इसमें श्रोताओं को आकर्षित करने की क्षमता है। यह झपताल की दस मात्राओं में गाया जाता है और इसमें भी दुगुन चौगुन कहने का रिवाज है। इसके अलावा आड़ी तिरछी बोल बाँट भी इस प्रबन्ध में अच्छी लगती है। ध्रुवपद और धमार गाने के लिये जैसे गला

सुरीला और दमदार होना चाहिये उसी तरह सादरा गाने के लिये गायक का कण्ठ सुरीला और रोबीला होना चाहिये। ऊँची और पतली आवाज में यह सब शैलियाँ अच्छी नहीं मालूम पड़ती और न उनका कोई प्रभाव किसी श्रोता पर पड़ता है। इस शैली में ख्याल की तानें और फन्दे नहीं होते। सुर में सीधे-सीधे शब्दों को रोचक ढंग से ताल में कहना ही सबसे जरूरी है। इस शैली में हर बात नपी-तुली और भारी भरकम होती है। गले को स्वतन्त्रता से इसमें हिलाना डुलाना मना है। सच्चे स्वरों को, सुरीली आवाज में साफ-साफ शब्दों में कुशलता से कहना इस शैली का प्रथम सिद्धान्त है।

इस शैली के धुरन्धर गायक लखनऊ के दुल्हे खाँ थे। सादरा गाने में इनका नाम चारों तरफ प्रसिद्ध हो गया था। उनके सुपुत्र स्वर्गीय अहमद खाँ जो बीस-तीस वर्ष पहले लखनऊ के प्रमुख विद्वान गायकों में थे सादरा बड़े अच्छे ढंग से गाते थे। इसी वंश के बीनकार उस्ताद मुहम्मद हुसैन खाँ ने लाटूश रोड, लखनऊ में अपने भतीजे के नाम से 'रहमत म्यूजिक स्कूल' खोला था। उस्ताद मुहम्म्द हुसैन खाँ साहब के दो छोटे भाई थे। अहमद खलीफा तथा बाक़र हुसैन खाँ। बाक़र हुसैन साहब बहुत अच्छे गायक थे, परन्तु युवा अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया। उस्ताद अहमद खलीफा कुछ समय तक 'मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक' लखनऊ में भी संगीत अध्यापक रहे। उस्ताद मुहम्मद हुसैन खाँ साहब की कोई औलाद न थी। और अहमद खलीफा के एकमात्र पुत्र रहमत हुसैन खाँ को मुहम्मद हुसैन खाँ ने सितार की तालीम दी और इस कारण सादरा गायन के घराने में गायन ही खत्म हो गया। उस्ताद रहमत हुसैन खाँ साहब ने जीवन भर आकाशवाणी केन्द्र, लखनऊ में नौकरी की। इनके पुत्र भी सितार बजाते हैं। उस्ताद मुहम्मद हुसैन

खाँ साहब के स्कूल में अधिकांशतः वह लोग गाना सीखने आते थे जिनका विचार संगीत को पेशे के रूप में लेना न था। उस्ताद मुहम्मद खाँ साहब का एक सादरा जो मालकोश राग में निबद्ध है, इस प्रकार है-

"भज मन निरंकार,
जब लौं घट में प्रान।
प्रगट भये कछु भेद न जाना,
कहत हाजी सुजान।"

ध्रुवपद और धमार की तरह इस शैली का रिवाज भी अब धीरे-धीरे गायब हो रहा है। एक तरह से यह, ध्रुवपद और धमार से आसान है मगर इसमें कला की दृष्टि से विशेषता प्राप्त करना कुशल गायक ही का काम है। इसके अतिरिक्त, जो गायक ताल में चौकस नहीं होता उसके कण्ठ से सादरा कभी अच्छा नहीं लगता। सादरा गाना बच्चों का खेल नहीं है। जिन्होंने इस शैली के विशेषज्ञों को सुना है, वह जानते हैं कि इसको गाना कितनी मेहनत और प्रतिभा का काम है। जिन्होंने मुरादाबाद के उस्ताद नज़ीर खाँ को सुना था वह जानते हैं कि सादरा कितनी उत्तम और विलक्षण शैली है। यह गायक जयपुर के उस्ताद कल्लन खाँ और अलवर के अलाबन्दे दोनों के शिष्य थे और बाद में वह स्वर्गीय भातखण्डे जी के भी संगीत शास्त्र में शागिर्द हो गये थे। ये बड़े नामी और प्रतिभाशील गायक थे। उनका एक मशहूर सादरा राग 'शहाना' में है जिसके बोल हैं-

"अवगुन भरो सकल हों दास तेरो
अपनो समझ माफ' इत्यादि।"

खेद की बात है कि आजकल गायक सादरे का अभ्यास नहीं करते। संगीत विद्यालयों के विद्यार्थी तो अवश्य अपनी पाठ्यपुस्तक से

इसके बारे में, कम से इसकी परिभाषा जान लेते हैं। मगर सामान्य रूप से न तो गायक सादरा गाते हैं न श्रोता उसे सुनते हैं। यदि संगीत शिक्षक इस ओर ध्यान देंगे तो सम्भव है कि तरुण गायकों को इसका शौक हो।

समय ने ध्रुवपद तथा होरी को पीछे ढकेल दिया और इसी प्रकार सादरा गायन का आज एकदम लोप ही हो गया है।

अंत में मैं उदाहरण स्वरूप उपरोक्त शैलियों की कुछ स्वरलिपियाँ प्रस्तुत कर रही हूँ-

तराना

राग चन्द्रकौंस

ताल-एकताल

स्थायी- तनन तनन देरेना ओदानी
ओदानी तान देरे तान देरे तदानी।

अन्तरा- दिर दिर धेतेलन दिर दिर धेतेलन धेतेलन।
दिर दिर तन नननन दीऽम्त दीऽम्त दीम तनन।।

स्थायी

ग॒	म	ग॒	सा	सा	सा	नी	ध़॒	नी़	सा	सा	सा
त	न	न	त	न	न	दे	रे	ना	दे	रे	ना
X		०		२		०		३		४	

म	म	ग	म	ध॒	नि	सा	ग॒ं	मं	ग	सा	सा
ओ	दा	नी	ओ	दा	नी	ता	S	S	न	दे	रे
X		०		२		०		३		४	

ध	नि	सा	नि	ध	म	म	ग	म	ग	सा	सा
ता	ऽ	ऽ	न	दे	रे	दे	रे	त	दा	ऽ	नी
X		०		२		०		३		४	

अन्तरा

म	ग	म	ध	ध	ध	नी	नी	सां	नी	सां	सां
दिर	दिर	धे	ते	ल	न	दिर	दिर	धे	ते	ल	न
X		०		२		०		३		४	
सा	सा	ग	ग	सां	सां	नि	ध	नि	नि	सा	सा
धे	ते	ल	न	दिर	दिर	त	न	न	न	न	न
X		०		२		०		३		४	
सा	नि	सा	नि	ध	ध	ग	ग	म	ग	सा	सा
दी	ऽम	त	दी	ऽम	त	दी	ऽ	ऽम	त	न	न
X		०		२		०		३		४	

"अभिनव गीताजलि" - प० रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-1, पृ० 195, 196

दादरा
राग तिलंग

ताल दादरा

स्थायी - कहां गिरी रे मोरी माथे की बिंदिया
अन्तरा- सास न जाने ननदिया न जाने,
सैंया न जाने मोरी माथे की बिंदिया।।

स्थायी

-	-	ग	ग	म	प	प	-	नी	प	ग	म
ऽ	ऽ	क	हाँ	गि	री	रे	ऽ	ऽ	ऽ	मो	री
x			0			x			0		
पनि	सा	नी	सा	नी	प	म	प	नि	म	ग	-
माऽ	ऽ	ऽ	ऽ	थे	की	बि	दि	ऽ	या	ऽ	ऽ
x			0			x			0		
सा	-,	ग	ग	म	प						
ऽ	ऽ,	क	हाँ	गि	री						
x			0								

अन्तरा

-	-	ग	म	पनी	मप	नी	-	-	सां	-	-
ऽ	ऽ	सा	ऽ	सऽ	नऽ	जा	ऽ	ऽ	ने	ऽ	ऽ
x			0			x			0		
							नी				
-	नी	नी	सा	नी	प	म	प	नी	(म) ग	-	
ऽ	न	न	द	ना	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ने	ऽ	ऽ
x			0			x			0		

-	-	ग	-	म	प	प	-	नी	प	ग	म
S	S	सों	S	याँ	न	जा	S	S	ने	मो	री
x			0			x			0		
									प		
पनी	सां	नी	सां	नी	प	म	प	नी	म	ग	-
माS	S	S	S	थे	की	बिं	दि	S	या	S	S
x			0			x			0		
सा	-,	ग	ग	म	प						
S	S,	क	हाँ	गि	री						
x			0								

"अभिनव गीताजलि" - पं0 रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-2, पृ0 246, 247

दादरा

राग खमाज

ताल-दादरा

स्थायी- अजब मैं निहारी मधुबन मे री।
अन्तरा- पहिने श्याम लहँगा अरु चूनर, राधे मुरली धारी।।

स्थायी

-	नी	नीध	धप	म	म	म	प	-	-	-	-
S	अ	जS	बS	मैं	नि	हा	री	S	S	S	S
X			0			X			0		
-	-	म	म	ध	ध	नी	धप	पध	नीसा	नी	सां
S	S	म	धु	व	न	मे	S S	S S	S S	S	S
X			0			X			0		
नी,	नी	नीध									
री,	अ	जS									

अन्तरा

									ध		
-	-	प	प	नी	नी	सा	-	-	नी	-	-
S	S	प	हि	रे	S	श्या	S	S	S	S	S
X			0			X			0		
सा	-	-	-	प	प	नी	-	-	-	नी	नी
म	S	S	S	ल	हँ	गा	S	S	S	अ	रु
X			0			X			0		

सा	नी	धप	ध	प	-	-	-	ग	म	ध	-
चू	ऽ	ऽऽ	न	र	ऽ	ऽ	ऽ	गा	ऽ	धे	ऽ
x			0			x			0		
प	ध	-	पध	नीसा	नीसा	ध	सां	नी	-	ध	प
मु	र	ऽ	ली	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ध	ऽ ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ
x			0			x			0		
-,	नी	नीध	धप	म	ग						
ऽ,	अ	जऽ	बऽ	मैं	नि						
x			0								

"अभिनव गीतांजलि" - पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग', भाग-3, पृ0 227, 228

लक्षणगीत

राग - अहीर भैरव ताल-झपताल

स्थायी- मोरहि गायो सजन ऐसो राग, जामे लगत स्वर प ग मरे ध नि रे सा।

अन्तरा- काफी मिलाय कियो वादि मध्यम, 'रामरंग' रे नी मृदु, सग प ग म रे ध नी रे सा ।।

रे	नी	सा	-	रे	ग	-	ग	-	म
मो	S	र	S	हि	गा	S	यो	S	स
X		२			०		३		

					म				
प	ध	नी	ध	प	ग	म	रे	-	स
ज	न	ऐ	S	सो	रा	S	ग	S	S
X		२			०		३		

ग	म	प	ध	प	ध	नी	सा	-	सा
जा	S	मे	S	ल	ग	त	स्व	S	र
X		२			०		३		

प	ग	(म)	रे	-	ध़	नी	रे	सा	-
प	ग	(म)	रे	S	ध	नी	रे	सा	S
X		२			०		३		

अन्तरा

म	-	प	ध	नी	सा	-	सां	-	सां
का	S	फी	S	मि	ला	S	य	S	कि
X		२			०		३		

नी̲		ग̇							
ध	नी̲	रे̲	-	सां	सा	नी̲	ध	प	म
यो	S	वा	S	कि	म	S	ध्य	S	म
X		२			०		३		
ग	म	रे̲	-	सा	रे̲	नी̲	सा	-	रे̲
रा	म	र	S	ग	रे	नि	मृ	S S	ढु
X		२			०		३		
ग	म	प	ग	म	रे̲	ध़	नी̲	रे̲	सा
स	ग	प	ग	म	रे	ध	नी	रे	सा
X		२			०		३		

"अभिनव गीताजलि" - पं0 रामाश्रय झा 'रामरग', भाग-1, पृ0 237, 238

चतुरंग

राग-शुद्ध सारंग ताल-त्रिताल

स्थायी- गाइये सजना गुनिजन बीच, ताल सुर तान बानि उन जाने सकल विधि, ताहि भेद समझाये।

अन्तरा- तनन दीऽम तारे तनन तन देरेना, मप नी सां प नीं सां रे म रें सा नी ध प म प रे म रे रें सां नी ध प सा नी ध प म प रे म रे सा, क्रधान ध धुम किट तक धित्ता धान धा धान धा धान धा 'रामरंग' चतुरंग गीत सुनाय।।

स्थायी

															सां गा
नी	ध	प मे	प	म	रे	सा ऩी	सा	रे	-	मे	मे	प	मे	प	सा
ऽ	इ	ये	ऽ	स	ज	ना	गु	नी	ऽ	ज	न	बी	ऽ	च	ता
३				x				२				०			
रे	सा	ऩि	ऩ	सा	-	सा	म रे	म	रे	मे	प	धनि	सां	नि	रे
ऽ	ल	सु	र	ता	ऽ	न	बा	ऽ	नि	उ	न	जाऽ	ऽ	ने	स
३				x				२				०			
सा	नीध	म	प	नीसां	रे	सा	मेप	ध	प	ऩि	सां	रेमे	पध	प,	सा
क	लऽ	बि	ध	ताऽ	ऽ	हि	भेऽ	ऽ	द	स	म	झाऽ	ऽऽ	य,	गा
३				x				२				०			

अन्तरा

							म	म	रे	में	प
							त	न	न	दी	ऽम
								३			
सा	-	सा	प	नी	सा	रें	सां	त	ध	प,	मेंप
ता	ऽ	रे	त	न	न	त	न	दे	रे	ना,	मेंप,
x				२				०			
नीसां	पनी	सांरें	मंरे	सांनि	धप	मप	रेम	रेरें	सानि	धप	सानी
३				x				२			
धप	मप	रेम	रेस	मम	मम	रे	मम	पप	धध	में	प
०				क्रधा	ऽन	धा	धुम	किट	तक	धि	ता
				३				x			
सानी	रेसां	-प	मेंध	प	-सा	नीरे	सा	नि	सा	मम	रेस
नी											
धाऽ	नधा	ऽधा	ऽना	धा	ऽधा	ऽन	धा	ना	म	रऽ	गऽ
२				०				३			
									में		
रे	में	धध	पम	प	नि	रेरे	सानि	प	ध	प,	स
च	तु	रऽ	गऽ	गी	ऽ	तऽ	सुऽ	ना	ऽ	य,	गा
x				२				०			

• • • • • • • • • • • • • •

“अभिनव गीताजलि” - प0 रामाश्रय झा ‘रामरग’, भाग-1, पृ0 53, 54

निष्कर्ष एवं समालोचना

शोधकर्त्री ने पीछे के अध्यायों में अब तक की गई चर्चा में शास्त्रीय संगीत की विभिन्न गायन शैलियों पर विचार करते हुये प्राचीन ग्रन्थों व शास्त्रों का अध्ययन करके उन्हें अपने विचारों में व्यक्त किया है। इस विश्लेषण के परिणामस्वरूप कुछ मुख्य तथ्य सामने आते हैं, कि भारतीय रागदारी संगीत की श्रेष्ठ संपदा रही है। सम्पूर्ण चर्चा के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है, कि भारतीय संगीत परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना कि पश्चिमी देशों से भारत का सम्बन्ध। वर्तमान में जो भी गायन शैलियाँ लोकप्रिय हैं, उनकी परम्परा निश्चित रूप से संगीत के प्राचीनतम इतिहास से जोड़ी जा सकती है। प्राचीन व आधुनिक गायन क्रम में व गायन शैलियों में काफी भिन्नता परिलक्षित होती है किन्तु ये सृष्टि का नियम है। सामगान से लेकर आज तक अनेक गायन शैलियाँ विकसित हुईं। भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में गीतियों का उल्लेख मिलता है, जिसके तत्व आज की गायन शैलियों में भिन्न-भिन्न प्रमाण में दिखाई पड़ते हैं। उसके पश्चात् जाति गायन की मान्यता रही और जाति गायन व गीति शैलियाँ कुछ समय के लिये लगभग साथ-साथ चलीं। उसके बाद उत्तर भारतीय संगीत व दक्षिण भारतीय संगीत के विभाजन के समय प्रबन्ध शैली प्रचार में आई जबकि मूलतः संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। प्रबन्ध के ही भेद ध्रुव-प्रबन्ध से ध्रुवपद गान शैली की उत्पत्ति हुई। ध्रुवपद की यह शानदार परम्परा चार सौ साल तक चलती रही। पीढ़ी दर पीढ़ी बदलाव आता गया। बैजू, तानेसन, स्वामी हरिदास, चिन्तामणि के अनेक ध्रुवपद आज भी गाये जाते हैं। ध्रुवपद के साथ धमार गायन शैली ध्रुवपद शैली के आधार पर विकसित हुई। वर्तमान काल के पूर्वार्द्ध में ख्याल शैली

की लोकप्रियता के कारण आज यही ख्याल गायन शैली प्रचार में है। 18वीं सदी से ध्रुवपद का स्वरूप बदलता गया और उसी के प्रभाव से ख्याल की उत्पत्ति हुई। ख्याल के साथ-साथ टप्पा, ठुमरी, दादरा मुख्य गायन शैलियाँ एवं चतुरंग, लक्षणगीत इत्यादि का विकास भी हुआ, जिन सभी का वर्णन मैंने अपने शोध प्रबन्ध में विस्तृत रूप से करने की चेष्टा की है। सभी शैलियों का अध्ययन करने से पता चलता है, कि कोई भी शैली अनायास एक व्यक्ति के प्रयत्नों से आरम्भ नहीं हुई बल्कि धीरे-धीरे नई शैली आरम्भ होती गई। पहले की प्रचलित शैली का एकदम ह्रास नहीं हुआ, बल्कि कम प्रचलित होती गईं किन्तु शोध प्रबन्ध को लिखते समय मैंने यह जाना कि ध्रुवपद, ख्याल व ठुमरी गायन शैलियों का पारस्परिक सम्बन्ध है और इन शैलियों में से ध्रुवपद ही प्रवीण व वयोवृद्ध है। वैदिक युग से आज तक जितनी गीत शैलियों का विवर्तन हुआ, उन सभी में पारस्परिक सम्पर्क विद्यमान है। प्रबन्धों में साहित्य की प्रधानता थी, जबकि ध्रुवपद की विषयवस्तु में ईश्वर व राजा, बादशाहों की प्रशस्ति का वर्णन मिलता है। आज के ख्याल गायन में ध्रुवपद जैसा आलाप करने की रीति नहीं है। ख्याल में ध्रुवपद की स्थिरता व गम्भीर गमक के अलावा छूट, मुर्की, ज़मज़मा आदि की प्रधानता वांछनीय है। संक्षेप में, वीणा और सितार के आलाप में जो अन्तर है, ध्रुवपद तथा ख्याल के आलाप में उतना ही अन्तर है। निष्कर्ष यह है कि ध्रुवपद के साथ ख्याल का सम्पर्क तो है ही लेकिन प्रबन्ध के साथ ध्रुवपद का सम्पर्क जितना निकट रहा है, ध्रुवपद के साथ ख्याल का सम्पर्क उतना निकट नहीं। कथक नृत्य जब बादशाही दरबार तक प्रसारित हो गया तब उसमें कुछ नवीनता लाने की जरूरत महसूस होने लगी और उसी समय ठुमरी गायन शैली प्रचलित हो गई। निष्कर्षतः ध्रुवपद, ख्याल, व ठुमरी तीनों शैलियाँ एक जनक की सन्तान हैं। उनकी आकृति व मानस प्रकृति

में जो विशेषता है, उसके कारण वह एक दूसरे से बिल्कुल अलग दिखाई देती है। ध्रुवपद, ख्याल व ठुमरी की शरीरों में प्रबन्ध जनक की रक्तधारा अवश्य प्रवाहित हो रही है किन्तु फिर भी वे अपनी गुण गरिमा तथा विशेषताओं के कारण आज के संगीत समाज में अपना अलग-अलग महत्व रखे हुये हैं।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध को 10 अध्यायों में विभाजित किया है जिसका एक संक्षिप्त विवरण उपसंहार के रूप में प्रस्तुत कर ही हूँ-

प्रथम अध्याय – "भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास" में मैंने विभिन्न विद्वानों के मत व इतिहास के आधार पर अपने अध्ययन से भारतीय संगीत की उत्पत्ति व विकास के सम्बन्ध में वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय – "शास्त्रीय संगीत शैलियों के सन्दर्भ में संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि" में मैंने वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग के भारतीय संगीत का संक्षिप्त व क्रमबद्ध रूप में ऐतिहासिक वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय – विषय प्रवेश के अन्तर्गत् "गायन शैलियों का क्रमिक विकास शास्त्रीय दृष्टि से" में मैंने सामगान के समय से लेकर वर्तमान काल तक की सभी गायन शैलियों का वर्णन किया है। गायन शैलियो का उद्‌गम कब, कहाँ और कैसे हुआ प्राचीन शैली के स्वभाविक विकास से क्रमिक उन्नति के फलस्वरूप अन्य अनेक शैलियाँ विकसित होती रहीं सभी का वर्णन मैंने इस अध्याय में करने की चेष्टा की है।

चतुर्थ अध्याय – "गीति, जाति गायन व प्रबन्ध शैली का विस्तृत अध्ययन" में मैंने गीति, ध्रुवा जाति एवं प्रबन्ध, इन सभी शैलियों

का अलग-अलग विस्तार पूर्वक वर्णन करने का प्रयत्न किया है और इन सभी गायन शैलियों के उद्‌गम व प्रकारों पर प्रकाश डाला है।

पंचम अध्याय – "ध्रुवपद शैली का प्रादुर्भाव, विकास व परम्परा" के अन्तर्गत् मैंने ध्रुवपद गायन शैली की परम्परा का पूर्ण वर्णन किया है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार, ध्रुवपद की परिभाषा दी गई है। ध्रुवपद की चार बानियाँ, चार धातु ध्रुवपद के छः अंग तथा ध्रुवपद के विषय व स्रोत का वर्णन किया है।

षष्टम अध्याय – षष्टम अध्याय " धमार गायकी, एक रंगारंग परम्परा" में धमार के विकास क्रम का मैंने वर्णन किया है। धमार को ध्रुवपद अंग की गायकी और लय प्रधान शैली माना जाता है। ध्रुवपद की चार बानियाँ, धमार की भी चार बानियाँ हैं।

सप्तम अध्याय – सप्तम अध्याय "वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित ख्याल शैली का क्रमिक विकास" के अन्तर्गत् ख्याल की उत्पत्ति, ख्याल के विभिन्न अर्थ व विभिन्न विचारकों के मतों का सन्दर्भ मैंने दिया है। इसके साथ ही ख्याल शैली के अंग, ख्याल के घराने व साहित्यिक पक्ष का वर्णन किया है। भारतीय संगीत की सर्वप्रचलित गायन शैली आज ख्याल के रूप में मानी जाी है। ख्याल के प्रचार में अनेक संगीतज्ञों का नाम जुड़ता है, जैसे- 'अमीर खुसरो, की परम्परा से लेकर जौनपुर के हुसैन शर्की व अठ्‌ठारहवीं शताब्दी में सदारंग-अदारंग का योगदान इस सम्बन्ध में प्राप्त होता है। आज ख्याल सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है जो अठ्‌ठारहवीं शताब्दी में मुहम्मद शाह रंगीले के समय में अत्यन्त लोकप्रिय हुई व सदारंग-अदारंग ने सैकड़ों ख्यालों की रचना की।

अष्टम अध्याय – अष्टम अध्याय "टप्पा - शास्त्रीय संगीत की एक क्लिष्ट शैली : विकास व महत्व" में टप्पा के विभिन्न अर्थ, गायन शैली, घराने, इत्यादि अनेक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

नवम अध्याय – नवम अध्याय "गायन शैलियों की परम्परा में ठुमरी का स्थान व विकास" के अन्तर्गत् ठुमरी के विभिन्न अर्थ, विभिन्न विचारकों के मत, ठुमरी के विभिन्न गायक, ठुमरी के अंग और ठुमरी की गायन शैलियों के बारे में वर्णन किया गया है। एक स्वतन्त्र व समग्र कला विधा के रूप में वर्तमान युग में, ठुमरी का विकास लखनऊ में नवाबी छत्रछाया में हुआ, जिसमें लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह, दरबारी गायक सादिक़ अली खाँ और लखनऊ घराने के कथक नर्तक महाराज बिन्दादीन थे। वर्तमान युग मे जनसाधारण में ठुमरी ने लोकप्रियता अर्जित की है किन्तु उसकी प्रस्तुति ख्याल गायन के उपरान्त एक छोटी भावात्मक वस्तु के रूप में ही की जाती है।

दशम अध्याय – शोध प्रबन्ध के अन्तिम व दशम अध्याय में मैंने कुछ अन्य गायन शैलियों जैसे दादरा, सादरा, तराना, सरगम, लक्षणगीत, रागमाला, त्रिवट, चतुरंग, इत्यादि शैलियों का भी वर्णन किया है। यह मुख्य गायन शैलियाँ तो नहीं हैं किन्तु उसका गायन शास्त्रीय रागदारी के अन्तर्गत् ही ख्याल गायन के पश्चात् गाने की परम्परा बनी हुई है।

निष्कर्ष के रूप में मैं यह कह सकती हूँ कि आज भारतीय शास्त्रीय संगीत की पहचान उसके राग संगीत से ही है, जहाँ कि गान विशेष को व्यक्त करने वाले स्वरों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाता है। आज ख्याल गायन सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है, जिसके प्रमाण स्वरूप आज की संगीत सभाओं, आकाशवाणी के

कार्यक्रमों तथा विद्यालयों के पाठ्यक्रमों को देखा जा सकता है। ख्याल का क्षेत्र इतना विस्तृत है जिसमें अन्य सभी शैलियों के विभिन्न तत्वों का मिश्रण, स्वतन्त्र स्वर विस्तार व संगीत उपयोगी सभी अलंकरणों का प्रयोग, प्रसंगों की विविधता, भाव निर्माण, भाव प्रदर्शन, राग वैशिष्ट्य तथा कण्ठ की अधिकाधिक हरकतें प्रस्तुत की जा सकती हैं। स्त्री व पुरुष दोनो ही इसे भाव पूर्ण रूप से गा सकते हैं। वैदिक काल से स्वरों के क्रमिक विकास गान्धर्व व गान विभाजन, गीति, जाति, प्रबन्ध, कव्वाली तथा ध्रुवपद आदि सभी शैलियों के संक्षिप्त विवरण के उपरांत ख्याल शैली में इन सभी तत्वों का समागम हो जाता है, जिससे ये सिद्ध हो जाता है कि ख्याल शैली प्राचीन गायन शैलियों के आधार पर स्वभाविक रूप से विकसित हुई। ख्याल का विस्तृत क्षेत्र जिसमें आलाप, बोलआलाप, बहलावा, तान, बोलतानों के विविध प्रकार, सरगम, अलंकार, गमक, कण, मींड़, कम्पन, खटके सभी हैं और ख्याल के इस प्रकार के प्रदर्शन से हर प्रकार की रूचि रखने वाले श्रोताओं को आनन्द मिल सकता है। आज आदर्श गायकी के रूप में ख्याल गायन शैली की मान्यता है, जिसके विकास में घरानों का योगदान महत्वपूर्ण है। ध्रुवपद की चार बानियाँ, गौड़ी, खंडार, डागुर एवं नौहार से ही ख्याल के प्रचलित घराने प्रभावित हुयें हैं। संगीत एक जीवंत प्रक्रिया है। जाति गायन, गीति, प्रबन्ध, ध्रुवपद, ख्याल और ठुमरी इन सभी गायन शैलियों का क्रमिक विकास इस जीवंत प्रक्रिया का सबल उदाहरण है।

अन्त में मैं यह कह सकती हूँ कि गायन शैलियाँ जो भी प्रचार में आई हों उन सभी में शास्त्रीय संगीत ने स्तर बनाये रखा है और हमारा भारतीय शात्रीय संगीत आज इन्हीं गायन शैलियों के

फलस्वरूप देश विदेश में अपनी भारतीयता की पहचान बनाये हुये हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात् जिस रूप में शोधकर्त्री ने यह शोधकार्य सम्पन्न किया है उसके लिये विद्वानों से अनुरोध है कि इसमें जो कुछ अच्छा है वह मेरे गुरुजनों की कृपा है। त्रुटियों को शोधकर्त्री की त्रुटि समझ क्षमा करने की कृपा करें।

•••••••••••••

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

क्र.सं.	किताब का नाम	लेखक
1.	भारतीय संगीत का इतिहास	उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन महल, फिरोजाबाद 1957।
2.	प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास	रांगेय राघव, इतिहास प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद।
3.	उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास	पं0 वि0 ना0 भातखण्डे, संगीत कार्यालय हाथरस, द्वितीय संस्करण।
4.	क्रमिक पुस्तक मालिका	पं0 वि0 ना0 भातखण्डे, संगीत कार्यालय हाथरस।
5.	मुसलमान और भारतीय संगीत	आ0 कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1974।
6.	वैदिक साहित्य का इतिहास	राजकिशोर सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1964।
7.	संगीत शास्त्र	के0 वासुदेव शास्त्री, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग 1961।
8.	हमारा आधुनिक संगीत	डॉ0 सुशील कुमार चौबे, उत्तर प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1975।
9.	भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
10.	पाश्चात्य स्वर लिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत	डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

11.	भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण	डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
12.	ख्याल गायन शैली विकसित आयाम	डॉ0 सत्यवती शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1994।
13.	भारतीय संगीत का इतिहास	ठाकुर जयदेव।
14.	भारत का इतिहास	हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, इलियट एण्ड डासन, भाग 5 का हिन्दी अनुवाद अनु0 डॉ0 मथुरा लाल, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1968।
15.	घरानेदार गायकी	वा0 ह0 देशपांडे, अनुवादक राहुल बारपुते ओरिएण्ट लागंमैन लिमिटेड, 1973।
16.	प्राचीन भारत का संगीत	डॉ0 धर्मावती श्रीवास्तव, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1967।
17.	भारतीय संगीत का परिचय	पी0एस0 त्रिपाठी, यंगमैन एण्ड कम्पनी 1973।
18.	भारतीय संगीत माला	डॉ0 गणेशहरि रानाडे एवं पं0 वि0 ना0 पटवर्धन, भारतीय संगीत प्रसारक मंडल 1944।
19.	अभिनव गीतांजलि भाग 1, 2, 3	पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग', संगीत सदन प्रकाशन, 1991, 1993
20.	संगीत प्रवीण दर्शिका	पं0 नारायण लक्ष्मण गुणे
21.	Glimpses of Indian Music	Vani Bai Ram, Kitab Mahal, Allahabad
22.	A Historical Study of Indian Music	Swami Prajananananda, Anandadhar Prakashan, Calcutta, 1965

23.	A story of Indian Music	Swami Prajanananda, Ramkrishna vedanta Math, Calcutta 1963
24.	A History of Indian Music	O. Goswami, Asia Publishing House 1957.
25	Introduction to the study of Indian Music	E. Clements, Kitab Mahal, Allahabad
26.	Music of India	S S Bandopadhyaya, D B Taropo-rewala Sons & Co pvt Ltd. 1958
27	Music of India	H A Popley, YM C Publshing House, New Delhi, 1978
28	Hindustani Music	G H Ranade, Popular Prakashan Bombay, 1971
29	A Treatise on Music of Hindoostan	Capt.Willard

पत्रिकाएं–

30 संगीत – जून, 1969

31. संगीत – जून, 1988

32. संगीत – जून, 76, डॉ0 प्रेमलता शर्मा

33. छायानट – 73 अंक

34. कला सौरभ – खैरागढ़, 1976-78

35. संगीत कला विहार – जून – अगस्त, 1966

. . . .